MPAM-101

संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम वर्ष

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MPAM-101

संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम वर्ष

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिन कोड – 263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

MPAM-101

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 आशा पाण्डे कृष्ण
विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी
संगीत विभाग,
इंदिरा गांधी राष्टीय मुक्त
विश्वविद्यालय, दिल्ली

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता, संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता, संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी
वरिष्ठ संगीतज्ञ,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 रेखा साह
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता, संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	**डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी** वरिष्ठ संगीतज्ञ, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रथम खण्ड़ – इकाई 1, 2 व 3 तृतीय खण्ड़ – इकाई 1, 2 व 3
2.	**डॉ0 संध्या रानी** विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग, रा0अ0लो0 राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली	द्वितीय खण्ड़ – इकाई 1, 2 व 3
3.	**डॉ0 पंकज माला शर्मा** विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ	चतुर्थ खण्ड़ – इकाई 1, 2 व 3

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2013, पुनर्प्रकाशन–जुलाई 2019
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : **books@uou.ac.in**

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी, चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MPAM-101

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम वर्ष
संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र – एम0पी0ए0एम0–101

खण्ड / इकाई	खण्ड / इकाई का नाम	पृष्ठ
खण्ड 1	**सौन्दर्यशास्त्र**	
इकाई 1	रस सिद्धान्त, लय व छन्द।	01–11
इकाई 2	सौन्दर्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के सन्दर्भ में।	12–26
इकाई 3	संगीत की व्याख्या भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार।	27–34
खण्ड 2	**भारतीय संगीत का इतिहास**	
इकाई 1	प्राचीन काल।	35–46
इकाई 2	मध्यकाल।	47–59
इकाई 3	आधुनिक काल।	60–73
खण्ड 3	**भारतीय वाद्यों का वर्गीकरण एवं ध्वनि प्रकरण**	
इकाई 1	भारतीय संगीत वाद्यों का वर्गीकरण (विस्तृत अध्ययन)।	74–86
इकाई 2	ध्वनि का विज्ञान एवं महत्व।	87–97
इकाई 3	ध्वनि भेद[ध्वनि (संगीतोपयोगी), नाद (आहत एवं अनाहत), ध्वनि का ऊँचा व नीचापन, काकु]	98–106
खण्ड 4	**पारिभाषिक शब्द एवं पाश्चात्य संगीत**	
इकाई 1	संगीत संबंधी पारिभाषिक शब्दों की विस्तृत व्याख्या (नाद, स्वर, श्रुति, सप्तक, ताल, लय, लयकारी, ख्याल, ध्रुवपद, धमार, ठुमरी व टप्पा) ।	107–129
इकाई 2	पाश्चात्य संगीत का परिचय एवं स्टाफ नोटेशन।	130–148
इकाई 3	पाश्चात्य संगीत के पारिभाषिक शब्द।	149–159

इकाई 1 – रस सिद्धान्त, लय व छन्द

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संगीत में रस
1.4 संगीत में लय
1.5 संगीत में छन्द
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के प्रथम खण्ड की पहली इकाई है। आपने पहले स्नातक स्तर पर संगीत विषय का अध्ययन किया होगा। आप संगीत के विभिन्न पहलुओं से अवगत भी होंगे।

इस इकाई में रस, लय व छन्द का वर्णन किया गया है। मनुष्य स्वभाव से ही सुन्दरता की ओर आकर्षित होता है। आंखों को अच्छी लगने वाली वस्तुएं, स्पर्श में अच्छा अनुभव वाली चीज, सूंघने में सुखदायक सुगंध, सुनने में मधुर लगने वाली आवाज आदि की ओर मनुष्य आकर्षित होता है। संगीत में सौन्दर्य उत्पन्न करने में रस, लय व छन्द का विशेष महत्व है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप रस, लय व छन्द के बारे में जान सकेंगे। सौंर्दयाहेपादन के लिए रस, लय व छन्द को विस्तार से समझना आवश्यक है। संगीत में रस, लय व छन्द का क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई के माध्यम से जान पाएंगे। हमारा विशेष अध्ययन मधुर आवाज के विषय में होगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि :–

- संगीत में रस से क्या अभिप्राय है और इसका क्या महत्व है?
- संगीत में लय से क्या तात्पर्य है और उसकी अनिवार्यता क्यों है?
- संगीत में छन्द का क्या महत्व है?
- संगीत में रस, छन्द व लय के महत्वपूर्ण समावेश से क्या विशेषता उत्पन्न होती है?

1.3 संगीत में रस

संगीत में सुन्दरता की वृद्धि के लिए 'रस' एक आवश्यक तत्व है। साधारणतया हम 'रस' का अनुमान कर ही भावाविभक्ति करते हैं। किसी भी भावनात्मक प्रस्तुति के लिए रसोनिष्पत्ति आवश्यक है या किसी भी सन्दर्भ में भाव के साथ 'रस' एक प्रभावी तथ्य होता है। साहित्यशास्त्र में 'रस' का विस्तृत वर्णन है।

भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित 'नाट्यशास्त्र' में रस के स्वरूप, उसकी निष्पत्ति एवं अनुभूति के विषय में 'रंग–मंच' एवं अभिनय के माध्यम से सविस्तार वर्णन किया गया है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, मुख्यतः काव्य और नाट्य से सम्बद्ध है। नाट्यशाला में अभिनेता भावों की निष्पत्ति कर प्रेक्षक के हृदय में 'रस' संचार करता है और इस प्रकार सौन्दर्य और आनन्द की अनुभूति कराता है।

दृश्य–श्रव्य नाटक को सर्वोच्च कला माना गया है, जो नेत्र और कर्ण दोनों को एक साथ प्रभावित करता है। भरत कृत नाट्यशास्त्र में सबसे पहले रस सिद्धान्त विषय पर व्यवस्थित चर्चा का वर्णन मिलता है। प्राचीन समय से रस शब्द का संस्कृत भाषा में विभिन्न अर्थो में प्रयोग होता आया है। भारतीय वाड.मय में 'रस' का चार अर्थो में प्रयोग किया गया है, जो निम्न हैं :–

1. सामान्य अर्थ में आस्वाद से संबंधित, जैसे पदार्थ का 'रस'।
2. आयुर्वेद तथा उपनिषदों में प्रस्तुत अर्थ।
3. साहित्य, नाट्य आदि का 'रस'।
4. भक्ति तथा मोक्ष का 'रस'।

पदार्थ के रस के अर्थ में प्रयुक्त होने से तात्पर्य यह है कि किसी भी पदार्थ, वनस्पति आदि को निचोड़ कर उससे निकाला हुआ तत्व। यह तत्व 'रस' कहलाता है, जैसे – सन्तरें का 'रस' और इसका आस्वादन भी रस ही है। अर्थात यदि हम वेदों की बात करें तो 'सामवेद' तथा 'अथर्वेद' में इसका प्रयोग गौ–दुग्ध, मधु, सोम आदि के लिए हुआ है। उपनिषदों में इसे परम आनन्द के लिए प्रयोग किया गया है तथा महाकाव्यों की समालोचना के सन्दर्भ में इसे 'ब्रहमानन्द सहोदर' कहकर व्याख्यावित किया गया है। 'कामसूत्र' नामक ग्रन्थ में इसे रीति प्रेम आदि के लिए प्रयुक्त किया गया है। इससे यह पता चलता है कि भारतीय साहित्य में रस के सन्दर्भ में गहनता से विचार हुआ है।

वैसे भारतीय मनीषियों ने 'रस', सौन्दर्य एवं आनन्द को लगभग पर्याय माना है। रस को 'अखण्ड स्वप्रकाशानन्द', 'चिन्मय', 'ब्रहमानन्द–सहोदर' की संज्ञा दी गई है। भरत के समय तक 'रस' का अर्थ बहुत विकसित हो चुका था। इसका प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि भरत ने अपने ग्रन्थ में कुछ पूर्ववर्ती आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पूर्ववर्ती आचार्यों के लिखे हुए ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं। फलस्वरूप नाट्यशास्त्र ही सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है जिसमें रस की विवेचना की गई है।

श्लोक द्वारा – **"रसो वै सः। रसो वेसः रसह्वेवायं लब्ध्वाऽनंदी भवति।"**

अर्थात् – वह रस रूप है। इसीलिए रस पाकर, जहाँ की 'रस' मिलता है, उसे प्राप्त कर मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में सौन्दर्य का लक्ष्य बिन्दु सुन्दरता न होकर 'रस' है। 'रस' आनन्द का सीधा स्रोत है तथा सभी कलाओं में व्यापत होने के कारण इसे ही लक्ष्य माना जाता है। 'रस' के महत्त्व को दर्शाते हुए भरत मुनि कहते हैं :–

"न हि रसाद्वेत कश्रिदप्यर्थः प्रवर्तते"

अर्थात 'रस' के बिना कोई बात प्रारम्भ नही होती। 'रस' के विषय में भरत मुनि खुद प्रश्न करते हैं – 'रस' इति का पदार्थ अर्थात रस क्या पदार्थ है? इसके उत्तर में भरत मुनि कहते हैं – 'आस्वद्यात्वात्' अर्थात 'रस' आस्वाद्य पदार्थ है। अर्थात् यदि संगीत द्वारा प्राप्त अनुभूति की बात करें तो इसका सम्बन्ध भाव तथा आनन्द से है और आनन्द रस का मूर्त रूप है।

<u>रस निष्पत्ति</u> – रस निष्पत्ति के बारे में भरत कहते हैं –

'' **विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः** ''

अर्थात विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि भावों के संयोग से ही 'रस' निष्पत्ति होती है। भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में चार पक्षों पर मुख्यतः विचार किया है :–

1. अभिनय 2. नृत्य 3. संगीत 4. 'रस'

इसमें प्रथम तीन साधन मात्र हैं, जिनके माध्यम से चौथे की अनुभूति होती है, जिसे रसानुभूति कहा गया है। नाट्य का अंतिम लक्ष्य चर्मोत्कर्ष–रस की निष्पत्ति और सहृदय द्वारा उसका आस्वादन है। अर्थात भरत मुनि ने मनोवैज्ञानिक आधार पर भाषा का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि भिन्न–भिन्न रस के अनुभव तथा आस्वाद के लिए भिन्न–भिन्न प्रकृति की आवश्यकता होती है। एक ही प्रकृति विभिन्न रसों का आस्वाद नहीं ले सकती। जैसे – वीर प्रकृति, भयानक से साम्य नही रखती।

अभिनय को भरत मुनि ने तीन प्रकार का बताया है :–

1. आंगिक 2. वाचिक 3. सात्विक

आंगिक अभिनय शरीर के अंग–प्रत्यंगों के हिलाने डुलाने में, वाचिक अभिनय वाणी के प्रभावशाली उच्चारण में, सात्विक अभिनय मस्तिष्क में भरे भावों की अभिव्यक्ति में निहित है जिसकी प्राप्ति, शरीर में उत्पन्न विशिष्ट लक्षणों से प्रतीत होती है। नाट्यशास्त्र में भरत ने कुल 49 भावों का विवेचन किया है, जिनमें से 8 स्थायी, 33 संचारी और 8 सात्त्विक भाव शामिल हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने विभाव, अनुभाव आदि के विषय में कोई विवेचना नहीं की है।

भरत ने भाव और रस पर परस्पर शरीर और आत्मा का संबंध मानते हुए लिखा है –

'न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रस वर्णितः'

रस की व्याख्या करते हुए भरत मुनि कहते हैं कि रस नाट्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत एक भावमूलक कलात्मक अनुभूति है। रस का केन्द्र रंगमंच है। भाव रस नहीं उसका आधार है। उन्होंने लिखा है कि 'विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से स्थायी रस उत्पन्न होता है।

'आत्माभिन्मनं भावों' – अर्थात आत्मा का अभिनय भाव है। भाव ही आत्मा चैतन्य से विश्रान्ति पा जाने पर रस होते हैं। रस्सी को सर्प समझने से निश्चित ही भय लगता है किन्तु जानबूझकर रस्सी को सर्प के रूप में देखने से मनोरंजन होता है, भय नहीं। रस सिद्धान्त मूलतः नाटक के दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया था और वह प्रत्यक्षतः भाव तत्त्व पर ही सर्वाधिक जोर देता है।

रस निष्पति तथा संयोग को लेकर विद्वानों एवं आचार्यों में मतभेद हुआ जिसके फलस्वरूप चार दृष्टिकोण हुए :–

<u>1. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद</u> – भट्टलोल्लट ने संयोग और निष्पत्ति पर व्याख्या करते हुए लिखा है कि निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति से लिया है, अतः उनका दृष्टिकोण उत्पत्तिवाद कहलाता है। अर्थात् संयोग का तात्पर्य है मेल तथा निष्पत्ति का अर्थ है उत्पत्ति, अतः इनका दृष्टिकोण उत्पत्तिवाद कहलाता है। स्थायीभाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोग होने के कारण रस की निष्पत्ति होती है।

डा0 गणपति चन्द्र गुप्त ने लस्सी का उत्तम दृष्टान्त दिया है, जिसे रस–निष्पति की क्रिया पर लागू करते हुए कहा जा सकता है कि दही विभाव है जिसका लस्सी रूप से उत्पादक–उत्पाद्य सम्बन्ध है। पानी, बर्फ, चीनी आदि सन्चारी है, जिनका लस्सी रूप से पोषण सम्बन्ध है तथा झाग अनुभाव है, जो लस्सी रूपी रस को व्यक्त या सूचित करता है।

<u>2. आचार्य शंकुक का अनुकृतिवाद</u> – इनके मतानुसार रस नाटक में नहीं होते हैं। जब कोई कलाकार शिक्षा तथा कठिन अभ्यास के उपरान्त नाट्य में अभिनय करता है तो प्रेक्षक को पता होता है कि कलाकार द्वारा किया जा रहा अभिनय कृत्रिम है, फिर भी नाटक में प्रस्तुत विभाव आदि के आधार पर ही लोगों को रस की प्राप्ति होती है। अर्थात शंकुक, रस की उत्पत्ति न मानकर केवल अनुभूति मानते हैं।

3. <u>भट्टनायक का भुक्तिवाद</u> – इनके मत के अनुसार ना ही रस की उत्पति होती है, ना ही अभिव्यक्ति और ना ही प्रतीति। नाटक में प्रस्तुत अभिनय के कारण सामाजिक (दर्शक/श्रोता) के अंतः भावों का साधारणीकरण होने से रस का भोग किया जाता है।

4. <u>अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद</u> – इनके मत के अनुसार कलाकार के द्वारा प्रस्तुत भावों से प्रेक्षक की मानसिक स्थिति के साधारणीकरण होने से प्रेक्षक के मन में उठने वाले भावों को कलाकार के द्वारा प्रस्तुत भावों से तादात्मय होने के कारण रस की प्राप्ति होती है। कला के आस्वादन के समय व्यक्ति निजी सुख–दुःख के भावों एवं चिन्ताओं से मुक्ति पा लेता है, जिस कारण कलाकार द्वारा प्रस्तुत अनुभूतियों को प्रेक्षक अपने भावों में अभिव्यक्त देखता है। यह अभिव्यक्ति ही रसानुभूति होती है जहां प्रेक्षक एवं कलाकार की मानसिक स्थिति में कोई दूरी नहीं रहती अतः दोनों ही तादात्मय की स्थिति में होते हैं।

अभिनव गुप्त के ग्रन्थों 'अभिनव भारती', 'ध्वन्यालोकलोचन' तथा काव्य प्रकाश में ही इन चारों दृष्टिकोणों का वर्णन मिलता है। अन्य तीन आचार्यों के मूल ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

<u>रस के अवयव</u> – रस सिद्धांत के प्रवर्तक 'भरत' ने भावनाओं से संबंधित रस के अवयवों यथा स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचाारी(संचारी) भावों की चर्चा की है।

<u>भाव</u> – रस का आस्वाद भाव के माध्यम से प्रेषक के हृदय में होता है। रस तथा भाव में परस्पर आत्मा तथा परमात्मा का सम्बंध है। भरत मुनि की सुप्रसिद्ध उक्ति है – ''भावगति इतिभाव'' अर्थात भाव वही है, जिसकी भावना हो। अतः रसानुभूति के अन्तर्गत भावों के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाता है।

''विभावेनारूतों योऽर्थो हानुभावेस्तु गम्यते।
वागडसतवाभिनर्यः सं भाव इति संज्ञित''।।

अर्थात – भाव वह अर्थ है जो विभावों द्वारा निष्पन्न होता है और वाचिक, आंगिक तथा सात्विक भावों के अभिनय से युक्त होता है।

मूलतः भावों को दो प्रकार का माना गया है :–

1. स्थायी या देर तक ठहरने वाला।
2. 'संचारी' या जो पल भर में भड़क उठता है और पल भर में ठंडा पड जाता है। इसे व्यभिचारी भाव भी कहते हैं।

<u>स्थायी भाव</u> – किसी अन्य भाव से न दबने वाला, उल्टा सभी को समेट अपने में आत्मसात करने वाला, काल तक ठहरने वाला 'स्थायी भाव' कहा जाता है। भरत ने इसकी व्याख्या स्पष्ट रूप से नहीं की है, अपितु भरत इसकी महत्ता को बताते हुए कहते हैं कि जैसे मनुष्यों में राजा और ऋषियों में गुरू की प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार सभी भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ तथा प्रतिष्ठित होते हैं।

सामान्यतः 9 भाव कहे गए हैं, लेकिन भरत ने केवल 'आठ' स्थायी भाव और आठ ही रस माने हैं।

''श्रृंगार हास्य करूण रौद्रवीर भयानकाः।
वीभत्सादभुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।''

अर्थात – नाटक में रस आठ हैं, – श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत। स्थायी भावों और रसों का पारस्परिक संबंध इस प्रकार है :–

स्थायी भाव	रस
रति	श्रृंगार
हास	हास्य
शोक	करूण
क्रोध	रौद्र
उत्साह	वीर
भय	भयानक
जुगुप्सा	वीभत्स
विस्मय	अद्भुत

इन आठ में से केवल चार ही उन्होंने प्रमुख माने हैं। श्रृंगार, करूण, वीर और वीभत्स रस जिनसे रति, शोक, उत्साह व जुगुप्सा भाव की अनुभूति होती है।

<u>विभाव</u> – भरत विभाव की व्याख्या इस प्रकार करते हैं :–

''बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वांगगाभिनयाश्रयाः।
अनेन अस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः''।।

अर्थात – जो वाणी, अंग तथा अभिनय के द्वारा अनेक अर्थों का बोध कराते हैं, वे विभाव कहलाते हैं। अतः नाटक में जिन साधनों तथा कारणों के द्वारा भाव का बोध होता है अथवा जिन परिस्थितियों द्वारा बोध की प्रक्रिया संभव होती है, विभाव कहलाती है।

विभाव को भाव का कारण माना गया है क्योंकि इनके द्वारा आंगिक, वाचिक तथा सात्त्विक अभिनय का स्पष्ट ज्ञान होता है। विभाव के दो रूप होते हैं :–

1. आलम्बन
2. उद्दीपन

हृदय में भावों का संचार किसी बाह्य वस्तु या दृश्य द्वारा मस्तिष्क के अन्दर उठी कल्पना से होता है। भावों का उत्सर्ग इन पर आधारित होने से इन्हें आलम्बन कहा जाता है। जैसे – काले सांप को देखकर भय लगता है तो सांप यहाँ आलम्बन हुआ किन्तु सांप को जब बीन बजाते हुए सपेरे के सामने झूमते हुए देखते हैं तो भय नही बल्कि उसके विपरीत हर्ष होता है। अतः स्पष्ट है कि आलम्बन अनुकूल परिस्थितियों में ही नहीं ब्लकि प्रतिकूल दशाओं में भी भावों को उद्वेलित करने में सहायक होता है, इसलिए इन्हें उद्दीपन कहा जाता है। यदि आग का अंगारा आलम्बन है तो प्रज्जवलित रखने वाली हवा के झोंके, उद्दीपन हैं। अर्थात् जिस प्रकार अनुकूल वातावरण, आलम्बन पर आश्रित भावों का उद्दीपन करने में सहायक होता है ठीक वैसे ही प्रतिकूल वातावरण भावों को सुषुप्त बना देता है।

जैसे झील की चाँदनी में नायिका के साथ नौका विहार अनुकूल उद्दीपन–आलम्बन का दृष्टान्त है, किन्तु शमशान में प्रेयसी का संग सर्वथा प्रतिकूल है। यहाँ आलम्बन और उद्दीपन में सामंजस्य नहीं है।

<u>अनुभाव</u> – अर्थात् विभाव के दोनों पक्ष – आलम्बन और उद्दीपन मिलकर जिसके हृदय में भाव उद्वेलित करते हैं, उसे आश्रय कहा जाता है। आश्रय के हृदय में भावों का संचार होने पर उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में कुछ विशिष्ट लक्षण नजर आते हैं। जैसे क्रोध आने पर त्योरियो का चढ़ जाना, शोक से चेहरे पर उदासी छा जाना, करूण भाव से विहवल होने पर आँसू आना आदि इन विशिष्ट लक्षणों को अनुभाव कहते हैं। अर्थात चित्त में जो भाव उठते हैं उनका मुख मण्डल की मुद्राओं से संकेत मिलता है।

अनुभाव मानसिक दशा को प्रकट करते हैं। भरत ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है – जिस आंगिक, वाचिक एवं सात्त्विक अभिनयों द्वारा दर्शक को रस विशेष की अनुभूति का बोध होता है, अनुभाव कहलाता है।

रस सिद्धान्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान समय में आज की परिस्थिति को देखते हुए कुछ विचार दृष्टिगत होते हैं। सर्वप्रथम आज का संगीत अर्थात राग पद्धति 'नाट्य' के संबंध में न ही प्रयोग की जाती है, और न ही उसका विश्लेषण 'नाट्य' के संदर्भ में किया जाता है। अर्थात् वर्तमान समय में संगीत अपने निजी भाव को राग द्वारा प्रदर्शित करता है जिसमें चित्ताकर्षण होता है, केवल नाटक तक ही उसका क्षेत्र सीमित नहीं रहा है। संगीत के एक अंग रूप में नाटक के प्रत्यक्ष रूप का कोई विशिष्ट स्थान नहीं रह गया क्योंकि गायन, वादन एवं नृत्य तीनों ही पृथक कला के रूप में प्रदर्शित किए जा रहे हैं।

वर्तमान समय में 'राग गान' पद्धति का सम्पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया गया है। ध्यान चित्र एवं रागमाला आदि के लोप होने से संगीत के स्पष्ट स्वरूप को व्यक्त करने की संभावना का संबंध अब केवल नादमय स्वरूप से है। अर्थात रस सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में विभाव, अनुभाव द्वारा कारण प्रभाव केवल रागों के नादात्मक स्वरूप के साथ जोड़ा जा सकता है। अतः प्रदर्शित किए गए संगीत के अनुसार ही राग के विशिष्ट भाव को अनुभव किया जा सकता है।

नाटक से हटकर संगीत में स्वतन्त्र विकास के कारण इसमें ध्वनि प्रयोग का विस्तार श्रेत्र भी बढ़ गया है, किन्तु साथ ही संगीत में नाटक को किसी विशिष्ट स्वरूप और स्थिति के साथ जोड़ने की परम्परा भी लीन हो गई है और केवल भावमय स्वरूप ही विकसित हुआ है। इस परिस्थिति में नाट्य पर लागू रस सिद्धान्त को वर्तमान संगीत कला पर लागू करना असंभव है, किन्तु संगीत के आज के विकसित स्वरूप में इसके लिए वह कोई खेद का विषय नहीं है क्योंकि संगीत का सौन्दर्य एवं भाव नाद द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक 'राग' का एक अपना भाव होता है, जिसके द्वारा सहृदय श्रोता को आनन्द प्राप्त होता है।

रस को हम किसी भी वस्तु का आधार या मूल आत्मा कह सकते हैं। अर्थात् जिस धातु का स्वाद ले सकें, जिसकी अनुभूति कर सके वही रस है। रस का अर्थ भिन्न–भिन्न तरह से लिया जाने लगा है। वेदों में रस को सोम रस के लिए प्रयुक्त किया है। उपनिषदों में इसे चिदानन्द कहते हुए ब्रह्मानन्द–सहोदर कहा है। साहित्य शास्त्रियों ने रस को जिस अर्थ में लिया है वह भिन्न है। आचार्य भरत ने नाट्य शास्त्र में रस के अवयवों का विवेचन करते हुए लिखा है – ''**विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः** '' अर्थात भाव, अनुभाव व संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

प्राकृतिक अर्थ में इसका अर्थ, पदार्थ आदि के रस से है। आयुर्वेद में इसका अर्थ शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों के रस से है जिस पर हमारा जीवन निर्भर है। तत्त्व दृष्टि से रस साम्यता है। बहुत ही सरल शब्दों में इसको इसी प्रकार समझा जा सकता है कि मानव जाति के अन्तःकरण में वास करने वाली भावनाओं के चरमोत्कर्ष को ही प्राचीन शास्त्रकारों ने रस की संज्ञा दी है। रस की निष्पत्ति तभी हो सकती है जब मनुष्य को वस्तु में आनन्द प्राप्त हो। ललित कला से ज्ञान वृद्धि के साथ–साथ अन्तःकरण की भावनाओं की भी वृद्धि होती है।

भावों की अभिव्यक्त करने की चेष्टा प्राणी का स्वभाव है, भावाभिव्यक्ति में नाद के उस रुप का भी एक विशिष्ट स्थान है, जो कि स्वतंत्र रुप से भाव व्यंजना करने में समर्थ है। शब्दों को उचित स्वर रुप में बोला जाए तभी वह प्रयुक्त (संगीत) होते हैं। इसी कारण रंजक स्वर समूह गीत कहलाता है। रंजकता राग का सर्वप्रथम गुण माना जाता है। राग की परिभाषा में कहा है '' योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्णा विभूषिता रंजकों जनः चितानाम् सः रागो कथितौ बुधौ''। संगीत में राग की परिभाषा '' रंजते इति रागः'' कहकर की जाती है। लेकिन साधारण भाषा में हम देखेंगे तो राग स्वरों का समूह है, जो कुछ नियमों को लेकर गाया या बजाया जाता है। इसका सम्बन्ध थाट से होता है और व्यंकटमुखी के अनुसार राग जाति के मूल तत्वों पर आधारित हैं। जिसे ग्रह, अंश, न्यास आदि के नाम से जानते हैं। परन्तु राग का जन्म यद्यपि थाट से होता है, लेकिन थाट एक निर्जीव रचना कही जा सकती है, जबकि राग एक रसयुक्त व्यक्तित्व है। राग के अपने कुछ नियम होते हैं जैसे राग का वादी, सम्वादी स्वर होना, आरोह अवरोह होना, समय आदि निश्चित होना।

राग को संगीत का एक गौरवपूर्ण रुप माना जाता है। यदि राग वृक्ष है तो रंजकता उसका फल है। राग व रस की बात जब हम करते हैं तो देखते हैं कि रस का राग में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। राग व रस का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। राग का गायन तथा वादन दोनों ही आनन्द का सृजन करने हेतु किया जाता है। दोनों का उद्देश्य श्रोता व कलाकार के मन में आनन्द का सृजन करना है। राग का रसस्वादन मूल रुप से वही व्यक्ति कर सकता है जो या तो संगीत का ज्ञान रखता हो या जिसकी संगीत में रूचि हो। अर्थात् संगीत में रसास्वादन मनुष्य के भाव पक्ष की ओर इंगित करता है।

संगीत के तीन अंग हैं – गायन, वादन व नृत्य। गायन तथा वादन में नाद के द्वारा रस की निष्पत्ति होती हैं। यद्यपि गायन में शब्दों का ही आश्रय लिया जाता है तथा वादन में केवल स्वरों का आश्रय लिया जाता है। नृत्य में ताल व भावों के माध्यम से रस की निष्पत्ति होती है। नृत्य में रसानुभूति अधिक सुलभ है। चूंकि नृत्य नाटक के अधिक निकट है अतः इसके द्वारा रसनिष्पत्ति अधिक सहज होती है। इसके अतिरिक्त नृत्य से ही साहित्य में वर्णित नवरसों की प्राप्ति भी हो जाती है। किन्तु गायक तथा वादक के द्वारा श्रृंगार, करूण, शांत एवं वीर आदि रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की निष्पत्ति नहीं होती है। हाँ जब संगीत का प्रयोग नाटक में, नृत्य में या फिल्म आदि में पार्श्व संगीत की दृष्टि से किया जा रहा हो तो इसके द्वारा सभी रसों की निष्पत्ति सम्भव है। शास्त्रीय

संगीत में जब यथा समय राग के माध्यम से श्रोता को आनन्द की अनुभूति होती हैं वही रसावस्था है। **रस मुख्यतः नौ माने जाते हैं।**

भारतीय साहित्य में काव्यशात्रानुसार नौ रस माने गए हैं। इसी प्रकार भारतीय संगीत शास्त्रज्ञों ने भी नव रसों का विस्तृत वर्णन किया है जो इस प्रकार हैः

1. श्रृंगार रस 2. वीर रस 3. करूण रस 4. शांत रस 5. रौद्र रस
6. भयानक रस 7. वीभत्स रस 8. अद्‌भुत रस 9. हास्य रस

एक दसवां रस भक्ति रस के नाम से जाना जाता है। इन सभी रसों का उल्लेख हमारे काव्यों में मिलता है। संगीत में काव्य होने के नाते उन सभी रसों का समावेश हो सकता है। संगीत को स्वरों की भाषा कहा है। परन्तु वाद्य संगीत में शब्दों का स्थान नहीं है। वीर रस, श्रृंगार रस, करूण रस, व शांत रस इनका संगीत में उपयोग इस तरह से माना जाता है जैसे – सा–म की प्रकृति वाले रागों में शांत रस, ग–ध वाले रागों में गम्भीर रस, प की चंचल व निषाद की सरल प्रकृति मानी है। शांरगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में निम्न प्रकार से रस निष्पत्ति मानी है।

सा – वीर रस, रौद्र रस
रे – वीर रस, रौद्र रस
ग – करूण रस
म – करूण रस
प – हास्य रस व श्रृंगार रस
ध – भयानक रस
नी – करूण रस

शारंगदेव ने रसों को विभिन्न स्वरों से निम्न प्रकार जोड़ा है :–

स रे – वीर रस
ग नि – करूण रस
प म – हास्य रस
ध – वीभत्स रस

भरत ने स्वरों में रस का विभाजन इस प्रकार किया है –

म – हास्य रस
प – श्रृंगार रस
स – वीर रस
रे – रौद्र रस

कुछ विद्वानों ने राग में प्रयुक्त होने वाले स्वर से रस की निष्पत्ति मानी है। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के माध्यम से उसमें रस को जोड़ा है। जैसे कोमल स्वर वाले रागों का सम्बन्ध भक्ति रस से जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त दोनों मध्यमों का प्रयोग श्रृंगार रस से जोड़ा है तथा कोमल ग ध नि स्वरों से वीर रस का सम्बन्ध जोड़ा गया है।

कुछ विद्वानों ने ऐसा भी माना है कि किसी विशिष्ट राग से विशिष्ट रस की उत्पत्ति होती है। जैसे भैरवी राग को करूण व श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त माना है। मल्हार अंग के सभी राग वियोग श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त माने गए हैं।

1.4 संगीत में लय

भारतीय संगीत के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'श्रुति' इसकी जननी तथा 'लय' जनक हैं। यह सत्य है कि संगीत का आधार स्वर एवं लय ही हैं। सामान्यतः लय शब्द के दो अर्थ होते हैं – पहला सामान्य शाब्दिक तथा दूसरा परिभाषिक। लय का स्पष्ट शाब्दिक अर्थ है संयोग, एकरूपता, मिलन। जब हमारा मस्तिष्क किसी वस्तु अथवा विचार में लीन हो जाता है तो हम कहते हैं कि यह 'लय' की स्थिति है। इस प्रकार लय का प्रयोग विभिन्न सन्दर्भों और अर्थों में किया जाता है।

पारिभाषिक अर्थ में लय को ताल एवं काल माप का आधार माना जाता है। प्रकृति जगत में प्रत्येक पदार्थ किसी गति के अधीन है, जो उसकी लय है। उसे उस गति के अनुशासन में ही रहना होता है। इसी प्रकार संगीत में स्वर और गीत की प्रस्तुति लय के आधार पर ही की जाती है। आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है *'कलायां एवं च लयं बिना न स्वरूप लाभः'* अर्थात् लय के बिना क्रिया के स्वरूप का लाभ नहीं हो सकता। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य में कोई न कोई लय अवश्य होती है।

<u>लय की परिभाषाएं :</u>

- समय की समान गति को लय कहते हैं।
- संगीत में प्रयोग की जाने वाली गति को *'लय'* कहते हैं।
- ताल में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच की विश्रांति का काल, जो पहली क्रिया का विस्तार है, *'लय'* कहलाता है।
- संगीत रत्नाकर के अनुसार – **'कियानान्तर विश्रांति लयः'** अर्थात क्रिया के अन्त में विश्रांति को लय कहते हैं।
- अमरकोश के अनुसार – **'किया विश्रांति लयः'** अर्थात दो क्रियाओं के बीच के अन्तराल को लय कहते हैं।

यूं तो लय के अनगिनत प्रकार हैं, परन्तु लय को प्रधानतः तीन भागों में बांटा गया है :–

1. <u>विलम्बित लय</u> – जिस लय की चाल बहुत धीमी होती है तो उसे विलम्बित लय कहते हैं। जैसे – गायन विधा में बड़ा ख्याल, ध्रुपद, धमार तथा तंत्र वाद्य में मसीतखानी गत आदि।
2. <u>मध्य लय</u> – जो लय न ज्यादा धीमी और न ही द्रुत हो, अर्थात साधारण लय को 'मध्य लय' कहते हैं। जैसे – गायन विधा में छोटा ख्याल, भजन, ठुमरी तथा तंत्रवाद्य में रज़ाखानी गत और अधिकतर नृत्य में मध्य लय रहती है।
3. <u>द्रुत लय</u> – जिसकी गति बहुत तेज हो अर्थात द्रुत हो उसे द्रुत लय कहते हैं। यह लय मध्यलय से दुगुनी तथा विलम्बित लय से चौगुनी होती है। जैसे – गायन विधा में तराना, तंत्रवाद्यों में झाला तथा नृत्य में ततकार द्रुत लय में होती हैं।

इन लयों के बीच कोई निश्चित रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती, इन्हे सापेक्षिक माना जाना चाहिए।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब लय को नापा जाता है तो कला एवं मात्रा से नापा जाता है और उस कला एवं मात्रा में जितना समय लगता है उसी के अनुसार लय निर्धारित होती है। जैसे कोई रचना आठ मात्रा की है तो जितना समय आठ मात्रा में रचना के गाने में लग रहा है वह मध्य लय मान लें और उसी आठ मात्रा की रचना को यदि 16 मात्रा के समय काल में यानि धीमी लय करके दुगुने समय में गाया जाएगा तो वह विलम्बित लय कहलाएगी। यदि इसी आठ मात्रा के गीत को आधे यानि 4 मात्रा काल गाया जाएगा तो गति तेज हो जाएगी, तो यह द्रुत लय कहलाएगी। अब आप समझ गये होंगे कि द्रुत लय से दुगुने समय के कारण मध्यलय तथा मध्यलय के दुगुने समय लेने पर विलम्बित लय बनती है। यही संगीत का सिद्धान्त है।

रस निष्पत्ति के साधनों में लय का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। लय किसी गति की नपी तुली क्रिया होती है। संगीत का माध्यम स्वर व लय है। अतः लय का भी राग के रस से घनिष्ट सम्बन्ध है। लय के तीन प्रकार **विलम्बित लय, मध्य लय तथा द्रुत लय** से अलग–अलग रस की उत्पत्ति मानी जाती है। कई विद्वानों के मतानुसार विलम्बित लय में करूण व शांत रस की उत्पत्ति, मध्य लय में हास्य व श्रृंगार रस एवं द्रुत लय में वीर व भयानक रस की उत्पत्ति मानी गई है।

विलम्बित लय	मध्य लय	द्रुत लय
शांत, करूण	हास्य, श्रृंगार	वीर, भयानक

किन्तु यह आवश्यक नही है कि हमेशा द्रुत लय में भयानक रस या वीर रस ही उत्पन्न हो, द्रुत लय में श्रृंगार रस की उत्पत्ति भी हो सकती है। प्रो0 स्वतन्त्र शर्मा के अनुसार – 'संगीत की लय, बंदिश की प्रकृति, राग के स्वभाव के अनुसार परस्पर तालमेल होने पर लय विशेष से रस की निष्पत्ति होगी।' इस प्रकार 'रस' और 'लय' का गहरा संबंध है।

लयकारी – लयकारी का आधार लय है। लय के विभिन्न दर्जे दिखाने या करने की प्रकिया लयकारी कहलाती है। जब कोई संगीतकार (गायक, वादक व नर्तक) एक मात्रा में 1, 2, 3 आदि मात्रा बोलता या बजाता है, तो इस किया को लयकारी कहते हैं। विद्वानों द्वारा लयकारी के दो प्रकार माने जाते हैं। 1. सीधी लयकारी – इसके अन्तर्गत दुगुन, तिगुन, चौगुन आदि लयकारीयां आती हैं। 2. आडी लयकारी – इसके अन्तर्गत आड, कुआड, बिआड आदि लयकारीयां आती हैं। लयकारीयों के नामकरण का आधार है कि एक मात्रा में कितनी मात्रा बोली, गाई या बजाई जा रही हैं। जैसे सीधी लयकारी में 1 मात्रा में 2 मात्रा दुगुन, 1 मात्रा में 3 मात्रा तिगुन, 1 मात्रा में 4 मात्रा चौगुन आदि। इसी प्रकार आड लयकारी में 1 मात्रा में $1^1/_2$ मात्रा आड, 1 मात्रा में $1^1/_4$ मात्रा कुआड, 1 मात्रा में $1^3/_4$ मात्रा बिआड कहलाती है।

1.5 संगीत में छन्द

जिस प्रकार लय के महत्व को आपने पढ़ा व समझा, उसी प्रकार गायन, वादन व नृत्य में छन्दों का भी महत्व है। लय का महत्व उसकी माप के अन्तर्गत गति में परिवर्तन, जो कि आकर्षक हो तथा श्रोता या दर्शक का मनोरंजन करे, छन्द कही जाती है। संगीत में छन्दों के प्रयोग से रसवृद्धि होती।

संगीत में छन्द का उदाहरण हम विभिन्न लयों व तालों से समझ सकते हैं। आप जानते हैं कि दादरा ताल में 1 2 3 का छन्द बनता है, रूपक ताल में 1 2 3, 1 2 3 4 का छन्द बनता है आदि। विशेष रुप से गायन में हम समझ सकते हैं कि ताल विशेष, जिसमें गायन चल रहा हो, में अन्य तालों के छन्दो का विभिन्न लयों में प्रयोग करने से सौन्दर्य वृद्धि होती है। फलतः रसान्तर होने से भी संगीत का आकर्षण बढ़ जाता है। ताल वाद्यों पखावज या तबले में छन्दों के विविध प्रयोग कर्णप्रिय होते हैं, वही तालाश्रित नृत्य में छन्दों का महत्व बहुत सुन्दर लगता है।

संगीत (गायन पक्ष) की सुन्दरता के लिए काव्य आवश्यक है। काव्य अर्थात किसी कविता को गाते हुये हम, यथोचित स्वरों व निहित छन्द का प्रयोग करते हैं तो शब्दार्थ के समीप पहुॅचते हैं और रसोत्पत्ति होती है, जिससे सौन्दर्य वृद्धि होती है। गायन में कविता का भाव प्रकट करने के लिए व सौन्दर्य की उत्पत्ति के लिए हमें लय के साथ–साथ छन्दों का प्रयोग करना भी आवश्यक होता है।

संगीत शास्त्र में 'पद' शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है। 'पद' को आजकल बंदिश भी कहा जाता हे। पद वह रचना है जो किसी छन्द में हो, किसी ताल में निबद्ध हो, कविता के शब्द–सार्थक व संवाद भाव युक्त हो। सौन्दर्य निष्पत्ति के लिए यह आवश्यक है।

वैदिक मंत्रों के गायन से लेकर आज तक की गीत रचना में छन्द के महत्व को समझा जा सकता है। छन्द में प्रभाव व आकर्षण की क्षमता, सुन्दर भाव समाहित रहती है जो सौन्दर्य वृद्धि हेतु आवश्यक होती है। भरतमुनि द्वारा वर्णित ध्रुपद गायन को ही **पद** कहा गया। पदों के गायन में ताल, यति, छन्द, लय, रस व भाव का उचित प्रयोग होता था। मतंग ने भी वृह्दद्देशी में गीति में पद, लय व छन्द युक्त अलंकारों का वर्णन किया है।

प्राचीनतम गायन से लेकर आधुनिक गायन तक छन्द, सौन्दर्य के लिए आवश्यक है। पद अथवा बंदिश के लिए भी छन्द अनिवार्य है। विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुपद, धमार व ख्याल गायकी में विभिन्न घरानों की बंदिशें जो इन विशेषताओं से परिपूर्ण थी वह आज तक गाई जा रही हैं। कई सुन्दर पदों या बंदिशों से तो राग लोकप्रिय हो गए और उनका प्रचार हुआ। अतः बंदिश

में छन्द, शब्दों का भावार्थ अनिवार्य हो जाता है। अच्छी कविता का श्रृंगार यथोचित स्वरों से करने पर बंदिश अमर हो जाती है।

जब हम छन्द पर विचार करते हैं तो छन्द की क्षमता पर विचार करना होगा। लघु, गुरू युक्त वर्णों के प्रयोग के साथ–साथ जब किसी पद रचना में शब्दों को छन्द के अनुरूप व्यवस्थित कर भाव की वृद्धि का ध्यान रखकर, पद रचना व बंदिश तैयार की जायेगी तो वह अवश्य सुन्दर होगी एवं रस की उत्पत्ति तथा संगीत में सौन्दर्य वृद्धि का कारण बनेगी।

छन्द युक्त बन्दिश के लिए आवश्यक है :–

1. रागानुसार स्वरों का संयोजन।
2. बंदिश किसी ताल के ठेके में बंधी हो।
3. शब्द रचना सुन्दर व भावपूर्ण हो।

प्राचीन काल से ही यह परम्परा है कि हमारा जो भी ज्ञान रहा, उससे बनी हुई गीतमय, मधुर स्वरों एवं छन्द युक्त रचना कर्णप्रिय होती है तथा श्रोता को आकर्षक करती है। यदि भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग संवादयुक्त हो तो रचना, पद या बंदिश लोक मानस में अंकित हो जाती है।

पद(बंदिश), पद्य व सार्थक शब्द, छन्द के अभिन्न अंग हैं। साहित्य में छन्द दो प्रकार के माने जाते हैं :–

1. वार्णिक (वृत्त–छन्द) – इसके गण 3–3 अक्षर के होते हैं तथा ये आठ प्रकार के होते हैं।
2. मात्रिक (जाति छन्द) – वे छन्द जो मात्रा गणों की सहायता से लिखे जाते हैं, मात्रिक छन्द कहलाते हैं। ये 4–4 मात्रा के होते हैं तथा इनके पांच प्रकार होते हैं।

छन्द का मूल लक्षण है – लय में बंधा होना। इसी कारण सामवेद में ऋचाओं को गेय माना है। छन्द युक्त गायन की यही परम्परा आज भी चली आ रही है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. संगीत विद्वानों में................................ रस माने हैं।
2. संगीत में सा से .... रस की निष्पत्ति होती है।
3. भरत के अनुसार ....स्वर में करूण, श्रृंगार व वीर रस को निहित बताया गया है।
4. शांत रस व करूण रस .... लय में प्रभावी रहता है।
5. लय....................... प्रकार की होती है।
6. साहित्य में छन्द.................................. प्रकार के माने जाते हैं।
7. ....को आजकल बंदिश भी कहा जाता है।
8. गायन विधा में तराना व तंत्रवाद्यों में झाला ....लय में होता है।

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप संगीत में रस, लय व छन्द के महत्त्व को समझ चुके होंगे। संगीत में रस एक अनिवार्य तत्त्व है जो आत्मिक सुख व जन–रंजन हेतु महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। संगीत एक ऐसा रस है जिसमें कलाकार तो रसमय होकर बहता चला जाता है साथ में श्रोताओं को भी प्रभावित करता है। जब लय और छन्द के साथ रसमय संगीत होता है तो चरम आनन्दानुभूति होती है। लय जो ताल युक्त होती है संगीत के लिए प्राण का कार्य करती है। स्वर शरीर है तो ताल उसका प्राण। आप रस के महत्त्व के साथ लय की महत्ता को समझ चुके हैं। लय यदि छन्द युक्त हो और 'शब्द' अर्थात् काव्य युक्त हो तो संगीत के गायन पक्ष में सुन्दरता आती है। कोई भी गायन की रचना में कविता के शब्दों को, अनुकूल स्वर समूह के साथ ताल व छन्द युक्त प्रयुक्त करने पर रस

की उत्पत्ति होती है। स्वरों का माधुर्य जब लय से युक्त कविता के शब्दों द्वारा प्रस्तुत होता है तो भौतिक व आत्मिक सुखपूर्ण सर्वोत्त्म रचना कहा जाता है। इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि संगीत में रस, लय व छन्द किस प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं। फलतः स्वरों की रचना (स्वर), लय बद्धता (ताल) व छन्द का समावेश ही सर्वोत्त्त संगीत व गायन की प्रस्तुति है। शास्त्रकारों द्वारा अपने ग्रन्थों में संगीत में रस, लय व छन्दों के महत्व का वर्णन किया गया है। भरत का 'नाट्यशास्त्र', शारंगदेव का 'संगीत रत्नाकर' मुख्य रुप से रस सिद्धान्त का वर्णन करता है। संगीत चूंकि क्रियात्मक है इसलिए किसी प्रस्तुति में गायक, वादक तथा नर्तक द्वारा अपने या परिस्थिति जन्य वातावरण के अनूरुप अपने अनुभव से भी रसों को व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है।

1.7 शब्दावली

1. रस निष्पत्ति – रस का पैदा होना, रस उत्पन्न होना
2. आंगिक – अंगों से सम्बन्धित
3. वाचिक – वाणी से सम्बन्धित
4. सात्विक – भारतीय दर्शन में आध्यत्मिक प्रभाव अर्थात् सच्चे, तत्त्व से युक्त
5. अनुभाव – भाव के पीछे का भाव

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. नौ
2. वीर रस, रौद्र रस व करूण रस
3. प(पंचम)
4. विलम्बित
5. तीन (विलम्बित, मध्य व द्रुत)
6. दो(वार्णिक व मात्रिक)
7. 'पद'
8. द्रुत लय

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, प्रो0 स्वतन्त्र, सौन्दर्य, रस व संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
2. शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल (सम्पादक एवं व्याख्याकार), भरत (मूल ग्रन्थकार), नाट्यशास्त्र अध्याय–28, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. जौहरी, सुश्री सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. माथुर, सुश्री मीरा, संगीत परामर्श–2।
5. जोशी, स्व0 पं0 भोला दत्त, संगीत शास्त्र ।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संगीत में रस, लय व छन्द का क्या महत्त्व है? विस्तार से समझाइए।

इकाई 2 – सौन्दर्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के सन्दर्भ में

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सौन्दर्यशास्त्र
2.4 सौन्दर्यशास्त्र भारतीय संगीत के संदर्भ में
2.5 सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य संगीत के संदर्भ में
2.6 संगीत में सौन्दर्यात्मक तत्व
2.7 सौन्दर्य के आवश्यक तत्व
2.8 सौन्दर्य विषयक मान्यताएं
2.9 सौन्दर्यशास्त्र व अन्य शास्त्र
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0—101) के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप रस, लय व छन्द को समझ चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि संगीत में सौन्दर्य तथा सौन्दर्य उत्पन्न करने में रस, लय व छन्द का विशेष महत्व है।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत में सौन्दर्य को समझाया गया है। रस, लय व छन्द, सौन्दर्य व रंजकता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है। आनन्दानुभूति तभी संभव है जब हमें सौन्दर्य का बोध होता है। अतः संगीत का मुख्य धर्म सौन्दर्यानुभूति कराना है। इस इकाई में सौन्दर्य शास्त्र के सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिकों के मत व विचारों को समझाने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत में सौन्दर्यशास्त्र को समझ सकेंगे। सभी भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्यानुभूति को आनन्दात्मक माना है। भारतीय चिन्तक सौन्दर्यानुभूति को आन्तरिक मानते हैं। पाश्चात्य संगीत विचारक इसे विज्ञान के समकक्ष रख कर अध्ययन करने का विचार रखते है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- सौन्दर्य की निष्पत्ति व महत्व के सम्बन्ध में भारतीय व पाश्चात्य संगीत शास्त्रियों के विचारों व उनके द्वारा प्रतिपादित मतों को समझ सकेंगे।
- सौन्दर्य के आवश्यक तत्वों को जान सकेंगे।
- संगीत में सौन्दर्य के महत्व व सौन्दर्यात्मक तत्वों को समझ सकेंगे।

2.3 सौन्दर्यशास्त्र

सौन्दर्य का अर्थ है – **एन्द्रिय सुख की चेतना।** सौन्दर्यशास्त्र मानव की कला, चेतना और तत्सम्बन्धी आनन्दनुभूति का विवेचन व विश्लेषण प्रस्तुत करता है। जब से मनुष्य जीवन अस्तित्व में आया मनुष्य के भीतर स्वतः ही कलात्मक अभिरूचियां प्रकट हुई जिसे वह कलाकृतियों, मूर्तियों आदि के द्वारा प्रकट करता रहा। इनके द्वारा जो आनन्दानुभूति प्राप्त होती है इसका व्यवस्थित ढंग से चिन्तन, अध्ययन ही सौन्दर्यशास्त्र का विषय है। अठ्ठारवीं शताब्दी में एलेक्जेंडर वाम गार्टन ने पहली बार 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया था। एस्थेटिक्स ग्रीक भाषा का शब्द है इसी का हिन्दी अनुवाद सौन्दर्यशास्त्र है। प्रारम्भ में सौन्दर्यशास्त्र का प्रयोग दर्शन शास्त्र की शाखा के रूप में हुआ था फिर धीरे–धीरे सौन्दर्यशास्त्र को ललित कलाओं के सन्दर्भ में रखकर भी इसका अध्ययन किया जाने लगा। चूँकि संगीत भी ललित कलाओं के अन्तर्गत सम्मिलित है अतः यह भी सौन्दर्यशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत आ गया। हीगल ने अपने ग्रन्थ "The Philosophy of Fine Arts" में कहा है – ''यह एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आता है। स्पष्ठ रूप से कहें तो इसका क्षेत्र कला का कहना चाहिए, यह ललित कला का क्षेत्र है।

2.4 सौन्दर्यशास्त्र भारतीय संगीत के सन्दर्भ में

भारत वर्ष में सौन्दर्य तत्व की व्याख्या में प्राचीन परम्परा समृद्ध रही है। प्राचीन ग्रन्थों में यही सौन्दर्य चारूत्व, रमणीयता, शोभा, कॉति, चमत्कार, वैचित्य आदि नामों से जाना जाता रहा है। भारतीय संस्कृति का मूल आदर्श ''सत्यम शिवम् सुन्दरम्'' पर टिका है। यद्यपि सौन्दर्य का अर्थ पाश्चात्य एस्थेटिक्स के निकट है लेकिन पूर्णतः उसके समान अर्थ में भारतीय दर्शन में नहीं मिलता। सौन्दर्य शास्त्र को लालित्य शास्त्र या नन्दन शास्त्र का प्रयोग कर, एस्थेटिक्स को पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया गया है। कोई वस्तु या कला हमें भौतिक या मानसिक रूप से इन्द्रिय सुख का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु है या कला है। किसी कला के दर्शन या श्रवण से हमें आनन्द मिलता है तो यह सुख का अनुभव ही सौन्दर्यानुभूति है।

भारतीय शास्त्रज्ञों के अनुसार सौन्दर्य के तीन पक्ष हैं :–

1. कलाकार
2. कलाकृति
3. कला रसिक

कलाकार व कला रसिक के सौन्दर्य बोध का स्तर एक होना आवश्यक है। भारतीय विद्वानों के अनुसार सौन्दर्य दो प्रकार का है – वाह्य(जिससे हमारी इन्द्रियों को सुख मिलता है) तथा दूसरा आन्तरिक (जिसका अनुभव अन्तर आत्मा से होता है)।

भारतीय विचारकों के अनुसार व्यक्त किये गये विचारों का अध्ययन हम करेंगे :–

- भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋगवेद में सौन्दर्य को **'श्री'** नाम से सम्बोधित किया गया है, *इसके स्वरुप को समझना ही सौन्दर्य को समझना है।*

- **के0 एस0 रामास्वामी कहते हैं – ''सौन्दर्य**शास्त्र, कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य का विज्ञान है।''
- **डॉ0 कान्तिचन्द पाण्डेय के अनुसार** – ''सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं का विज्ञान तथा दर्शन है। ''वे मानते हैं कि सुन्दरता जनित इन्द्रिय सुख विवेक के आदर्शों का तिरस्कार कर निम्नकोटि के रुझानों को तृप्त करने तथा आत्मा के क्षण भंगुर और विवेक शून्य अंश को प्रधान बनाने से होता है।'
- **श्री के0सी0 पाण्डे** के अनुसार – ''सौन्दर्य वे कलाएँ हैं जिनकी कृतियॉ परमब्रह्म को इन्द्रिय ग्राह्य रुप में इस प्रकार से उपस्थित करती है कि वे आवश्यक मानसिक दशाओं से युक्त सहृदय कला–रसिकों के लिए ब्रह्मानन्द प्राप्ति का समुचित साधन बन जाता है।'
- **डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार** – ''सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध सैद्धान्तिक विवेचना से है अर्थात् कला में निहित सौन्दर्य की प्रकृति, मूल तत्व, आस्वाद, प्रयोजन और उपादान आदि का सैद्धान्तिक विवेचन ही उसकी विषय परिधि में आता है। यह कला के मौलिक सिद्धान्तों की संहिता है।'
- **डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार** – ''सौन्दर्यशास्त्र और काव्य शास्त्र में पृथकता है, क्योंकि काव्य शास्त्र केवल काव्य तक ही सीमित है और काव्य सौन्दर्य का ही विवेचन करता है। जब की सौन्दर्यशास्त्र काव्य, स्थापत्य, मूर्ति, चित्र और संगीत कला सभी कलाओं के सौन्दर्य का तत्व विवेचन करता है।'
- **डॉ0 कुमार विमल के अनुसार** – '' सौन्दर्यशास्त्र का अध्ययन सौन्दर्य, कल्पना, बिंब और प्रतीक इन चार अभिधानों के अन्तर्गत होता है।''
- **डॉ0 एस0एन0 घोषाल** ने सौन्दर्य तत्वों का विभाजन 'ऐतिहासिक और सांस्कृतिक, कलात्मक, दार्शनिक एवं काव्यात्मक – इन चार भागों में किया है।
- **डॉ0 रामविलास शर्मा** के अनुसार ''प्रकृति मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।''
- **श्री लीलाधर गुप्त** के अनुसार '' सौन्दर्य प्रकृति के कुछ दृश्यों अथवा कलाकृतियों और मानव मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।''
- संस्कृत के पहले आचार्य **पंडितराज जगन्नाथ** हैं, जिन्होंने रमणीयता को ही सौन्दर्य माना है।
- **डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ** का सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण व व्यापक है। अपनी पुस्तक ''अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा'' में कला एवं सौन्दर्य बोध, कलाकार, कलाकृति, कलाओं का वर्गीकरण, सृजन प्रक्रिया, सौन्दर्य की तात्विक प्रवृत्ति आदि पर उन्होंने गम्भीरता से विचार किया है। वे कहते है, ''सौन्दर्यशास्त्र का प्रकृत या साधन मूल्य सौन्दर्य है। सौन्दर्यशास्त्र कला के सृजन तथा आशंसा, प्रेरण तथा प्रेक्षणीयता, कौशल तथा अनुशील कला सम्बन्धी प्राकृतिक गुणों से नजदीक का सम्बन्ध रखता है। वस्तुतः यह शास्त्र कला का दर्शन कहा जा सकता है।''
- कवि **माद्य** ने सौन्दर्य के सम्बन्ध में नवीन और प्रभावशाली धारणा व्यक्त की है। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य वह है जो क्षण–क्षण में नवीनता प्राप्त करें।
- भारतीय मनीषियों के अनुसार – ''Aesthetics is not only confined to that limited branch of study which deals with the appreciation of art works, but is the dilineation of an entire realm of inquiry with in which all ordinary experience, becomes aesthetics. Detached from the occurence of daily life, and intensly concentrated on the aesthetic object, the perceiver experiences an intense joy that has been characterised as having almost the same quality of joy that arises out of the realisation of Absolute(Brahman). It is an intensly active process resulting in a state of heightened emotion which has its effect on bodily processes of the perceived effecting the kind of purgation or psycho-physical healing.''

अतः स्पष्ट होता है सौन्दर्यशास्त्र कला का सैद्धान्तिक रूप से विवेचना करता है तथा कला से सम्बन्धित मानव व्यवहार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करता है। वस्तुतः सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धान्तों में मतानुसार होने पर भी स्पष्ट है कि सौन्दर्यानुभूति से आनन्द मिलता है अतः भारतीय मतों से स्पष्ट है कि सौन्दर्यशास्त्र में हम कला द्वारा अभिव्यक्त आनन्द (एंन्द्रिय व आत्मिक) का अध्ययन करते हैं।

2.5 सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य संगीत के सन्दर्भ में

पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र का चिन्तन वामगार्टन से माना है। इससे पूर्ण पश्चिम दर्शन के अन्तर्गत ही एक शास्त्र के रूप में कला सम्बन्धी मूल्यांकन में सहायक होता रहा है। अठ्ठारवीं शताब्दी में एलेकजेन्डर वामगार्टन (1714–1762) ने पहली बार 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया। वाम गार्टन ने कालान्तर में एस्थेटिक्स के स्थान पर साइन्स आफ ब्यूटी का प्रयोग किया।

वामगार्टन के बाद पश्चिम के विचारको ने 'सुन्दर' के अनुभव को सौन्दर्यानुभूति के रूप में ग्रहण किया। कांट नामक विचारक ने इसे ज्ञान–विज्ञान से अलग कला माना। सौन्दर्य को अन्य शास्त्रों से जोड़ करके विभिन्न ललित कलाओं के परिपेक्ष में चिन्तन का विषय माना। सौन्दर्य चेतना विषय है इसलिए सौन्दर्य चेतना का अर्थ है और सौन्दर्य बोध मनुष्य की एक भावात्मक अवस्था है। सौन्दर्य बोध का आधार होने से इसे सौन्दर्य दर्शन भी कहा जाता है, जो सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत रखकर अध्ययन किया जाता है।

सौन्दर्य को लेकर पश्चिम के विचारकों ने अनके व्याख्याएं की हैं। प्लेटो और सैन्द ऑगस्टाइन प्राचीन और मध्य युगीन सौन्दर्य के चिन्तन के प्रतिनिधि है तो ह्यूम, कांट, हीगेल, शोपेनहार, क्रोचे आदि आधुनिक कला व सौन्दर्य प्रमुख विवेचक हैं। अठारवीं शताब्दी में वामगार्टन, विर्को और कांट ने व्यवस्थित रूप से सौन्दर्य का शास्त्रीय अध्ययन किया।

<u>बोसा के अनुसार</u> – सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से व्यक्त सौन्दर्य है। उनकी दृष्टि में प्राकृतिक सौन्दर्य व कलात्मक सौन्दर्य में अन्तर दोनों ही मानव कल्पना और इन्द्रिय बोध पर निर्भर है। सौन्दर्यशास्त्र सुन्दर का दर्शन है। हीगल मानते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं का दर्शन है। सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य से है। उनका मानना है कि ईश्वर ही, जो सुन्दर है, की अभिव्यक्ति प्रकृति और मानव द्वारा सृजित कलाकृतियों में होती है।

मेक्स डेजायर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में 'सौन्दर्य शास्त्र और कला के समान्य विज्ञान ' नाम से सभी विचारकों के मतों को एक साथ लेने का विचार रखते हैं। धीरे–धीरे यह विचार व्यापक होता गया और आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र आज केवल पाश्चात्य कलाओं की विवेचना करता है वरन् विश्व की सामान्य कलाओं का विवेचन व विश्लेषण कर अध्ययन कर रहा है, और सौन्दर्य का क्षेत्र व्यापक हो रहा है।

लेंगर का मत आधुनिक विचारकों के मतों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लेंगर का मत है कि सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं के दार्शनिक विकल्पों और समस्याओं का सैद्धान्तिक निरूपण है। मुनरो नामक विचारक ने भी सौन्दर्यशास्त्र को स्वतंत्र विषय में परिभाषित किया। इस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक विचारों ने सौन्दर्यशास्त्र को विज्ञान की कोटि में स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया।

वास्तव में सौन्दर्यशास्त्र भारतीय वाड़्मय के लिए एक नया शब्द है। वर्तमान से पुराने समय तक भारतीय वाङमय में न तो इस शब्द का प्रयोग मिलता है और न ही इस नाम में किसी शास्त्र का उल्लेख मिलता है। संगीत में सौन्दर्य का तात्पर्य नाद सौन्दर्य से है। हिन्दी तथा कुछ अन्य भाषाओं में इसका इस्थैटिक्स के पर्याय से प्रयोग किया गया है। यह यूनानी भाषा के एस्थैटिक्स शब्द से उत्पन्न हुआ है। परंपरानुसार सौन्दर्यशास्त्र दर्शन की एक शाखा है, जिसका विवेचन विविध कला और प्रकृति का सौन्दर्य है। कुछ आधुनिक विचारक इसे दर्शन की अपेक्षा विज्ञान कहना अधिक पसन्द करते हैं। सौन्दर्यशास्त्र का मूल विषय सौन्दर्य के स्वरूप की व्याख्या है।

सौन्दर्य शब्द का अंग्रेजी शब्द में पर्याय ब्यूटी है। ब्यूटी का अर्थ है रसिक का भाव अथवा रसिकता का श्रृंगारिक पुरूष का गुण है। संसार में सौन्दर्य के विभिन्न रूपों के अलग दृष्टिकोंण है और किसी भी वस्तु के सौन्दर्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजि दृष्टिकोण होता है और कुछ का सौन्दर्य के प्रति आदर्शवादि दृष्टिकोण है। सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अपने ढंग से प्रस्तुत की है जो कुछ इस प्रकार है :–

1. **हैलमुट कुनन के अनुसार** –''सौन्दर्यशास्त्र कलाओं एवं उनसे सम्बद्ध व्यवहार तथा अनुभव का सैद्धान्तिक अध्ययन है। परंपरा के अनुसार यह दर्शन की एक शाखा है। इसका उद्देश्य सौन्दर्य, कला और प्रकृति में अभिव्यक्त उसके बहुविध रूपों का अध्ययन है।''

2. **एफ. ई. स्पाट के अनुसार** – ''कुछ अन्य विद्वानों ने सौन्दर्यशास्त्र का प्रयोग कला संबंधी सामान्य परिपेक्ष के अर्थ में किया है जो दार्शनिक भी हो सकता है और यह वैज्ञानिक भी हैं अथवा यह प्रस्ताव दिया है कि ''सौन्दर्यशास्त्र'' को विज्ञान भी मान लेना चाहिए।''

3. **हीगल के अनुसार** – ''यह एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। स्पष्ट रूप से देखें तो यह कला का क्षेत्र है या यह कहें कि यह ललित कला का क्षेत्र है। सौन्दर्यशास्त्र शब्द ग्रीक भाषा का शब्द है, इसका अर्थ है दार्शनिक। ऐस्थेटिक्स जिसे देखने से पता चलता है कि 18 शताब्दी से पहले इसका कोई अस्तित्व नही था।''

4. **प्लेटो** – प्लेटो ने सौन्दर्य की विवेचना दर्शनशास्त्र के अन्र्तगत की है और दर्शन के क्षेत्र में सत्य को सौन्दर्य से अधिक महत्व दिया। प्लेटो ने ईश्वर को ही सुन्दर माना है।

5. **लेक स्पईनेक** – इन्होंने ज्ञान के दो भाग किए – प्रथम तर्क संगत और दूसरे को ''इन्द्रिय ज्ञान कहा था।

<u>दार्शनिक सौन्दर्य</u> – सौन्दर्यशास्त्र दर्शन की एक शाखा है। हिन्दी कोष के अनुसार दर्शन वह शाखा है जिसमें आत्मा, जीव मोक्ष धर्म है। सौन्दर्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र में साम्य यह है सौन्दर्यशास्त्र जिन ललित कलाओं का अध्ययन करता है उनका लक्ष्य ही परम सुन्दर ईश्वर को स्थापित करना है। योग दर्शन में जिस प्रकार एकाग्रता की आवश्यकता होती है, ललित कलाएँ भी एकाग्रता की आदि होती हैं। ललित कलाऍ एकाग्र चिन्तन और बह्य आदि से सम्बन्ध रखती हैं। इसी स्थान पर दर्शनशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र का साम्य हो जाता है। किन्तु सौन्दर्यशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र इसके अतिरिक्त विविध कलाओं के समाज सौन्दर्य तत्व, कलाकार और उसके गुण, कला, सृजन व उसका अन्य तत्व को ग्रहण करता है, दर्शनशास्त्र इन्हें ग्रहण नहीं करता और यही इन दोनों के बीच भिन्नता है।

भारतीय सौन्दर्य दर्शन प्रधान है व आध्यात्मिक भी है। सामान्य दृष्टिकोण से कला जहां एक ओर प्रकृति की अनुकृति है तो दूसरी ओर कलाकार की आत्मा की अभिव्यक्ति के रूप में होती है, उसी प्रकार चित्र तत्व की अभिव्यक्ति कला रूप में होती है। भारतीय सौन्दर्य दर्शन पाश्चात्य सौन्दर्य दर्शन की अपेक्षा अधिक अंर्तमुखी व अध्यात्मिकता की ओर से उन्मुख है। यहाँ उत्तम वस्तु के सौन्दर्य में ईश्वरीय प्रेरणा व तेज निहित होने का भाव ही स्वीकार्य है और इस सौन्दर्य की साधना वस्तु या कला के माध्यम से होती है।

भारत में कला का रूप सत्यम है। कला का लक्ष्य शिवम है तथा अनुभूति सुन्दरम है अतः भारतीय सौन्दर्यदर्शन सर्वोकृष्ट है। सौन्दर्यशास्त्र के चिन्तन की प्रमुख विधियाँ या उपागम मुख्यतः 3 प्रकार के होते है :–

1. भाषायी विशलेषणात्मक
2. दृश्य प्रपंच्चयशास्त्रीय उपागम
3. अलग दुनिया का बनना

<u>1. भाषायी विश्लेषणात्मक</u> – सौन्दर्यशास्त्र के विधिवत् अध्ययन का जो प्रमुख उपागम है वह है भाषायी विश्लेषणात्मक। इसके प्रमुख उत्पादक है फ्रैगे रसेल मोर विटगैन्स्टाइन। इस उपागम की कुछ धारणाएँ हैं जो निम्नलिखित हैं –

दार्शनिक चिन्तन में अस्पष्टताओं से बचने के लिए दर्शन को विशिष्ट मतों का निरूपण और प्रतिपादन न मानकर भाषायी उपयोगों की विधियों का निरीक्षण मानना उपयुक्त है। **उदाहरण** – ''दर्शनशास्त्र एक विश्लेषण ग्रन्थ है'' व्याकरण की दृष्टि से इसमें कोई दोष नहीं है, इसका प्रत्येक शब्द अपने आप में सार्थक भी है परन्तु इस पूरे वाक्य का कोई अर्थ नहीं निकलता, लेकिन इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि निरर्थकता का बोध यहाँ प्रत्येक शब्द के अर्थ को समझने के बाद ही होता है। इसलिए भाषा में अर्थ का विश्लेषण करने वाली विधि अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती है।

ताल संगीत की आत्मा है, जो व्यक्ति ऐसा कहता है वह इस तथ्य का ध्यान नहीं रखता कि ध्रुपद गान की आलाप में ताल नही होती फिर भी वह गान का विशिष्ट अंग है। राइल कहते हैं कि भाव किसी एक अर्थ में हर कला की रचना–प्रक्रिया से अविभाज्य रूप से जुड़ी होती है। एक कलाकृति किसी विशिष्ट भाव की अभिव्यक्ति किए बिना भी श्रेष्ट हो सकती है। परन्तु इस रचना प्रक्रिया में तल्लीनता, तनम्यता और इस अर्थ में भाव होना आवश्यक है।

<u>2. दृश्य प्रपंच्यशास्त्रीय उपागम</u> – सौन्दर्य विषयक प्रत्ययों और समस्याओं का अध्ययन करने की विधि भी ऐसी है जो मनुष्य के अस्तित्व और जीवन की घटनाओं पर विशेष ध्यान देती है। दृश्य प्रपंच्यीय आगम का एक आग्रह यह है कि बिना किसी पूर्व मान्यता से प्रभावित हुए मानवानुभूति के वास्तविक तत्वों पर ध्यान देना प्रमुख कार्य है ना कि काल्पनिक तत्वों पर ध्यान देना दर्शन का प्रमुख कार्य है। इसकी अन्य धारणाओं में दो धारणायें प्रमुख हैं :–

1. ज्ञान की तुलना में सत्ता पर विचारण अधिक आवश्यक है।
2. चेतन्य मूलतः सभिप्राय होती है।

सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में वह शास्त्र है जिसमें कलाकार द्वारा प्रस्तुत कलाकृति को कला प्रेमी या कला मर्मज्ञ द्वारा प्रशंसात्मक भाव उत्पन्न हो। देखकर अथवा सुनकर कोई चित्र, मूर्ति या गायन या संगीत के प्रति उसका विवेचना, वैज्ञानिक पक्ष मुख्य रूप से भौतिक पक्ष का अध्ययन मात्र है। वह विचार करता है कि सौन्दर्य बोध किन कारणों व किन अवयवों से आनन्दानुभूति प्रदान कर रहा है, इसका अध्ययन सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत मानते हैं। वे ललित कलाओं के सभी पक्षों का सूक्ष्मता से अध्ययन करने को ही सौन्दर्यशास्त्र का विषय मानते हैं। सौन्दर्य को सुन्दर ही न मान कर मूल्य भी मानना हैं। वे इसे मूल्यांकन करने वाला विज्ञान मानते हैं।

2.6 संगीत में सौन्दर्यात्मक तत्व

संगीत सम्बन्धी किसी भी प्रस्तुति का आकलन हम किस आधार पर करते हैं यह पूर्ण रूप से उन तत्वों में निहित हैं जो कि हमारे सामान्य सौन्दर्य बोध पर प्रभाव डालता है। प्रायः कुछ प्रस्तुतियाँ या प्रदर्शन अच्छे, कुछ सामान्य तथा कुछ निम्न स्तर के कहे जा सकते हैं। हमारे ग्रंथों में कलाकार के गुण, अवगुणों का वर्णन भी मिलता है। संगीत की आनन्ददायक प्रस्तुति प्रायः निम्न तथ्यों पर निर्भर करती है :–

<u>1. राग</u> – राग संगीत की महत्वपूर्ण कृति है। किसी भी राग में रचना, काव्य के अनुरूप हो यह आवश्यक है। राग में रंजकता होना आवश्यक है। संगीत दर्पण में राग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :–

योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रन्जको जम चित्तानां स राग कथितो बुधैः।।

अर्थात जो स्वर, वर्ण से अलंकृत हो और श्रोता के चित्त में रंजकता उत्पन्न करता हो, वह राग है। राग को संगीत की आत्मा कहा गया है। राग द्वारा कलाकार राग की मुख्य नियमों के साथ–साथ

भावों को भी व्यक्त करता है। अन्तर्मन में अनुभूत भावों को व्यक्त करने में सक्षम कलाकार ही राग की सुन्दर प्रस्तुति कर सकता है। भावों को व्यक्त करने में सहायक तत्वों के सम्बन्ध में विचार करने से हमें ज्ञात होता है कि राग द्वारा भावाभिव्यक्ति के लिए नाद, स्वर, श्रुति, वर्ण, अलंकार, स्थाय, गमक, मींड, कण, तान व काकु आदि के यथास्थान प्रयोग आवश्यक है।

राग के सौन्दर्य स्थल :–

- मींड – एक स्वर से दूसरे स्वर तक ध्वनि को बिना खंडित किए हुए जाना मींड कहलाता है। ये दो प्रकार की होती है – विलोम तथा अनुलोम। जब आरोहित क्रम में मींड का प्रयोग हो तो अनुलोम मींड तथा जब अवरोह क्रम में मींड का प्रयोग हो तो विलोम मींड। मींड राग के सौन्दर्य वर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- सूत – मींड का प्रयोग जब गज अथवा तरब के वाद्यों पर होता है तो उसे सूत कहते है।
- कण – जब स्वर लगाते है तो स्वर के आगे या पीछे के स्वर को बहुत कम मात्रा में छुने को कण लगाना कहते है। राग की रंजकता व सुन्दरता उत्पन्न करने के लिए इस तकनीक का प्रयोग होता है।
- आन्दोलन – स्वरों को कम्पित करना आन्दोलन कहलाता है।
- खटका – कण और खटके लगभग एक ही तकनीक है। अन्तर यह है कि खटके में जिस स्वर का कण लगाया जाता है वह आघातपूर्ण होता है।
- मुर्की – राग में दो–तीन या अधिक स्वरों का अत्यन्त तेजी से वक्र प्रयोग मुर्की कहलाता है। टप्पा व ठुमरी गायन शैलियों में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

2. नाद – संगीतोपयोगी ध्वनि (रंजकता) की विशेष उपयोगिता व उसका प्रयोग नाद के अन्तर्गत होता है। संगीत रत्नाकर में शारंगदेव ने नाद के लिए कहा है :–

नादमे व्यजाते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः
वचसो व्यवहारोयं नादाधीनमतो जगत

सम्पूर्ण विश्व नाद के आधीन है। क्योंकि नाद से वर्ण, वर्णों से शब्द व वाक्य, वाक्य से व्यवहार होता है। पूरा विश्व नाद पर ही टिका हुआ है। नाद के सम्बन्ध विस्तृत जानकारी आपको आगे की इकाइओं में स्पष्ट होगी। जैसे :–

1. नाद का ऊँचा व नीचापन
2. नाद का छोटा व बड़ापन
3. नाद की जाति

नाद की इन सभी विशेषताओं से भावों को व्यक्त करने सहायता प्राप्त होती है। नाद की इन विशेषताओं में कई प्रकार की ध्वनियाँ जो सांगीतिक होती हैं सुनाई देती हैं। ये ध्वनियाँ ही भावों को व्यक्त करने में सक्षम होती है। यही ध्वनियाँ जो प्रयोग की जाती, इन्हें श्रुति कहते हैं।

3. श्रुति – सूक्ष्म व स्पष्ट ध्वनियाँ ही 'श्रुति' हैं। संगीत ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' में पं0 अहोबल ने लिखा है–

श्रुतयः स्युः स्वरा मिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना।
अहिकुराऽलतत् तत्र भेदोक्ति शास्त्रसम्मता।।

अर्थात जो ध्वनि सुनाई देती है वह 'श्रुति' कहलाती है। विद्वानों ने इन श्रुतियों के बाईस (22) भेद बताये हैं। श्रुति राग सौन्दर्य का आधार है। इन श्रुतियों का यथोचित, यथास्थान प्रयोगकर कलाकार भावों को व्यक्त करते हैं।

4. स्वर – बाइस श्रुतियों में ही विद्वानों द्वारा स्वर स्थापित किए गए हैं। राग का निर्माण स्वरों से ही होता है। जो ध्वनि स्थिर, स्पष्ट और श्रुति मधुर हो वह स्वर कहलाती है। *''स्वयं राजन्ते इति स्वराः।''* अर्थात स्वर वे हैं जो स्वयं शोभित होते है। स्वरों को अधिक रंजक बनाने के लिए सप्तक की रचना हुई। गीत के तीन अंग माने गये है – स्वर, ताल और पद। इन तीनों अंगों में से स्वर प्रमुख है।

5. सप्तक – सौन्दर्य की वृद्धि के लिए सात स्वरों को तीन सप्तकों में विभाजित किया गया – मन्द्र, मध्य व तार। सप्तकों के स्वरों का प्रयोग कर भावों को व्यक्त करने में अधिक प्रवीणता आती है और सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। अलग–अलग रागों की बढ़त अलग–अलग सप्तकों में होती है और इन्हीं के अनुसार राग में सौन्दर्य उत्पन्न होता है।

6. आलाप – राग के विस्तार हेतु आलाप किया जाता है। आधुनिक आलाप को हमारे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित रूपकालाप, रूपक तथा आलाप्ति के समकक्ष मान सकते हैं। राग के आरंभ से प्रत्येक स्वर के महत्व व राग के नियमानुसार विस्तार करने की प्रक्रिया आलाप कहलाती है। विलम्बित, मध्य व द्रुत लय में आलाप कर राग में सौन्दर्य वृद्धि की जाती है।

7. तान – तानों का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है। तान का प्रयोग राग आकृति को स्पष्ट कर सुन्दर बनाती है। तानों के विभिन्न प्रकार राग के भावों को स्पष्ट करते हैं। गमक, वक्र व सपाट तान आदि से राग की आकृति स्पष्ट होती है, जिससे राग का सौन्दर्य झलकता है। मध्य व द्रुत लय में तानों का यथोचित प्रयोग, राग में भाव उत्पन्न कर सौन्दर्य वृद्धि करता है।

8. वर्ण – गायन की क्रिया को 'वर्ण' से जाना जाता है, वर्ण चार प्रकार से समझा जा सकता है :–

1. स्थायी वर्ण
2. आरोही वर्ण
3. अवरोही वर्ण
4. संचारी वर्ण

इन वर्णों से राग का सौन्दर्य बढ़ाया जाता है। वर्ण द्वारा ही आलाप, तान तथा गीत रचना को सुन्दर बनाया जाता है। वर्णों के तरह–तरह के प्रयोग से राग का सौन्दर्य स्पष्ट होता है और कलाकार भावों को व्यक्त करने में समर्थ होता है।

9. अलंकार – वर्णों को तरह–तरह से प्रयोग करने पर अलंकार बनते हैं। वर्णों को सुन्दर रूप में क्रमपूर्वक गाने–बजाने से अलंकारों का निर्माण होता है। भावों को प्रदर्शित करने के लिए अलंकारों का प्रयोग कलाकार करता है।

विशिष्ट स्वर संदर्भअलंकार प्रचक्षते।

वर्णों को क्रम से संयोजित करने पर अलंकारों की रचना होती है जो सौन्दर्य को बढ़ाती है। प्राचीन ग्रंथकारों में भरत, शारंगदेव, अहोबल आदि ने अलंकारों पर सौन्दर्य वृद्धि हेतु विशेष बल दिया है। अलंकारों से गायन, वादन की रचनाओं का श्रृंगार किया जाता है तो वह सुन्दरतम हो जाती है। अलंकारों के प्रयोग से राग व रचना का सौन्दर्य बढ़ जाता है और प्रदर्शन प्रभावी होता है।

10. गमक – **स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः।** अर्थात स्वर का वह कंपन जो श्रोता चित्त को सुख प्रदान करे गमक कहलाता है। स्वर की अपनी श्रुति से, साथ के स्वर की श्रुति तक आना जाना गमक है। अन्य श्रुति की छाया मुख्य स्वर की श्रुति में प्रतीत होने से वह सुखद लगता है। गमक का प्रयोग सूक्ष्म है परन्तु सुन्दर है। कलाकार के अभ्यास व चिन्तन द्वारा ही राग में गमक के प्रयोग से

सौन्दर्य वृद्धि होती है। गमक से स्वरों के बीच निरंतरता व अखण्डता प्रस्तुति को सुन्दर बनाती है तथा राग का स्वरुप भी स्पष्ट होता है।

11. स्थाय – पं0 शारंगदेव के अनुसार :–

रागस्याक्यः स्थायो

राग का मुख्य अवयव स्थाय है। स्वरों का विस्तार राग की पहचान, प्रयुक्त स्वरों का महत्व स्थाय में ही समझा जा सकता है। प्रायः गायक–वादक की निपुणता स्थाय के श्रवण से ही आँकी जाती है। राग का पूरा स्वरूप, विभिन्न अंलकारों, गमक के प्रकारों से सुसज्जित कर प्रस्तुत करने से स्पष्ट होता है।

हमारी गायन शैलियों – ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि में भी स्थायी को विस्तृत रूप देकर प्रस्तुत करने की परम्परा, इसी स्थाय के अनुसार चल रही है। किसी भी प्रदर्शन में गुणी कलाकार स्थाय को विस्तार से प्रस्तुत करता है और प्रभावी बनाते हुए भाव पक्ष को प्रस्तुत करता है, जो सौन्दर्य के लिए अत्यावश्यक है।

इसी प्रकार ताल व लय का स्पष्ट व यथोचित प्रयोग व स्वरों को ताल व लय से संमिश्र व संयोजित कर सौन्दर्य वृद्धि करता है। ताल को आधार या प्रतिष्ठापक कहा है। ताल के दस प्राणों– काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति तथा प्रस्तार को ध्यान में रखकर जो भी रचना प्रस्तुत की जायेगी वह अवश्य सौन्दर्य वृद्धि करेगी। सौन्दर्यात्मक तत्वों में गीत रचना या बन्दिश का महत्व उल्लेखनीय है। बन्दिश का राग नियमों के साथ–साथ ताल पक्ष व सुन्दर–कर्णाप्रिय स्वर संयोजनों पर आधारित होना आवश्यक है। गीत श्रृँगारिक, करूण आदि शब्दों व भावों से परिपूर्ण हो तो सुगमता से बोधगम्य होता है और सौन्दर्य की वृद्धि करता है। अतः बन्दिश की रचना में मूल तत्वों राग, ताल, शब्दों के भाव–अर्थ का ध्यान रखा जाता है।

प्राचीन व वर्तमान संगीत विद्वानों ने बन्दिशों के महत्व व प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित कर कई लोकप्रिय बन्दिशें तैयार की है। वर्तमान विद्वान भी सभी पक्षों को ध्यान में रख कर गीत रचना कर रहे हैं। आज जहाँ पुरानी व घरानेदार बन्दिशों का प्रयोग हो रहा है वहीं नवीन रचनाएँ भी सुनने को मिल रही हैं। आज विशेषकर शब्द रचना पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

2.7 सौन्दर्य के आवश्यक तत्व

सौन्दर्य के कुछ आवश्यक तत्वों पर हम विचार करेंगे जो कला में सौन्दर्य उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। संगीत में इन तत्वों का प्रयोग कर सौन्दर्य निष्पत्ति सम्भव है।

1. संगठन व संयोजन – कलाओं का प्रमुख सौन्दर्य तत्व अनेकता में अभिर्भाव है, यह कला के सभी तत्वों के सम्मिलित प्रयोग से सम्भव है। संगठन व संयोजन का संगीत कला में बहुत महत्व है। स्वरों को लगाने का तरीका; वादी, सम्वादी आदि स्वरों का उचित प्रयोग, आरोह अवरोह में लगने वाले स्वर इत्यादि से राग के स्वरूप को सुन्दर बनाया जाता है। किसी राग का वादी स्वर पूर्वांग में होता है तथा सम्वादी उत्तरांग में होता है, दोनों एक साथ पूर्वांग या उत्तरांग में नहीं होते हैं। इन्हीं विशेषताएं के कारण राग प्रस्तुतिकरण रोचक बनता है। यदि किसी राग में किसी स्वर के दो रूप प्रयोग किए जाते हैं तो आरोह में उस स्वर का शुद्ध रूप व अवरोह में कोमल रूप प्रयोग किया जाता है। राग के स्वरों में संयोजन का कार्य, पूर्वांग–उत्तरांग की यही विशेषता का है। एक ही राग की विभिन्न बन्दिशें राग के विभिन्न स्वरों से गाई/बजायी जाती है व विभिन्न तालों में होती है, फिर भी उनको सुनने पर उस राग विशेष का ही स्वरूप दिखाई पड़ता है।

2. नवीनता – कालिदास के अनुसार नवीनता, सौन्दर्य उत्पत्ति का आवश्यक तत्व है। संगीत के नियम सार्वभौम है, लेकिन संगीतकार अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से उसमें नवीनता पैदा करता है। उदाहरण के लिए एक ही राग को अगर कोई संगीतकार बार बार प्रस्तुत करें, तो हर बार उसमें नवीनता सुनाई देती है। या हम कहें कि एक ही राग अलग–अलग कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाए तो प्रत्येक कलाकार का उस राग को प्रस्तुत करने का ढंग अलग होगा। वह उसमें अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर विभिन्न एवं नवीन स्वर समुदायों का प्रयोग करेगा, अपने घराने की शैली की विशेषताओं को उसमें उजागर करेगा तथा अपनी साधना द्वारा उसे एक नवीन रूप देगा। इस नवीनता से ही विविधता जन्म लेती है।

3. सम्पूर्णता – किसी भी कला में पूर्णता होने पर ही सौन्दर्य की अनुभूति होती है। चाहे वह वास्तुकला हो, मर्तिकला हो, चित्रकला हो या फिर संगीतकला, ये तभी सुन्दर लगेगी जब यह पूर्ण हो अर्थात अपने सभी तत्व लिए हो। संगीत में अगर सिर्फ बन्दिश ही गाए जांए तो श्रोताओं को सौन्दर्यानुभूति नहीं होगी। पूर्ण सौन्दर्यानुभूति प्राप्ति के लिए आलाप, बन्दिश की स्थाई अन्तरे सहित प्रस्तुति, ताने आदि तत्व होना आवश्यक है। किसी भी कला के तत्वों को व्यवस्थित करके ही संपूर्णता प्राप्त की जा सकती है।

4. संतुलन – इस पृथ्वी पर हर वस्तु में संतुलन होना आवश्यक है अन्यथा उसके अस्तित्व को खतरा रहता है। कला और सौन्दर्य के मध्य संतुलन सामान्य तत्व है। किसी भी कला के समस्त तत्वों का उचित मात्रा में प्रयोग होने पर ही संतुलन की स्थिति सम्भव है और तभी सौन्दर्यानुभूति भी सम्भव है। संगीत की सभी विधाओं गायन, वादन तथा नृत्य में संतुलन अत्यन्त आवश्यक व महत्वपूर्ण है। संगीतकारों द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक प्रस्तुती में संतुलन होना आवश्यक है। गायन/वादन में एक सप्तक से दूसरे सप्तक में जाने में बन्दिश में, आलाप में, तानों में, ताल आदि में जब संतुलन रखा जाता है तभी प्रस्तुति सुन्दर लगती है। संतुलन स्थापित करने में ताल का महत्वपूर्ण स्थान है। तबला वादन में भी तबला वादक विभिन्न लयों में रचनाओं को बजाता है, ठेकों की लयकारी दिखाता है और साथ ही साथ मूल लय के साथ भी संतुलन बनाए रखता है, अतः हम कह सकते है कि संतुलन, कला में सौन्दर्य उत्पन्न करने हेतु आवश्यक तत्व है।

5. अनुपात – विभिन्न कलाओं में संतुलन, सौन्दर्यानुभूति के लिए आवश्यक है और संतुलन के लिए कलाओं (वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला व संगीतकला) के सभी तत्वों का एक निश्चित व सही अनुपात में होना आवश्यक है। अनुपात से ही अनुकूलता व स्वाभाविकता प्रतीत होती है। संगीत (गायन, वादन व नृत्य) में सौन्दर्यवर्द्धन हेतु इसके विभिन्न तत्वों का सही अनुपात में होना जरूरी है। राग में वादी स्वर, सम्वादी व अनुवादी स्वरों की अपेक्षा अधिक लगता है; सम्वादी स्वर, अनुवादी स्वर की अपेक्षा अधिक प्रयोग होता है। राग स्वरूप निर्धारण में इस अनुपात का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर किसी राग में वादी स्वर का प्रयोग कम कर सम्वादी का प्रयोग अधिक किया जाए तो राग ही बदल जाएगा। उदाहरण– देशकार और भूपाली। कलाकार गायन शैलियों के माध्यम से भी उक्त शैली के तत्वों के निश्चित अनुपात को कायम रखते हुए अपनी प्रस्तुती देता है। जैसे ध्रुवपद में आलाप में 3–5 चरण होते हैं ख्याल में नहीं। अगर ख्याल में ध्रुवपद की तरह चरणों में आलाप किया जाए तो ख्याल गायन शैली की अपनी विशेषताएं दृष्टिगोचर नहीं होगी और ख्याल का जो सौन्दर्य है उसकी अनुभूति हम नहीं कर पाएंगे। ताल में भी संतुलन, उसके विभागों का सही अनुपात में होने से ही सम्भव है।

6. विरोधाभास – कलाओं के तत्वों में विरोधाभास दिखाई देने पर भी उनके मूल में संगति दिखाई देती है। कभी–कभी विरोधाभास से कला या उसके तत्वों के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने व उसके सही रूप को प्रकट करने में सहायता मिलती है। एक ही थाट के दो रागों की प्रकृति में भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण – मारवा थाट का मारवा यदि गंभीर प्रकृति का है तो सोहनी चंचल प्रकृति का। गायन वादन

या नृत्य की विभिन्न क्रियाओं को इस प्रकार दर्शाया जाता है कि उनमें संगति दिखाई देती है। संगीत में सौन्दर्य उत्पन्न करने में यह विशेषता आवश्यक है। किसी राग के स्वर (वादी, संवादी, अनुवादी व विवादी) अपनी प्रकृति व अनुपात में भिन्नता होने पर भी, मिलकर राग के स्वरूप को प्रकट करते हैं। कई राग दो या दो से अधिक रागों के मिश्रण से बनते हैं किन्तु उनकी प्रस्तुति के वक्त वे एक राग के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं। संधिप्रकाश रागों के दो रूप प्रातः काल व सांयकाल में परिणित हों तो विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

7. व्यवस्थित क्रम – प्रत्येक कला की रचना तब सम्भव है जब उसके अव्यव व्यवस्थित क्रम में हों। काव्य और संगीत कला विविध रूप क्रम से अग्रसर होती है। राग प्रस्तुतीकरण में आलाप, राग में प्रयुक्त स्वरों की बढत, बन्दिश, तानें आदि सब व्यवस्थित क्रम में अग्रसर होते हैं। कलाकार राग के तव्वों को व्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत कर राग का स्वरूप दर्शा सकते हैं जिससे श्रोता को सौन्दर्यानुभूति होगी। दूसरे शब्दों में काव्य व संगीत कला की गतिशीलता सौन्दर्य निर्माण में सहायक होती है।

8. स्थायित्व – कलाओं में सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए स्थायित्व का गुण आवश्यक है। संगीत की यह विशेषता है कि राग के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता अगर वह राग किसी गायक या वादक द्वारा गाया या बजाया जाए। प्रस्तुतीकरण का ढंग अलग–अलग हो सकता है किन्तु मूल स्वरूप हमेशा वही रहता है। यही स्थायित्व का गुण है कि विभिन्न बंदिशों व तालों में होने पर भी राग का स्वरूप स्थिर रहता है। राग का स्वरूप बंदिश, कलाकार, स्थान आदि की भिन्नता होने पर भी वही रहता है।

9. विविधता – कलाओं के सौन्दर्य उत्पत्ति के प्रमुख लक्षणों में से विविधता महत्वपूर्ण लक्षण है। अपनी प्रतिभा से कलाकार, कलाकृति को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत कर सौन्दर्य बोध कराता है। संगीत में एक ही राग में अलग–अलग गायकों द्वारा गाए जाने या विभिन्न वाद्यों पर बजाए जाने पर विविधता के दर्शन होते हैं। संगीत में यह विविधता सौन्दर्यानुभूति कराती है एवं एकरूपता से भी बचाती है।

10. अलंकार – अलंकार अर्थात आभूषण सौन्दर्य उत्पत्ति के आवश्यक तथ्यों में से एक है। ललित कलाओं में सौन्दर्य उत्पादन के लिए अलंकार की आवश्यकता होती है। मूर्तिकला में मूर्ति को विभिन्न रंगों व आभूषण आदि से सजाया जाता है। काव्य में उपमा, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। संगीत में अलंकार का महत्व दर्शाने हेतु नाट्यशास्त्र में वर्णित है–''जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, पुष्प के बिना लता, श्रृंगार के बिना स्त्री शोभा नहीं देती, उसी प्रकार अलंकार के बिना गीत भी शोभा नही देता है, ''। संगीत में स्वर, वर्ण ,मीड, गमक, मूर्की आदि अलंकारों से सौन्दर्य वर्धन सम्भव है।

11. जटिलता – जटिलता बुद्धि से सम्बन्धित है। संगीत में सौन्दर्य वर्धन के लिए विविध प्रकार की कठिन स्वर–संगतियों का प्रयोग किया जाता है। तबले की कुछ बंन्दिशों में क्लिष्ट बोलों का चयन किया जाता है। इस प्रकार ये जटिल रचनायें सीधी रचनाओं से अधिक प्रभाव उत्पन्न करेंगी, परन्तु इन जटिलताओं को संगीत के नियम में होना आवश्यक है।

2.8 सौन्दर्य विषयक मान्यताएं

पाश्चात्य वाड्मय में प्रारम्भ से सौन्दर्य तत्व का व्याख्यान–विवेचन होता आया है। सौन्दर्यशास्त्र की सौन्दर्य विषयक मान्यताओं में मतभेद रहा है। प्रमुख रूप में सौन्दर्य विषयक मत के निर्धारण करने वालों के दृष्टिकोण को छः वर्गों में बांटा है :–

1. <u>अध्यात्मवादी दृष्टिकोण</u> – इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्लेटो, पलाटिनस, हीगेल, आगस्टीन, कांट आदि विद्वान आते हैं। इनके अनुसार सौन्दर्य ईश्वर का ही रूप है। वे मानते हैं कि ईश्वर में ही पूरी सृष्टि का सौन्दर्य विद्यमान है। हम अपने मन की आंखों से सौन्दर्य को देख सकते हैं। यह दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के बहुत निकट है। मानव आत्मा, उस परम तत्व (अपने मूल उद्गम) से मिलने के लिए उत्सुक रहती है। सौन्दर्य चेतना का रहस्य इसी आभिलाषा में छुपा है। इसका अर्थ है कि सौन्दर्य की भावना मूलतः एक आध्यात्मिक अनुभूति है। इस मत को मानने वाले सौन्दर्य को उसी रूप में देखते हैं जिस प्रकार भारत में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, को। अर्थात् जो परम सत्य है वही ईश्वर है। सौन्दर्य प्राप्ति के लिए आत्मिक संतुष्टि की जरूरत है न की भौतिक साधन की। इस मत के पोषक मानते हैं कि ईश्वर में ही सम्पूर्ण सृष्टि का सौन्दर्य है अतः सौन्दर्यानुभूति के लिए परमात्मा से मिलन होता है तब अलौकिक सौन्दर्यानुभूति होती है।

2. <u>बुद्धिवादी दृष्टिकोण</u> – बुद्धिवादी दृष्टिकोण के पोषक सौन्दर्य को सीधे बुद्धि व विवेक से सम्बन्धित बताते है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत सेंट थामस, लाक एवं कोट प्रमुख हैं। इन विचारकों के अनुसार सौन्दर्य किसी पदार्थ या वस्तु से सम्बन्धित ना होकर बुद्धि से सम्बन्धित है। अर्थात् सौन्दर्य बुद्धि का गुण है। कांट के अनुसार सौन्दर्य का भौतिक अस्तित्व नहीं है। ये वास्तविक जगत की वस्तुओं से अलग है। कांट न ही 6 ट्रांसडेण्टल एस्थेटिक्स की उद्भावना की। इस वर्ग के विद्वानों के अनुसार मनुष्य अपने बुद्धि या विवेक से जिस भी वस्तु, चीज को सुन्दर कहते हैं वही सौन्दर्य है। मानव मस्तिष्क, बुद्धि व चिन्तन के द्वारा परख कर सौन्दर्यानुभूति करता है तथा इसके रूप और रंग की विशेषता और उपयोगिता नहीं रहती।

3. <u>रूपवादी दृष्टिकोण</u> – इस मत के पोषक मानते हैं सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर व बुद्धि से ना होकर भौतिक, वस्तुनिष्ठ या विषयगत है। उनके अनुसार सौन्दर्य पदार्थ या वस्तु में स्थित है। यह देखने वाले को प्रभावित करता है जिससे उसे सौन्दर्यानुभूति होती है। यह ना तो कोई आध्यात्मिक जगत से सम्बन्धित है और ना ही बुद्धि या चिन्तन सम्बन्धी। इस वर्ग में अरस्तु, बर्क, विलियम टामसन, पार्कर आदि विद्वान आते हैं। वे भौतिक जगत की वस्तु के विभिन्न रूपगत तत्वों को सौन्दर्य का आधार मानते हैं। वे मानते हैं कि वस्तु की रूपगत विशेषताओं से ही सौन्दर्य का अस्तित्व है। वही वस्तु सुन्दर है जिसका रूप, रंग व आकृति पूर्णरूपेण व्यवस्थित हो। यूनान में सर्वश्रेष्ठ मानव को ईश्वर की उपाधि दी गई है। अरस्तु प्रथम सौन्दर्यशास्त्री फिर आध्यामिकवादी थे। अरस्तु ने कला को प्रकृति का अनुकरण मानकर सौन्दर्य के बाह्य रूप को प्रमुखता प्रदान की। उनके अनुसार सौन्दर्य के प्रमुख तीन अंग माने हैं:–

1. क्रमबद्धता (Order) 2. समता (Symmetry) 3. औचित्य (Definite Limitation)

अरस्तु के अनुसार सौन्दर्य के तीन तत्व हैं:–

1. सम्मात्रा (Symmetry)
2. निश्चित व्यवस्थित क्रम (Orderly Arrangement)
3. निश्चित आकार (Certain magnitude)

वर्क के अनुसार आकाशीय सूक्ष्मता, कोमलता, वर्ण दीप्तिता तथा शुद्धता द्वारा ही सौन्दर्य प्रदर्शित किया जा सकता है।

लार्ड केमीज के अनुसार सौन्दर्य के रुप की विशेषता के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक है :–

1. कमबद्धता(Regularity)
2. समरुपता(Uniformity)
3. अनुपात(Proportion)

4. संतुलन(Balance)
5. सादगी(Simplicity)

विलियम टामसन के अनुसार सौन्दर्य का निर्माण 6 मूल तत्वों से होता है :–

1. अनुपात(Proportion)
2. छाया(Shade)
3. रेखा(Line)
4. रंग(Colour)
5. वैचित्र्य(Variety)
6. चिकनापन(Smoothness)

इस मत के कुछ विद्वान सौन्दर्य को सिर्फ देखने का अनुभव मानते हैं और कुछ इसे पदार्थ का गुण।

4. <u>भाववादी दृष्टिकोण</u> – इस दृष्टिकोण से जो विचारक सम्बन्ध रखते हैं उनमें से मुख्य हैं– टॉलस्टाय, केरिट, हम्मान आदि। इन विद्वानों का मानना है कि कोई कला तब सौन्दर्यमय होगी जब उस कला का कलाकार अपने भावों को, कला के विभिन्न अवयवों (जैसे रंग, शब्द, ध्वनि आदि) के माध्यम से श्रोताओं/दर्शकों तक पहुँचा सके। इस स्थिति में कलाकार व प्रेक्षक में तादात्मय आवश्यक है। यही विचारधारा हमें भारतीय रस सिद्धान्त में देखने को मिलती है। वही कला सुन्दर कहलाएगी जो कलाकार, श्रोता/दर्शक के भावों में सामंजस्य स्थापित कर सके। इस मत के अनुयायी मानते हैं कि इसमें तीन गुण अवश्य होने चाहिए :–

1. वैयक्तिकता 2. स्पष्टता 3. सत्यता

विद्वान कल्पना और शैली का सौन्दर्यानुभूति का आवश्यक लक्षण मानते हैं।

5. <u>उपयोगितावादी दृष्टिकोण</u> – इस मत के विचारकों में मुख्य रूप से सुकरात का नाम आता है और वे सौन्दर्य के अस्तित्व को वस्तु की उपयोगिता में मानते हैं। वे कहते हैं कोई वस्तु तब सुन्दर है जब वह मानव जीवन के लिए किसी भी अर्थ में उपयोगी हो। वह वस्तु सौन्दर्यमय नहीं है जा उपयोगी नहीं हैं। अतः कह सकते हैं कि सौन्दर्य का महत्व वस्तु की उपयोगिता में है ना की उसके बाह्य रूप में। सुकरात प्रत्येक वस्तु का महत्व उसकी उपयोगिता की दृष्टि से लगाते थे। उदाहरण के लिए यदि किसी भी प्रकार का संगीत श्रोता को दिल को ना छू सकें तो वह सौन्दर्य की श्रेणी में नहीं आता। अर्थात् उपयोगिता में ही सौन्दर्य निहित है।

6. <u>मूल्यवादी दृष्टिकोण</u> – इस दृष्टिकोण के विचारक मानते हैं कि किसी वस्तु का सौन्दर्य उसके मूल्य से सम्बन्धित है। समाज के व्यक्तियों में संस्कार, शिक्षा, वातावरण एवं सत्रय का, वस्तु के मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यह सब चीज देशकाल परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न होगीं।

2.9 सौन्दर्यशास्त्र व अन्य शास्त्र

1. <u>दर्शन शास्त्र</u> – भारतीय दर्शन शास्त्र की एक शाखा होते हुए भी सौन्दर्यशास्त्र दर्शनशास्त्र से भिन्न है। सौन्दर्यशास्त्र में हम सौन्दर्य तत्व, कलाकार, कला रासिक आदि सम्बन्धित तत्वों का अध्ययन करते हैं। जबकि दर्शनशास्त्र में आत्मा, जीव, बाहय जगत, प्रकृति, पुरूष, धर्म, मोक्ष आदि का अध्ययन करते हैं। दर्शनशास्त्र व सौन्दर्यशास्त्र की समानता यह है कि दोनों शास्त्रों का लक्ष्य परम सुन्दर को रूपायित

करना है। सर्वोत्तम कलानुभूति को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया। इसी स्थल पर भारत वर्ष के दर्शनशास्त्र व सौन्दर्यशास्त्र में समानता है।

2. मनोविज्ञान – मनोविज्ञान के शास्त्र में भिन्नता यह है कि मनोविज्ञान समस्त अनुभव जगत् के सन्दर्भ में विचार करता है तथा सौन्दर्यशास्त्र कलागत अनुभव के सन्दर्भ में। मनोविज्ञान में मन के भावों, मनोविकारों, मूल प्रवृत्तियों आदि का अध्ययन किया जाता है जबकि सौन्दर्यशास्त्र में मानव मन की सूक्ष्म सौन्दर्य भावना व सौन्दर्यानुभूति का अध्ययन किया जाता है।

3. कलाशास्त्र – कला शास्त्र के अन्तर्गत हम चित्रकला, वास्तुकला संगीतकला आदि के सर्जक तत्वों, रचना प्रणाली तकनीकी, कला प्रशिक्षण, कला विशेषज्ञों का योगदान, कलाकार के विशेष गुणों का अध्ययन करते है, जबकि सौन्दर्यशास्त्र में सौन्दर्य पक्ष ही सार्वाधिक रहता है। मुख्यतः ललित कलाओं के सभी सौन्दर्य पक्षों का अध्ययन सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1) सौन्दर्य शास्त्र के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों की क्या अवधारणा है ?
2) पाश्चात्य विद्वानों का सौन्दर्यशास्त्र के विषय में क्या मत है ?
3) भारतीय संगीत में सौन्दर्य–बोध से आप क्या समझते हैं ?
4) 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की व्याख्या कीजिए।

2.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय व पाश्चात्य संगीत में सौन्दर्यशास्त्र के महत्व को जान चुके होंगे। भारतीय चिन्तक सौन्दर्यानुभूति को आन्तरिक मानते हैं। इन्द्रियों में प्राप्त सौन्दर्य बोध को ग्रहण कर अन्तरात्मा को सुख प्राप्त होता है वही सौन्दर्यशास्त्र में अध्ययन योग्य है। संगीत में मुख्य रूप से श्रवणेन्द्रियों से जो आनन्दानुभूति हमारे मन–मस्तिष्क को होती है उसके कारकों का अध्ययन हम सौन्दर्यशास्त्र में करते हैं। पाश्चात्य संगीत विचारक इसे विज्ञान के समकक्ष रख कर अध्ययन करने का विचार रखते है। भारतीय सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अवधारणा के ही समीप पाश्चात्य विचारकों के मतों में समानता है। मुख्य अवयव जो सौन्दयानुबोध के लिए आवश्यक है कलाकार, कलाकृति व कला रसिक जनों में समान होने से ही सौन्दर्यानुभूति होती है। सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत हम इन्हें कारक तत्वों का अध्ययन करते है। सौन्दर्य बोध व पुनः आनन्दानुभूति के सम्बन्ध में मुख्य अन्तर यह है कि भारतीय विचारक इसे मात्र आन्तरिक सुख का प्रतिफल मानते हैं। यह हमारे मन, मस्तिष्क को सुख प्रदान करने वाला है, वहीं पाश्चात्य विचारक इसे इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करने वाला मानते हैं।

2.11 शब्दावली

- पाश्चात्य – पाश्चिम के देशों में प्रचलित या पश्चिमी देशों से सम्बन्धित।
- रंजकता – आकर्षित कर इन्द्रियों को अच्छा लगने वाला गुण।
- आनन्दानुभूति – आनन्द (सुख) का अनुभव।
- शास्त्रज्ञ – शास्त्र को जानने वाला।

2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, प्रो0 स्वतन्त्र, *सौन्दर्य, रस व संगीत,* अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
2. शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल(सम्पादक एवं व्याख्याकार), भरत(मूल ग्रन्थकार), *नाट्यशास्त्र अध्याय – 28,* चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. जौहरी, सुश्री सीमा, *संगीतायन,* राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. माथुर, सुश्री मीरा, *संगीत परामर्श –2।*
5. जोशी, स्व0 पं0 भोला दत्त, *संगीत शास्त्र* ।

2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सौन्दर्य शास्त्र क्या है? भारतीय विचारकों के इस शास्त्र से सम्बन्धित मत क्या है?
2. भारतीय शांस्त्रीय संगीत की तीनों विधाओं में सौन्दर्यानुभूति पर विस्तार पूर्वक लिखिये।
3. पाश्चात्य विचारकों की सौन्दर्य शास्त्र के प्रति अवधारणा को समझाइये।

इकाई 3 – संगीत की व्याख्या भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नाट्यशास्त्र का परिचय
3.4 नाट्यशास्त्र के 28–33 अध्याय
3.5 गान्धर्व का स्वरूप
3.6 स्वर, ग्राम–मूर्च्छना व श्रुति
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप रस, लय व छन्द को समझ चुके होंगे तथा संगीत में सौन्दर्य उत्पन्न करने में रस, लय व छन्द के महत्व को भी जान चुके होंगे। आप सौन्दर्य के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों तथा पाश्चात्य विद्वानों के मत से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार संगीत के पहलुओं पर विचार किया गया है। भरत नाट्यशास्त्र का रचना काल ठीक–ठीक ज्ञात नहीं है। संगीत में इसे पॉचवा वेद भी कहा जाता है। भरत से पूर्व भी संगीत के विद्वान हुए हैं जिनका नाम भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है। इस इकाई में भरत के समय के संगीत का भी वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत के विभिन्न आवश्यक तत्वों से परिचित हो सकेंगे। इन तत्वों का भारतीय शास्त्रीय संगीत में क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई से समझ सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- भरत से पूर्व के संगीत के प्राचीन इतिहास व शास्त्र से सम्बन्धित ज्ञान को जान सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत के विभिन्न आवश्यक तत्वों से परिचित होकर आज के परिप्रेक्ष्य में उनकी सार्थकता व प्रासंगिकता सिद्ध कर सकेंगे।
- भरत काल में संगीत की स्थिति, उपयोगिता एवं विकास क्रम को भी समझ सकेंगे।

3.3 नाट्यशास्त्र का परिचय

संगीत के प्राचीनतम् ग्रन्थों में केवल एक मात्र भरत का नाट्यशास्त्र उपलब्ध है। उसमें विस्तृत रूप से वर्णित संगीत के सैद्धान्तिक व परिभाषिक तथा तकनीकी शब्दावली का अकाव्य ज्ञान का भण्डार है। नाट्यशास्त्र में मुख्यतः नाटक, अभिनय, मंच आदि से सम्बन्धित पूर्ण विवरण तो मिलता ही है साथ ही 28 वें अध्याय से 33 वें अध्याय तक संगीत के हर पक्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है। चूँकि नाट्य में संगीत का महत्व शास्त्रकार अच्छी तरह से जानते थे फलतः संगीत की सूक्ष्मति सूक्ष्म पक्ष को अछूता नहीं छोड़ा गया है। विस्तार से संगीत के हर पक्ष को अध्ययन हेतु सुगम बनाया गया है। भरत ने भारत वर्ष की प्राचीन नाट्य विधा व नाटय के सहयोगी संगीत(गायन, वादन व नृत्य विधा) को नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के द्वारा आज तक जीवित रखा हुआ है। जहां भी नाट्य या संगीत की चर्चा होगी नाटयशास्त्र का उल्लेख वहॉ अवश्य होगा।

भरत का नाटयशास्त्र एक ऐसी कड़ी है जिसके अध्ययन से आपको ज्ञात हो सकेगा कि भरत से पूर्व के संगीतकारों तथा विद्वानों की रचनाओं, विचारों या उनकी कृतियों में क्या था? भरत से पूर्व के संगीत विद्वानों के जन्म स्थान के सम्बन्ध में, जन्म का समय तथा रचना काल का समय ज्ञात नहीं हो सका है। केवल अनुमान से उन्हें भरत से पूर्व का माना गया है। वेदों की रचना के बाद से भरत कृत नाटयशास्त्र के रचना काल तक संगीत के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। भरत के नाटयशास्त्र में संगीत के विस्तृत ज्ञान का जो विवरण मिलता है वह उपरोक्त बात को प्रमाणित करता है। इस मुख्य कारण से ही नाटयशास्त्र को संगीत का वेद या पॉचवा वेद कहा जाता है।

3.4 नाट्यशास्त्र के 28 से 33 अध्याय

नाट्यशास्त्र के छह अध्याय 28–33 तक संगीत से सीधा संबंध रखते हैं। 28वें अध्याय में वाद्यों के चार भेद, स्वर, श्रुति, ग्राम–मूर्च्छनाएं, 18 जातियां; उनके ग्रह, अंश, न्यास, इत्यादि का विवरण है। 29वें अध्याय में जातियों का रसानुकूल प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार की वीणाऍं और उनकी वादन विधि दी गई है। 30वें अध्याय में सुषिर वाद्यों का वर्णन; 31वें में कला, लय और विभिन्न तालों का विवरण; 32वें में ध्रुवा के पॉच भेद, छन्द विधि तथा गायक–वादकों के गुण दिए हैं और 33वें अध्याय में अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, भेद, वादन–विधि, इनके वादन की 18 जातियां और वादकों के लक्षणों का वर्णन है।

भरत कृत नाट्यशास्त्र में गायन के साथ वाद्यों के समूह को आतोद्य कहा गया। आतोद्य के अन्तर्गत चार प्रकार के वाद्यों(तत्, सुषिर, अवनद्ध व घन) का विवरण मिलता है। इन्हें **कुतप** भी कहा है। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार तत् व सुषिर वाद्यों का प्रयोग स्वर के लिए तथा अवनद्ध व घन वाद्यों का प्रयोग ताल के लिए किया जाता है। इन चारों वाद्यों के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है –

ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमव नऋं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरों वंश उच्यते।। नाट्यशास्त्र 28/2

भरत का यह वर्गीकरण वादन क्रिया पर आधारित है इसलिए यह वर्गीकरण मौलिक कहा जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन युग में विकसित वाद्यों के प्रकारों को देखते हुए महर्षि भरत का वर्गीकरण सर्वथा उचित तथा पर्याप्त प्रतीत होता हैं। उनके अनुसार –

तंत चैवावन्त्रं च घनं सुषिरमेंव च।
चतुर्विधं लु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणन्वितम्।। नाट्यशास्त्र 28/1

वाद्य यंत्र की बनावट के आधार पर उनका वर्गीकरण नहीं किया गया। इन वाद्यों के अतिरिक्त नये वाद्यों का भी प्रचलन शुरु हुआ। वाद्यों के निर्माण की प्रकिया आज तक जारी है। एक ही वर्ग के विभिन्न वाद्यों की वादन शैली भी भिन्न–भिन्न होती है। भरत ने वीणा वादन के सहायक आदि अन्य उपकरणों के प्रयोग के आधार पर चार भेद बताए हैं – 1. विस्तार 2. करण 3. आविद्ध तथा 4. व्यंजन।

इन सभी भेदों के पुनः अनेक प्रभेद बताए हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र के 34वें अध्याय में वीणा के चार प्रकार दिए है तथा उनका वर्णन विभिन्न पक्षों से किया गया है – 1. चित्रा 2. विपच्चि 3. कच्छपी 4. घोषक। इन वीणाओं में तारों की संख्या अलग–अलग है। नाट्यशास्त्र के 30वें अध्याय में सुषिरातोद्य विधान है। हवा या फूॅंक से बजने वाले वाद्यों का भी वर्णन किया गया है। वंशी को भरत ने वेणुवाद्य कहा है।

एक श्लोक में गायन शब्द का उल्लेख है। गायकों के साथ चित्रा व विपंची नामक वीणा वादक होते थे। वे श्लोक में गायक, वादक व नाटय (नृत्य से सम्बन्धित) को एक साथ विविध आकर्षण वलि प्रयोगों से 'अलात चक्र' के समान रसोत्पत्ति करनी चाहिए। अतः स्पष्ट है कि संगीत की परिभाषा नाटय– शास्त्रानुसार, गीतं, वाद्यं तथा नृत्तं से हुई। 'नृत्तं मे नृत्य के साथ अभिनय भी है। कालान्तर में ''गीतं वाद्यं तथा नृतं त्रयं संगीतमुच्यते'' संगीत की इस परिभाषा से भी स्पष्ट हो जाता है।

भरत का नाटयशास्त्र का अठाइसवॉ अध्याय जिसे 'आतोद्य विधानाध्याय' कहा है इसके अन्तर्गत स्वर, वाद्य तथा गीत का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्य अध्यायों में ताल, ध्रुवा और अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया गया है। नाट्य में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए आतोद्य प्रमुख सहायक है। कंठ (गायन) स्वरों के साथ उक्त वाद्यों के प्रयोग से सुन्दरता को बोध प्रबल होता है। अकेले कण्ठ या गायन पर्याप्त प्रभावी नहीं होता।

गायन वादन व नृत्य एक दूसरे के सहयोगी है। गायन का प्रभाव बिना लय, ताल के सम्भव नहीं है और अभिनय के साथ नृत्यम् ताल–लयाश्रितम् कहा गया है। नाटयशास्त्र में स्पष्ट है कि गायन, वादन, तथा नृत्य संगीत के तीन पक्ष माने गए हैं। नाट्य में गायक, वादक व नृत्य का प्रयोग नाट्य की पूर्णता है।

नाटयशास्त्र को भरत के काल के बाद विद्वानों ने नाट्यशास्त्र को आधार ग्रन्थ मानकर कई व्याख्याएॅ की। कालान्तर में सभी ग्रन्थकारों ने नाटयशास्त्र के प्रत्येक अध्याय व प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या कर यह सिद्व कर दिया संगीत जगत के लिए नाटयशास्त्र एक वेद है। इसी वेद से शास्त्रीय संगीत की अविरल धारा, अब तक हज़ारों वर्ष से प्रवाहित हो रही है। नाट्यशास्त्र एक सम्पूर्ण, प्रामाणिक ग्रन्थ है। हमारे चार वेदों के बाद यह पॉचवा वेद संगीत की सम्पूर्णता को समाहित किए हुए है, इसलिए विश्व में भारतीय शास्त्रीय संगीत सर्वोच्च शिखर पर है जो यह निश्चित करता है कि भारतीय सभ्यता का यह वाङ्मय कितना विकसित और प्राचीनतम् है।

3.5 गान्धर्व का स्वरुप

नाटयशास्त्र में 28 वें अध्याय के 8 वें श्लोक में वर्णित है 'गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयं स्वरताल पदाश्रयम्'। भरत ने नाट्यशास्त्र में निर्देशित किया है कि कंठ संगीत तथा वाद्य संगीत का विधिवत संयोग ही गान्धर्व है। गान्धर्व पद का मूल अर्थ है शास्त्रीय संगीत जो परम्परागत व प्राचीन हो वही मार्ग संगीत है। गान्धर्व की व्याख्या में अन्य विद्वानों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं।

नाट्यशास्त्र में गान्धर्व के तीन भेद बताए गये है :–

1. स्वर 2. ताल 3. पद (गीत)

उक्त तीन अंगों के प्रयोग को नाटयशास्त्र में विस्तार से समझाया गया है। इसमें बताया गया है कि नाटय के संदर्भ में गान्धर्व के तीनों अंगों का प्रयोग किस प्रकार से किया जाय। नाटय को आकर्षक व प्रभावी बनाने के लिए श्रुति, स्वर, ग्राम आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

गान्धर्व शब्द का मूल अर्थ है वह शास्त्रीय संगीत जो परम्परागत एवं प्राचीन हो अर्थात् मार्ग संगीत। अर्थात गान्धर्व का ही पर्याय 'मार्ग' संगीत है जो परम्परा से प्राचीन है तथा स्वर, ताल तथा 'पद' गीत से युक्त हो। पद का तात्पर्य यहॉ शब्द से है। ताल के नियमबद्ध होकर स्वर रचना कंठ व आतोद्य के साथ जो गायन हो, वही गान्धर्व या मार्ग संगीत है।

3.6 स्वर, ग्राम–मूर्च्छना व श्रुति

<u>1. स्वर</u> – नाटयशास्त्र के 28वें अध्याय के श्लोक में–:

षड्जश्च ऋषभश्चव गान्धरो मध्यमरतथा।
पञ्चमो धैवतश्चैब निषादः सप्त च स्वराः।।

अर्थात् ये सात स्वर है जिनके नाम भिन्न हैं।

1. षड्ज 2. ऋषभ 3. गान्धार 4. मध्यम 5. पंचम 6. धैवत 7. निषाद

वैसे स्वर के संबंध में उनका कोई भिन्न दृष्टिकोण नहीं है। गान्धर्व की चर्चा करते समय उन्होंने अवश्य स्वर को सर्वोपरि माना है :–

गान्धर्व त्रिविध विधात् स्वरतालपदात्मकम्।

स्वर प्रयोग परम्परा से भिन्न होने पर उनके क्रम में, उनकी संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए, इस बात का समर्थन भी भरत ने परोक्ष रुप में किया है। भरत के सप्तक में नौ स्वर हैं। उन्होंने अन्तर गन्धार और काकली निषाद का भी समावेश किया है।

<u>स्वर की परिभाषा</u> – जो श्रुति के अनन्तर उत्पन्न होने वाला, स्निग्ध (कर्ण प्रिय– मधुर) गुंजन करने वाला तथा श्रोताओं के मन–रंजन करने वाला हो वह स्वर है। कुछ विद्वानों ने सात स्वरों की निम्न पशु–पक्षियों का उच्चारण जनित माना है।

स	–	मोर
रे	–	चातक
ग	–	बकरा
म	–	क्रोश्च पक्षी
प	–	कोकिल
ध	–	मेंढक
नि	–	हाथी

अर्थात, ये स्वर इन प्राणियों के उच्चारित स्वरों से अधिक समानता रखते हैं।

<u>वादी स्वर</u> – वादी स्वर वह है जो राग के अन्य स्वरों में प्रमुख व महत्वपूर्ण रहता है। यह स्वर अधिक बार प्रयुक्त होता है तथा अभिव्यक्ति के लिए आवृत्त किया जाता है, गीत के आदि और अन्त में प्रयोग किया जाता है। यह राग के स्वर समुदाय में राजा की तरह होता हैं।

<u>संवादी स्वर</u> – यह प्रधान स्वर का मुख्य सहायक होता है। इसका स्थान मंत्री जैसा होता है। यह गीत सृजन में सहायक होता है। इसका प्रयोग वादी स्वर की अपेक्षा गौण होता है तथा अन्य स्वर इसका अनुगमन करते हैं।

<u>विवादी स्वर</u> – शब्द से स्पष्ट है कि विवाद उत्पन्न करने वाला। किसी राग के स्वरों में बाधा उत्पन्न करने वाला स्वर विवादी कहलाता है। ऐसा स्वर वर्ज्य की स्थिति वाला होता है। कई विद्वान इसके स्वल्प प्रयोग का विचार रखते हैं लेकिन इस स्वल्प प्रयोग में भी रंजकता का भाव उत्पन्न होना अनिवार्य है। अतः इस स्वर का प्रयोग कुशल कलाकार रंजकता की वृद्धि के लिए ही कर सकता है, ताकि राग के क्रम–नियम में विवाद न हो।

<u>अनुवादी स्वर</u>– वादी, संवादी तथा विवादी के अतिरिक्त कुछ स्वर अनुवादी होते हैं। जो स्वर वादी तथा संवादी के साथ सहयोग कर रंजकता की वृद्धि करता है, अनुवादी कहलाता है। अनुगामी यानि मुख्य स्वर वादी व संवादी के पीछे–पीछे अनुगमन करने वाले स्वर अनुवादी कहलाते हैं।

<u>2. ग्राम–मूर्च्छना</u> – नाटयशास्त्र में सात स्वरों के समूह को लेकर दो ग्राम बताए हैं। अर्थात स्वरों का समूह या संयोग ग्राम कहलाता है। विद्वानों द्वारा ग्राम की संशोधित परिभाषा दी गई है – वह स्वर समूह जो मूर्च्छना, तान, अलंकार तथा जाति आदि का आश्रय लेता है, 'ग्राम' कहलाता है। नाटयशास्त्र में जो

दो ग्राम बताए हैं वे षडज ग्राम व मध्यम ग्राम हैं। शुद्ध स्वरों का आश्रय लेने वाला 'षड्ज ग्राम' तथा विकृत स्वरों के आश्रय लेने वाला 'मध्यम ग्राम'।
नाटयशास्त्र में 24 वें श्लोक में ग्रामों का उल्लेख मिलता हैः–

अथ द्वौ ग्रामो षड्जो मध्यमश्रुति।
अत्राश्रिताः द्वाविंशतिः श्रुतयः।।

अर्थात् दो ग्राम हैं – षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम, इसी में बाइस श्रुतियॉ हैं। दोनों ग्रामों की 7–7 मूर्च्छना होती हैं, जिनसे रागों की अवधारण की जाती है। इन्हें जातियॉ कहा गया है।
षड्ज ग्राम की सात मूर्च्छना के नाम निम्न है :–

1. उत्तर मन्द्रा – सा रे ग म प ध नि
2. रजनी – नि़ सा रे ग म प ध
3. उत्तरायता – ध़ नि़ सा रे ग म प
4. शुद्ध षड्जा – प़ ध़ नि़ सा रे ग म
5. मत्सरीकृता – म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग
6. अश्वकान्ता – ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे
7. अभिरूद्गता – रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा

इसी प्रकार मध्यम ग्राम की 7 मूर्च्छनाएं स्वर क्रम में निम्न प्रकार से हैं :–

1. सौवीरी – म प ध नि सा रे ग
2. हारिणाश्वा – प ध नि सां रे ग म
3. कलोपनता – ध नि सा रे ग म प
4. शुद्ध मध्या – नि सा रे ग म प ध
5. मार्गी – सा रे ग म प ध नि
6. पौरवी – रे ग म प ध नि सा
7. हृष्यका – ग म प ध नि सा रे

जातियों की कुल संख्या अठारह मानी गई है। जिन्हें शुद्धा तथा विकृता कहा जाता है।

3. श्रुति – श्रुति भारतीय सप्तक का मूलाधार है। प्राचीन काल से ही भारतीय स्वरों की स्थापना श्रुतियों के आधार पर करने का सिद्धान्त संगीत विद्वानों द्वारा मान्य चला आ रहा है। श्रुति भारतीय संगीत की आत्मा है। आत्मा के तत्व को जानने वाला मानव परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। सभी प्रकार की चिंताओं और दुःखों से मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार श्रुति की साधना से संगीतज्ञ सांसारिक चिंताओं से विमुक्त होकर सच्चिदानन्द भगवान के दर्शन करता है। जैसे

अतो गीत प्रपच्चस्य श्रुत्यादेस्त स्वदर्शनात्।
अपि स्यात्सच्चिदानन्दरूपिणः परमात्मनः।।
प्राप्ति प्रवृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत।

अर्थात् वीणा वादन के तत्व को जानने वाला, श्रुतियों की जाति आदि को पहचानने वाला, कुशल और ताल का ज्ञाता मानव बिना प्रयत्न के ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वीणा–वादन का तत्व आत्मा की शान्ति एवं रंजकता प्रदान करता है। रंजकता श्रुतियों की जाति आदि के ज्ञान से प्राप्त होती है। किसी श्रुति का प्रयोग किस स्वर पर भावोत्पत्ति के हेतु करना है? और ताल अर्थात् मर्यादा के नियमों का पालन किस प्रकार करना है? मानव को जब यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह इसका यथा समय प्रयोग कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। आप जान गये होंगे कि भारतीय संगीत का भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक धरातल पर चिंतन हुआ। श्रुति तत्व भी उनमें से एक है।

श्रुति को भरत ने ध्वनि मूल्य माना है जो सुनाई देती है पर स्वराश्रित होती है। नाटयशास्त्र में श्रुतियों का विवेचना विस्तार पूर्वक किया है।

<u>श्रुति की परिभाषा</u> – श्रुति किसे कहते हैं? हम यहाँ इस बात की चर्चा करेंगे। संगीतोपयोगी नाद या ध्वनि, जो कान से सुनाई दे, जो रंजक हो तथा कान, मन और आत्मा को सुख प्रदान करे, आनन्द दे, वही श्रुति है। इसके अतिरिक्त अरंजक ध्वनि श्रुति संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकती। संगीत, विद्वानों द्वारा स्वरों के सूक्ष्मांतरों के निर्देशन का साधन है। इसलिए समय–समय पर इस पर विचार हुआ है।

श्रुति की परिभाषा हम इस प्रकार भी कर सकते हैं–'' *वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो कानों को साफ–साफ सुनाई पड़े तथा जो एक–दूसरे से स्पष्ट तथा अलग पहचानने में आ सके, उसे श्रुति कहते हैं।* ''

श्रुति शब्द वेद के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वेद क्योंकि श्रुत परम्परा के पढ़े जाते थे इसीलिए वेदों को श्रुति कहा जाता है। वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण होता था। स्वरों के उच्चारण प्रकार को श्रुति कहा जाने लगा। लेकिन संगीतोपयोगी श्रुति जो भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होती है, उसका वर्णन हमें नाट्यशास्त्र से मिलना प्रारम्भ होता है। भरत ने श्रुति की स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं की है। उन्होंने नाट्यशास्त्र में केवल इतना ही कहा है कि *'तत्र व द्वाविंशति श्रुतयः'* अर्थात् श्रुतियां बाईस हैं। श्रुति और स्वर में भेद उतना ही है जितना सांप और उसकी कुण्डली में। यही भेद शास्त्रसम्मत है।

वास्तव में सुनी जाने वाली अनेक ध्वनियां ऐसी होती है जिनमें रन्जकता नहीं होती, आकर्षण नहीं होता और मधुरता का अभाव रहता है। ऐसी ध्वनियां संगीतोपयोगी नहीं होती। इसलिये कलाकार केवल उसी श्रुति की उपासना करता है जिसमें रंजकता हो, जो स्पष्ट रूप से सुनी, पहचानी और प्रयुक्त की जा सके, जो भावाभिव्यक्ति में समर्थ हो, जो स्वरों की शुद्ध और अशुद्ध तथा अविकृत और विकृत अवस्था का कारण हो, जो स्वर की तारता को मापने का मापदण्ड हो अर्थात् श्रुति ध्वनि का वह सूक्ष्मतम भाग है जिसमें ध्वनि का परिमाण लगाया जा सकता है, जो राग में प्रयुक्त होने पर स्वर और अप्रयुक्तावस्था में अपने निकटवर्ती स्वरों की सहायता करें, जो स्वर का एक अभिन्न अंक हो, जो अनुरणानात्मक एवं अनुरञ्जक हो और गायन–वादन में विभिन्न गमक प्रकारों द्वारा मधुरता एवं आकर्षण का संचार करे, ऐसी ध्वनि ही सच्ची श्रुति और संगीतोपयोगी ध्वनि कही जा सकती है। यही ध्वनि वीणा वादन द्वारा प्राप्त होती है। इसी ध्वनि का प्रयोग विभिन्न रसों के संचार हेतु किया जाता है। यही ध्वनि आत्मा को शान्ति प्रदान करती है और यही ध्वनि मोक्ष मार्ग की ओर प्रेरित करती है।

<u>श्रुति संख्या</u> – यह तो निश्चित हो गया कि संगीतोपयोगी ध्वनि को श्रुति कहते हैं। अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि श्रुतियों की संख्या कितनी है। वस्तुतः नाद के एक स्थान में असंख्य नाद विचरते हैं। उनमें से जो सुनी जा सके वह श्रुतियां कही जाती हैं और श्रुतियां जब प्रयोग में लायी जाती हैं तो स्वर का रूप धारण कर लेती हैं। अस्पष्ट एवं सुनाई न देने वाले नाद सहायक नादों का रूप धारण कर निकटवर्ती स्वर की सहायता करते हैं। उसमें रंजकता का उत्पादन करते हैं। स्वर का रूप धारण करने वाली श्रुति को स्वर श्रुति और शेष श्रुतियों को नाद श्रुति कहते हैं। सुनी जाने वाली श्रुति के 22 भेद हैं। हृदय स्थान में 22 नाड़ियां हैं उन सभी के नाद स्पष्ट सुने जाते हैं। इसलिये उन्हीं को श्रुतियां कहते हैं। श्रुतियां संख्या में 22 हैं। भरत, मतंग, नारद, शाग्ङदेव, लोचण, सोमनाथ तथा आधुनिक सभी विद्वानों ने नाद के एक स्थान से 22 श्रुतियों का होना ही माना है।

<u>श्रुति नामकरण</u> – जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि नाद के एक स्थान में 22 श्रुतियां हैं और ये श्रुतियां एक दूसरे से क्रमिक ऊँची ध्वनि उत्पादन करने का कारण है। चूंकि ये श्रुतियां एक दूसरे से क्रमिक ऊँचे स्थान को प्राप्त कर नाना भावों को व्यक्त करती है, इसीलिये विद्वानों ने इन श्रुतियों के लिये अलग–अलग नाम रखे। जो इस प्रकार हैं :–

श्रुति संख्या	नाम	श्रुति संख्या	श्रुति नाम
1	तीव्रा	14	क्षिति
2	कुमुद्वति	15	रक्ता
3	मन्दा	16	सन्दीपनी
4	छन्दोवती	17	आलापिनी
5	दयावती	18	मदन्ती
6	रंजनी	19	रोहिणी
7	रक्तिका	20	रम्या
8	रौद्री	21	उग्रा
9	क्रोधा	22	क्षोभिणी
10	वज्रिका		
11	प्रसारिणी		
12	प्रीति		
13	मार्जनी		

भरतादि सभी आचार्यो ने इन्हीं नामों का उल्लेख किया है। दत्तिल ने तथा नारद के कुछ अलग नाम बताये हैं फिर भी सर्वमान्य 22 नाम वही है जिनका हमने तालिका में संकेत किया है।

<u>श्रुति जाति</u> – विभिन्न प्रकार की भावनाओं से ओतप्रोत ये 22 श्रुतियां अपनी प्रकृति के अनुसार तीन अथवा चार प्रकारों में बंट जाती है। प्राचीन आचार्यों ने उच्च एवं रूक्ष ध्वनि को वातज, गम्भीर और धनशील ध्वनि को पित्तज, स्निग्ध और सुकुमार ध्वनि को कफज तथा तीनों प्रकारों के मेल को सन्निपातज कहा है।

<u>श्रुति और स्वर</u> – नाद श्रवणावस्था में श्रुति और व्यक्तावस्था में स्वर कहा जाता है। भारतीय संगीत में यह विशेषता प्राचीन काल से ही पायी जा रही है कि यहां नाद के एक ही स्थान में 22 नादों का प्रयोग होता चला आ रहा है। जो नाद प्रयुक्त नहीं हुआ वह श्रुति और जो प्रयुक्त हो गया वह स्वर नाम से पुकारा गया। इस तथ्य से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के सभी विद्वान एवं कलाकार सहमत हैं।

<u>श्रुतियों पर स्वर स्थापना</u> – श्रुतियों को मुख्य सात स्वरों में बांटा गया है। इस विभाजन के लिये 'चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमा। द्वे द्वे निषादगांधारौ तिस्त्री ऋषमधैवतौ'। अर्थात् षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों के लिये चार–चार, ऋषभ और धैवत स्वर के लिये तीन–तीन तथा गांधार और निषाद के लिये दो–दो श्रुतियां निश्चित करने का सिद्धान्त प्राचीन काल से ही चला आ रहा है जो सभी युगों के विद्वानों एवं कलाकारों को मान्य है।

अभ्यास प्रश्न

क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. भरत के नाटयशास्त्र में किन विषयों का उल्लेख है?
2. नाटयशास्त्र किस–किस अध्याय में संगीत सम्बन्धी जानकारी है?
3. भरत के नाटयशास्त्र में कितने स्वरों का विवरण है?
4. दो ग्रामों से कितनी श्रुतियॉ मानी गई हैं?

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आतोद्य से क्या अभिप्रयाय है? विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. भरत के नाटयशास्त्र को पॉचम् वेद क्यों कहा गया है?

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भरत के नाटयशास्त्र में वर्णित तथ्यों को जान चुके होंगे। नाटयशास्त्र प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें संगीत का विस्तृत वर्णन है। भारतीय संगीत की उत्पत्ति, विकास विभिन्न पक्षों के नियमों का उल्लेख नाटय–शास्त्र में निहित है। स्वर, ताल, जाति, श्रुति, ग्राम आदि का मौलिक विवेचन भरत ने किया है। रागों के वादी, संवादी, अनुवादी स्वरों को समझने के लिए नाटयशास्त्र में पूर्ण अध्ययन की सामग्री उपलब्ध है। भरत का नाटयशास्त्र प्राचीन, अनुकरणीय, स्मरणीय व अध्ययनीय शास्त्र है जिसमें भारतीय संगीत का विस्तृत व अमूल्य भंडार है। भरत ने संगीत विषय में शोध का मार्ग प्रशस्त किया है। नाटयशास्त्र के बाद कई विद्वानों ने स्वर, श्रुति व श्रुति–अन्तर से सम्बन्धित अनेक विचार प्रकट किये हैं। यह भरत के नाटयशास्त्र की ही देन है कि आज भारतीय शास्त्रीय संगीत व क्रियात्मक के साथ–साथ वैज्ञानिक शास्त्र सम्भव है। अतः शास्त्रीय संगीत का शास्त्र–पक्ष आज भरत की ही देन है। यही मुख्य कारण है कि पूरे विश्व को भारतीय संगीत का आकर्षण अध्ययन व शोध के लिए जिज्ञासा उत्पन्न कर रहा है।

3.8 शब्दावली

1. समकालीय	–	एक ही समय के लोग
2. पुरातत्व	–	प्राचीन तथ्य जो प्राप्त है।
3. स्निग्ध	–	कोमल, संगीत के लिए कर्णप्रिय, मधुर
4. अनुगामी	–	पीछे–पीछे चलने वाला
5. रंजक	–	मन में आनन्द उत्पन्न करने वाला
6. स्मरणीय	–	स्मरण करने वाला

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. नाटक तथा संगीत
2. 28 से 33 वें अध्याय
3. 7 स्वरों सा, रे, ग, म, प, ध, नि
4. बाइस

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल(सम्पादक एवं व्याख्याकार), भरत(मूल ग्रन्थकार), *नाट्यशास्त्र,* चौखम्भा पब्लिकेशन, वाराणसी।

2. बृहस्पति, श्री कैलाश चन्द्रदेव, *भरत का संगीत सिद्धान्त,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर संगीत की व्याख्या कीजिए।

इकाई 1 – प्राचीन काल

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 प्राचीन काल
    1.3.1 वैदिक काल
    1.3.2 संदिग्ध काल
    1.3.3 भरत काल
1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0—101) के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत प्राचीन काल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। प्राचीन काल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ चुके होंगे कि प्राचीन काल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार—प्रसार के लिए क्या—क्या प्रयास किए गए। आप प्राचीन काल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में भी जान चुके होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे :—

- भारतीय संगीत के विषय में ।
- भारतीय संगीत के ऐतिहासिक विकास क्रम को।
- वैदिक कालीन संगीत के विषय में।
- संदिग्ध काल में संगीत के विकास क्रम को।
- भारतीय संगीत के आधारभूत ग्रन्थ भरतकृत नाट्यशास्त्र के विषय में।
- वैदिक कालीन संगीत ग्रन्थों के विषय में।

1.3 प्राचीन काल

<u>भारतीय संगीत का इतिहास</u> – भारतीय संगीत का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। प्राचीन भारतीय प्रबुद्ध ऋषियों, मुनियों एवं दृष्टाओं ने सृष्टि की उत्पत्ति नादब्रहम से मानी है। ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कणांश में, जड़–चेतन वस्तु में नाद व्याप्त है। अतैव नाद को नादब्रहम की संज्ञा से अभिहित किया गया है। नादब्रह्म ओंकार–वाचक है। वैज्ञानिकों के मतानुसार नादरहित सृष्टि अकल्पनीय है। प्रकृति के प्रत्येक कण में, प्रत्येक तत्व में एवं प्रत्येक वस्तु में संगीत की अक्षुण्ण और अखण्ड धारा सदियों से वर्तमान तक प्रतिलक्षित, समाहित एवं प्रवाहित हो रही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अदृश्यतः संगीतमय है।

पुराविदों के अनुसार संगीतकला का प्रादुर्भाव स्वयंभू परमेश्वर द्वारा हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि स्रोत हैं तथा मॉ सरस्वती गीत एवं वाद्य की प्रवर्तिका हैं। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की यह स्वर लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। सृष्टि–सृजन के साथ ही संगीतकला का सूर्य उदित हो चुका था। अतः संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। मनुष्य के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संगीतकला विभिन्न युगों में उत्तरोत्तर विकसित होती गई। यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो संगीत के विकास क्रम में, हडप्पा संस्कृति की प्रतीकातमकता वैदिक काल की पवित्रता, रामायण और महाभारत काल की सात्विकता, मुगलों की रागप्रियता, सन्तों की भक्ति–परायणता, राजदरबारों की भव्यता का प्रभाव हमें स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य पूर्णरूपेण प्रकृतिस्थ प्राणी था। मानव–मुख से निःसृत स्वाभाविक ध्वनियां ही उसका संगीत थी। संगीत उत्पत्ति के विषय में देवी–देवताओं से सम्बंधित अनेक किवदन्तियॉ उपलब्ध होती है। उपलब्ध प्रमाणों से इस बात की पुष्टी होती है कि ई0 पूर्व 5000 सिंधु सभ्यता में लिंगादि आकृतियां, नृत्यरत नट्राज शिव एवम् देवप्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।

पूर्वपाषाण काल में आधुनिक मंजीरा वाद्य के समान पत्थर से निर्मित अग्सा नामक वा्द्य बनाया गया था। विद्वानों के अनुसार ''पूर्व पाषाण काल के लोग भारत के मूल निवासी थे। इस काल में संगीत वाद्य का जन्म हो चुका था। पत्थर का एक संगीत् वाद्य इस युग में पाया जाता है, जिसे 'अग्सा' कहते हैं। कुछ विद्वान् इसको शिकार का शस्त्र मानते हैं, लेकिन वास्तव में यह पत्थर का औजार नहीं हैं, संगीत वाद्य ही है। लोग इसे बजा–बजाकर विचित्र स्वरों का आनन्द लिया करते थे। यह लोग 'हू हू हेवा, हू हू हेवा' जैसी विचित्र प्रकार की संगीतात्मक ध्वनि निकालते थे।

इसके उपरान्त उत्तर–पाषाण काल में संगीत की अवस्था पूर्वकाल की अपेक्षा काफी कुछ उन्नत हो चुकी थी। यदि इस काल की सभ्यता का विश्लेषण करें तो हम इस परिणाम पर पहुॅचते हैं कि उसकी पृष्ठभूमि में संगीत ही वह वस्तु थी जिसने उस सभ्यता को जन्म दिया। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान लोवास्को का कथन है कि ''वर्तमान संगीत की नींव ताम्र युग के संगीत पर रखी हुई है''। इस काल में संगीत के द्वारा रोगों की चिकित्सा भी प्रारम्भ हो चुकी थी। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि द्रविड़ो को संगीत के वैज्ञानिक रूप का भी पता था, तभी उन्होंने संगीत का चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया। द्रविड़ो की सभ्यता और संस्कृति अत्यन्त उच्च कोटि की थी। इनका संगीत ज्ञान भी अत्यन्त उन्नत था। आर्यों ने द्रविड़ों से ही संगीत की अनुपम भेंट प्राप्त की थी। द्रविड़ों ने जीवन के अनेक क्षेत्रों में संगीत को अपनाया। उनका संगीत किसी भी सभा एवं सुसंस्कृत जाति से कम नहीं था।

ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की घाटी में एक उन्नत एवं समृद्धशाली सभ्यता प्रस्फुटित हुई। सन् 1922 में खुदाई के द्वारा प्राप्त इसके ध्वंसावशेष हडप्पा, मोहनजोदड़ों और भारत के पश्चिमी एवं उत्तर–पश्चिमी स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं। पुरातत्वावशेषों से यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों में गायन, वादन एवं नृत्य के द्वारा मनोरंजन होता था।

खुदाई में प्राप्त हुई ताबीज पर नृत्य एवं वाद्य के संकेत मिलते हैं।

भारत में उपलब्ध लिंग–पूजा तथा शक्ति–पूजा के बीज इस युग में ही निहित है। हडप्पा के उत्खननों में नृत्यरत पुरूष की खंडित मूर्ति प्राप्त हुई है।

कॉसे की दो नर्तकियों की मूर्तियों मोहनजोदड़ों से प्राप्त हुई हैं।

हडप्पा में मिले एक अन्य चित्र में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। यहॉ उपलब्ध दो अन्य मुद्राओं पर दीर्घाकार ढोलकें अंकित हैं, जिनके दोनों मुख चर्म से आबद्व हैं। एक अन्य स्थान पर ढोलक की आकृति का वाद्य मृणमयी मूर्ति की ग्रीवा से लटकता दिखाया गया है।

झांझ तथा करताल के समान वाद्य भी यहॉ उपलब्ध होते हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि इस काल में संगीत विकसित था एवं उसका स्तर भी उत्कृष्ट था। जब हम लौह–युग की नारियों पर दृष्टि डालते हैं तो हमें पता चलता है कि वह द्रविड़ों की नारियों के समान ही उन्नतशील तथा संगीत मर्मज्ञा थीं। इन्होंने पुरूषों से अधिक संगीत को अपनाया।

अध्ययन की सुविधा के लिये हम भारतीय संगीत के इतिहास को मुख्यतः तीन खण्डों में विभाजित कर सकते हैं –

1. प्राचीन काल
2. मध्य काल
3. आधुनिक काल

अब हम सर्वप्रथम प्राचीनकाल में भारतीय संगीत के इतिहास को जानेंगे। इस काल मे संगीत के विकास को समझने के लिए हम प्राचीनकाल को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं –

प्राचीन काल

वैदिक काल	संदिग्ध काल	भरत काल
2500 ई0पू0 से 1000 ई0 पूर्व तक	1000 ई0पू0 से 01 ई0 तक	01ई0 से 08 वीं ई0 तक

<u>1.3.1 वैदिक काल (2500 ई0पू0 से 1000 ई0 पूर्व तक)</u> – वैदिक काल का आरम्भ आर्यों के आने के बाद हुआ। इतिहासकार वैदिक काल को 2500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक मानते हैं। वैदिक काल भारतीय इतिहास में प्राचीनतम् काल माना जा सकता है। वैदिक काल में ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद की रचना हुई। आधुनिक भारतीय संगीत का प्रादुर्भाव वैदिक कालीन सामगान से माना गया है। वेदचतुष्टयी में सामवेद का संगीत की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। सामवेद में भारतीय संगीत–सरित् के अनादि स्रोत का दृश्यस्वरूप हमारे सामने प्रथमतः अभिव्यंजित होता है।

सामवेद का संगीत में विशिष्ट स्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान कृष्ण ने स्वयं को 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कहकर सामवेद की महत्वता को सुस्पष्ट कर दिया है। 'साम' शब्द का मूलार्थ गान अर्थात् गेय वस्तु रहा है। विशिष्ट स्वर–सन्निवेश ही साम शब्द का मूलार्थ है। सामगान में वाणी की सुस्पष्टता का और उसको विविध प्रकार से गाने का विधान था। सामगान का प्रारम्भ एवं समापन दोनों ही 'ऊँ' स्वर द्वारा सम्पन्न होते थे। सामवेद पूर्णतया संगीतमय वेद है। सामवेद में मंत्रों का पाठ संगीतमय होता रहा है। आज भी हमें इसका कुछ अंश सुनने को मिल जाता है।

'सामगायन' में केवल तीन स्वर प्रयुक्त किये जाते थे –

1. स्वरित 2. उदात्त 3. अनुदात्त

उदात्त का अर्थ ऊँचा और अनुदात्त का अर्थ नीचा स्वर है किन्तु 'स्वरित' के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानजन 'स्वरित' को उदात्त से ऊँचा और कुछ अनुदात्त से नीचे का स्वर मानते हैं। इसका अर्थ कुछ भी माना गया हो, किन्तु उस समय में स्वरों की संख्या तीन है ऐसा समस्त विद्वानों द्वारा एकमत से स्वीकार किया गया है। **प्रचय** एवं **निघात** तक यह स्वर संख्या पॉच हो गए। साम गायकों ने **क्रुष्ट** तथा **अति स्वार्य** को भी सम्मिलित करके सात स्वरों की संख्या पूर्ण की। ऋक्प्रतिसाख्य ग्रन्थ में सर्वप्रथम चार स्वरों का वर्णन प्राप्त होता है। इसके बाद स्वरों की संख्या चार से पॉच और अंत में सात हुई।

कुछ विद्वानों के मतानुसार मूल स्वर 'उदात्त', 'अनुदात्त' एवं स्वरित ही हैं जिनसे अन्य स्वरों का विकास हुआ। पाणिनी ने भी उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित इन तीन मूल स्वरों के द्वारा ही अन्य स्वरों के विकास के तत्व को स्वीकारते हुये अपने ग्रंथ ''सिद्धान्त कौमुदी'' में लिखा है कि ''निषाद और गान्धार – उदात्त, ऋषभ एवं धैवत – अनुदात्त तथा षड्ज, मध्यम एवं पंचम स्वरित स्वरों के सदृश्य हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल मे 1000 ईसा पूर्व तक में ही 'सा रे ग म प ध नि' सात स्वर प्रचलन में आ गये थे। इसमें से प्रत्येक स्वर अपने से पूर्व वाले स्वर से क्रमशः उच्च कहा गया है। नारद मुनि ने अपने ग्रन्थ ''भारत भाष्य'' में स्वरों की उच्चता–नीचता को स्पष्ट किया है –

''उच्चैर्निषाद् गांधारोनीचावृषभ धैवतो।
स्वरित प्रभवाहयते षड्ज मध्यम पंचमाः।।''

वैदिक काल में ग्रामों की भी उत्पत्ति हो चुकी थी। स्वरों के व्यवस्थित क्रम को **ग्राम** कहते हैं। जिस प्रकार विभिन्न परिवार एक गॉव में निवास करते हैं और उनमें व्यक्तिगत कुछ विभिन्नता भले ही हो किन्तु समान परम्पराओं–विश्वास आदि के कारण उनमें एकता–भाव विद्यमान रहता है, उसी प्रकार (सात) स्वर परस्पर सम्बन्ध में एकत्र स्थापित किये जाते हैं तब संगीत में 'ग्राम' का निर्माण होता है। ग्राम तीन हैं – **षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गांधार ग्राम।**

उपर्युक्त तीनों ग्रामों में से दो ग्रामों षड्ज एवं मध्यम ग्रामों का ही प्रचार रहा। षड्ज ग्राम की सात एवं मध्यम ग्राम की 'ग्यारह' जातियां अर्थात् कुल 'अट्ठारह' जातियॉ मानी गयी हैं। विकृत स्वरों के अभाव को दूर करने हेतु 'मूर्च्छना' की व्यवस्था की गयी थी।

एक स्वर से आरम्भ करके क्रमशः सातवें स्वर तक आरोह करने के पश्चात् उसी मार्ग से अवरोह करने को **मूर्च्छना** कहते हैं। एक ग्राम के किसी भी स्वर को आधार मानकर क्रमशः सात स्वर नीचे उतरने से एक 'मूर्च्छना' बन जाती है। इस प्रकार एक ग्राम में सात मूर्च्छनायें हो सकती हैं। इस प्रकार षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम एवं गान्धार ग्राम की कुल मिलाकर 21 मूर्च्छनायें हैं।

इस काल में जाति–गायन प्रचलित था। दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश 'जाति' कहलाता है। जैसे थाट से राग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार मूर्च्छना से 'जाति' उत्पन्न होती है। जाति गायन के दस लक्षण माने गये हैं ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, षाड्व, औडव, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र और तार।

इस काल के ग्रन्थों में यत्र–तत्र अनेक वाद्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे अवनद्ध वा़द्यों में दुन्दुभि, भुदुन्दुभि, वानस्पति, आघाति, तन्त्र वाद्यों में कर्करी वीणा, वारण्य वीणा, सुषिर वाद्यों में तृषव, नाद बाकुर आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल में ही संगीत का अधिक प्रचार हो चुका था।

<u>1.3.2 संदिग्ध काल (1000 ई0पू0 से 01 ई0 तक)</u> – संदिग्ध काल की अवधि 1000 ईसा पूर्व से 01 ई0 तक है। संगीत के इतिहास की दृष्टि से इसे संदिग्ध काल इसलिये कहा गया कि इस समय का कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिससे उस समय के संगीत की सटीक जानकारी मिल सके। कुछ उपनिषद् मिलते हैं, जिनमें संगीत के विषय में कुछ सामग्री प्राप्त होती है।

इस काल में लिखित रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों में संगीत सम्बन्धी चर्चा हुई है। इस काल में संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष का विकास हुआ तथा रसादि नृत्य की नवीन शैलियों का सृजन हुआ। इसी काल में लोकगीतों एवं लोकनृत्यों का प्रचार–प्रसार भी बढ़ा। पर्वोत्सवों एवं मेलों आदि में गायन, वादन एवं नृत्य का सामूहिक रूप से आनन्द लिया जाता था। 'छन्दोग्योपनिषद्' और 'वृहदारण्यक' में गीत, वाद्य एवं नृत्य इन तीनों का ही उल्लेख हुआ है। 'ऋक प्रतिसाख्य' एवं शिक्षा ग्रन्थों में भी संगीत सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है। 'ऋक प्रतिसाख्य' में सर्वप्रथम संगीत शास्त्र का नियमित रूप मिलता है।

- <u>रामायण काल</u> – वाल्मीकी कृत रामायण महाकाव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस काल में संगीत समुन्नत दशा में था। 'राजा दशरथ के पुत्रों के जन्मोत्सव, विवाह तथा भगवान श्रीराम के वनवास के पश्चात् पुनः अयोध्या आगमन जैसे मांगलिक अवसरों पर संगीत की मधुर स्वरावलियों की एवं नृत्य घुंघरूओं की झंकार सुनायी देती है।

इस काल में भारतीय वृन्द–गान की परम्परा विकसित थी और यह पटह, मृदंग, डिमडिम, पणव, मिरज, आडम्बर और चोलिका जैसे अवनद्ध वाद्यों द्वारा किया जाता था। अयोध्या, लंका, किष्किन्धा सभी नगरों में सांगीतिक ध्वनियॉ एवं वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त युद्ध भूमि में शंख, सूर्य भेरी, दुन्दुभि, तुरही आदि वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। धार्मिक कृत्यों में संगीत

अभिन्न अंग माना जाता था। रावण और हनुमान दोनों ही प्रसिद्ध संगीताचार्य माने गये हैं। श्रीराम के पुत्रों लव और कुश के वीणा के साथ रामायण गाने का उल्लेख प्राप्त होता है। रावण की रानियां सभी प्रकार के वाद्ययंत्र बजाने में पारंगत थी। रावण के द्वारा 'गज' से बजाये जाने वाले वाद्य 'रावनास्त्र' का भी आविष्कार इसी समय हुआ। आधुनिक 'वायलिन' वाद्य इसी 'रावनास्त्र' का परिष्कृत रूप है। वैदिक काल से ही यज्ञादि के अवसर पर नृत्य का प्रयोग होता रहा परन्तु 'घुंघरू' का प्रयोग सर्वप्रथम रामायण में ही प्राप्त होता है।

- <u>महाभारत कालीन संगीत</u> – महाभारत काल में संगीत उत्तमता के चरमोत्कर्ष पर पहुॅच चुका था। भगवान श्रीकृष्ण गायन, वादन एवं नृत्य तीनों में ही पारंगत थे। श्रीकृष्ण जैसा वंशी वादक आज तक विश्व में दूसरा नहीं हुआ, उनकी वंशी ने समाज को संगीतमय बना दिया। इस काल में संगीत के कलापक्ष के साथ–साथ उसके शास्त्र पक्ष का भी विकास हुआ। इस काल में संगीत के लिये गन्धर्व शब्द का प्रयोग मिलता है। संगीत को जीवन का आवश्यक अंग माना जाता था। भगवान श्रीकृष्ण वंशीवादन के साथ ही नृत्यकला में भी अत्यन्त प्रवीण थे, उनके 'रास' अविस्मरणीय है। अर्जुन द्वारा अज्ञातवास के मध्य 'बृहन्नला' का वेश धारण कर विराटपुत्री उत्तरा को नृत्य व संगीत की शिक्षा देने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

वीणा तथा बल्लरी के अतिरिक्त वेणु, मृदंग, पणव, पटह, मुरज, भेरी, पुष्कर, शंख इत्यादि वाद्यों का प्रचलन था। गायन, वादन एवं नृत्य के साथ ताल देने की प्रणाली विद्यमान थी। गायक, वादक, नर्तक आदि को राज्य की ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त था।

- <u>पाणिनी कालीन संगीत</u> – पाणिनी के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। इस समय संगीत अपने उत्कर्ष पर था। ललित कलाओं के लिये शिल्प और गीत के लिये 'गीति' अथवा 'गेय' शब्द का उल्लेख मिलता है। वृन्द वादन के लिये 'तूर्य' एवं वीणा के नाद के लिये 'क्वण' और 'निक्वण' अथवा 'निक्वाण' इत्यादि संज्ञायें प्राप्त होती हैं।

वाद्यों के कुशल कलाकारों के लिये 'झार्झारिक', 'माउडुकिक' आदि संज्ञायें दी, दर्दुर वादक के लिये 'दादर्रिक', गायन के कुशल पुरूषों के लिये 'गायन', गायिकाओं के लिये 'गायनी', गाथा गाने वालों को 'गाथक', हाथ से ताल देने वालों को 'पाणिध' अथवा 'ताड़ध', नृत्य में कुशल व्यक्ति को नर्तक' की संज्ञा दी गयी है। इस समय में नाट्य एवं संगीत को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था तथा इस समय प्रेक्षागृहों का भी उल्लेख मिलता है।

- **जैन एवं बौद्ध** काल में भी संगीत जनसामान्य के जीवन का एक विभिन्न अंग बन गया था। भगवान् बुद्ध के सिद्धान्तों को गीतबद्ध करके उन्हें जनसामान्य में प्रचारित एवं प्रसारित किया गया। बौद्धकालीन जातक–कथाओं में भारतीय संगीत के तत्कालीन नृत्य, गीत एवं वाद्यों के प्रसंगानुकूल उल्लेख प्राप्त होते हैं।

बौद्धकालीन संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया था। इस काल में वही संगीतज्ञ सफल संगीतज्ञ समझा जाता था जो अपने संगीत द्वारा मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठा सके। भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धान्तों को गीतों की लड़ियों में आबद्ध करके सुन्दर ढंग से गायन करके गॉव–गॉव और नगर–नगर की सुप्त जनता को जन–जागरण कर भव्य पथ पर लाया गया। इस काल में वीणा पर ही गायन होता था।

बैपुल्य–सूत्र में मृदंगादि विभिन्न लय वाद्यों का उल्लेख प्राप्त है। बौद्ध साहित्य में वाराणसी में एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें सम्बद्ध संगीत–विद्यालय भी था। इस संगीत–विद्यालय में देश के श्रेष्ठ गुणीजनों को संगीत–शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। नालन्दा, विक्रमशिला एवं आनन्दपुरी तीन विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों में संगीत–विभाग ''गान्धर्व विद्या'' के नाम से था।

- **मौर्यकाल** में संगीत मनोरंजन का मुख्य साधन था। भारत का प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत प्रेमी था। इस समय संगीत जीवन का आवश्यक अंग बन गया था। स्त्रियों के लिये संगीत अभीष्ट गुण माना जाता था। सैल्यूकस की पुत्री हेलना जो स्वयं एक उत्तम संगीतकार थी, का विवाह सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ जिससे भारतीय एवं यूनानी संगीत का आगमन भारत में प्रथम बार हुआ, परिणामतः भारतीय संगीत भी प्रथम बार यूनान पहुॅंचा। चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र बिन्दुसार के शासनकाल में संगीत के क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। बिन्दुसार के पश्चात् सम्राट अशोक के काल में संगीत का आध्यात्मिक रूप सामने आया। सम्राट अशोक ने संगीत की श्रृंगारिकता को दूर करने का प्रयास किया। सम्राट अशोक की पत्नी 'तिष्यरक्षिता' की परिचारिका चारूमित्रा उत्तम वीणावादिका थी।

- **शुंगकाल** में संगीत के क्षेत्र में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। गुजरात प्रान्त में 'गरबा' नृत्य का प्रादुर्भाव शुंगकाल में ही हुआ। कनिष्क के काल में भारतीय संगीत का अच्छा विकास हुआ। कनिष्क कालीन संगीत के काल को हम प्रगतिशील युग कह सकते हैं। सन् 78 ईसवीं में कनिष्क के सिंहासनारूढ़ होने के साथ ही शुंगकाल में भारतीय संगीत की जो गति शिथिल हो गयी थी वह कनिष्क काल में पुनः द्रुतगामी हो गयी। इस काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में संगीत की धारा एक समान ही थी। कनिष्क संगीत प्रेमी राजा थे तथा संगीतज्ञों का अत्यन्त सम्मान करते थे। कनिष्क के शासनकाल में राज्य की ओर से ऐसे संगीत समारोह भी होते थे जिनमें अफगानिस्तान, चीन आदि देशों के कलाकार भी भाग लेते थे। भारतवर्ष में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास था। इस काल में 'अश्वघोष' नामक एक महान दार्शनिक एवं संगीतज्ञ विद्वान पैदा हुआ था। अश्वघोष ने 'बुद्धचरितम्' नामक महाकाव्य लिखा जिसमें उच्चकोटि का संगीतमय कवित्व पाया जाता है। इस प्रकार कनिष्क काल में हमें भारतीय संगीत का विस्तृत रूप प्राप्त होता है।

<u>1.3.3 भरतकाल (01 ई0 से 08 वीं ई0 तक)</u> – संगीतकला की पुनः प्रतिस्थापना करने का श्रेय महर्षि भरत को है, जिन्होंने भारतीय संगीत के इतिहास में एक नवीन युग का प्रवर्तन किया है। भरताचार्य द्वारा संगीत पर आधारित विपुल ग्रन्थ–रचना को दृष्टिगत कर प्राचीन संगीत के इतिहास में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर तत्पश्चात्वर्ती काल खण्ड को 'भरतकाल' के नाम से सम्बोधित किया जाये तो कोई आपत्ति नही होगी।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र की रचना की। भरत के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान पॉचवी शताब्दी, कुछ विद्वान चौथी शताब्दी का मानते हैं, कुछ तीसरी शताब्दी का तथा कुछ पॉचवीं शताब्दी को ही अधिक उचित मानते हैं।

नाट्यशास्त्र प्रमुख रूप से नाट्यकला पर आधारित ग्रन्थ था, किन्तु भरतमुनि ने गायन को नाट्य का अभिन्न अंग स्वीकार करते हुये नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय से लेकर 33वें अध्यायों तक संगीत विषयक चर्चा की है। नाट्यशास्त्र के इन अध्यायों में निम्नलिखित सामग्री मिलती है–

- भरत ने षड्ज एवं मध्यम ग्राम का उल्लेख किया है। गांधार ग्राम को पूर्णतया छोड़ दिया है।
- षड्ज ग्राम की सात और मध्यम ग्राम की ग्यारह जातियॉ अर्थात् कुल अट्ठारह जातियॉ मानी गयी हैं। अट्ठारह जातियों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है– **शुद्ध** व **विकृत**
- शुद्ध जातियॉ सात हैं और ग्यारह विकृत जातियां हैं।
- जाति के दस लक्षण माने गये हैं –
  ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडत्व और औडवत्व।
- दो विकृत स्वर माने गये हैं–
  1. अन्तर गन्धार 2. काकली निषाद

- वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी का वर्णन किया गया है। वादी–सम्वादी स्वरों में 9 अथवा 13 श्रुतियों की तथा विवादी में दो श्रुतियों की दूरी मानी गयी है।
- षड्ज, मध्यम एवं पंचम की चार–चार, गान्धार, निषाद की दो–दो और ऋषभ व धैवत् की तीन–तीन श्रुतियॉ मानी गयी हैं।

नाट्यशास्त्र को प्राचीन संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार भरतकृत नाट्यशास्त्र में जहॉ संगीत सम्बन्धी सामग्री प्राप्त होती है वहीं इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय तक संगीत अत्यन्त विकसित अवस्था में था। जनमानस में संगीत श्रुति, स्वर, ग्राम मूर्च्छना एवं जाति आदि के द्वारा नियमबद्ध और सिद्धान्तबद्ध होकर शास्त्रीय संगीत का रूप धारण कर चुका था।

गुप्तकाल में अन्य कलाओं के साथ ही संगीतकला भी उच्चपदासीन थी। एक सिक्के पर राजा समुद्रगुप्त का वीणा सदृश वाद्य बजाते हुए चित्र प्रदर्शित है। अन्य गुप्त राजाओं की संगीत प्रियता का आभास इस युग की स्थापत्य कला, मूर्तिकला और चित्रकला के अनेकानेक उदाहरणों से मिलता है। महाराज विक्रमादित्य ने बृहत् नाट्यशालाओं और संगीतशालाओं का निर्माण करवाया। महाकवि कालिदास के काव्य में एवं नाटको में गुप्तकालीन संगीत का आंशिक परिचय मिलता है। कालिदास के ''कुमारसम्भवम्'' ''मालविकाग्निमित्रम्'' एवं अभिज्ञान–शाकुन्तलम्'' आदि ग्रंथों में सांगीतिक शब्दों का प्रयोग मिलता है।

<u>दत्तिल कृत दत्तिलम्</u> – भरतपुत्र दत्तिल ने ''दत्तिलम्'' की रचना इसी काल में की। यह ग्रंथ भी नाट्यशास्त्र के समान भारतीय संगीत की एक गौरवशाली रचना है। नाट्यशास्त्र के विपरीत इसमें केवल गान्धार ग्राम का उल्लेख है। विवादी स्वरों की दूरी केवल दो श्रुति मानी गई है, किन्तु सम्वादी स्वरों की दूरी भरत के ही समान है। इसमें भरत की 18 जातियॉ मानी गई हैं।

- **हर्षवर्धन** के काल में संगीत का विकास निर्बाध गति से चलता रहा। इसी काल में मतंगमुनि द्वारा ''बृहद्देशी'' नामक ग्रन्थ की रचना हुई। उन्होंने जाति–गायन के स्थान पर राग–गायन का उल्लेख किया। संगीत के इतिहास में सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में ''राग'' शब्द का प्रयोग किया गया। आज राग का कितना महत्व है– यह किसी से छिपा नहीं। नारद कृत ''नारदीय–शिक्षा'' का रचनाकाल भी यही है।

<u>मतंग मुनि कृत बृहद्देशी</u> – इस ग्रन्थ के समय के विषय में अनेक मत हैं। कुछ विद्वान इसे तीसरी शताब्दी का, कुछ चौथी शताब्दी का, कुछ 5वीं शताब्दी का और कुछ छठी शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित सामग्रियॉ प्राप्त होती हैं :–

- संगीत के इतिहास में सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में 'राग' शब्द प्रयोग किया गया है।
- इसमें ग्राम और मूर्च्छना का विस्तृत वर्णन है, किन्तु गांधार ग्राम का उल्लेख मात्र किया गया है।
- साम गायन के प्रारम्भिक तीन स्वरों का वर्णन है।
- इसमें भी दत्तिल के सम्वादी स्वरों की 9 अथवा 13 श्रुतियों की तथा विवादी स्वर 20 श्रुतियों की दूरी पर स्वीकार किया गया है।
- इस पुस्तक में वर्णित जाति के 10 लक्षण भरतकृत नाट्यशास्त्र के सदृश हैं।
- जाति के 7 प्रकारों में राग–जाति भरत के समान है।

<u>नारद कृत नारदीय शिक्षा</u> – इस ग्रन्थ की रचना काल के विषय में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वान इसे दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच का मानते हैं। इसमें 7 ग्राम रागों, जैसे षाडव, मध्यम, षडज, साधारिता आदि का उल्लेख है। नारदीय शिक्षा में प्रथम बार पुरूष राग और स्त्री राग के आधार पर आगे चलकर राग–रागिनी पद्धति का विकास हुआ।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त शिला–लेख, तमिल ग्रन्थ 'पारिपाडल' आदि द्वारा इस काल के संगीत के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

इस प्रकार प्राचीन काल के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में संगीत के विकास को अनुकूल वातावरण मिला तथा संगीत अपने विकास तथा उच्च शिखर पर पहुंच गया था। यह समय भारतीय संगीत का स्वर्ण युग था।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. सामवेद् में संगीत के विषय में सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. संगीत के प्राचीन कालीन इतिहास के विषय में विस्तार से लिखिए।
3. वैदिक कालीन संगीत के विषय में विस्तार से वर्णन कीजिये।
4. संदिग्ध काल में लिखे गये संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में बताइये।
5. 'नाटयशास्त्र' ग्रन्थ किसने लिखा? 'नाट्यशास्त्र' भारतीय संगीत का आधारभूत ग्रन्थ है। स्पष्ट कीजिए।
6. जातिगायन किस काल में प्रचलित था? जातिगायन के लक्षणों के विषय में बताइये।
7. जातिगायन के लक्षणों की आधुनिक राग–लक्षणों से तुलना कीजिए।
8. टिप्पणी लिखिए
   (क) मौर्य काल में संगीत का विकास (ख) बौद्ध काल में संगीत का विकास
   (ग) वृहद्देशी
9. स्वरों की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से बताइये।
10. सामगान के विषय में सविस्तार व्याख्या कीजिए।
11. प्राचीन कालीन वाद्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. ''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' इस कथन की व्याख्या कीजिये।
2. वैदिक काल में कितने स्वर प्रयोग जाते थे? स्पष्ट कीजिये।
3. रामायण काल में किन–किन अवसरों पर संगीत का प्रयोग होता था?
4. संगीत का प्राचीनतम् ग्रन्थ कौन–सा है?
5. गुप्तकाल में संगीत के विकास पर प्रकाश डालिए।
6. बौद्धधर्म में संगीत के विकास पर प्रकाश डालिए।
7. सर्वप्रथम विकृत स्वर किस ग्रन्थकार ने बताये?
8. वृन्दगान किसे कहते है? वृन्दगान की परम्परा किस काल में प्रारम्भ हुई?
9. भगवान श्रीकृष्ण संगीत की किन–किन विधाओं में पारंगत थे?
10. 'सामगान' में कितने स्वर प्रयुक्त होते हैं?बताइये।
11. महाभारत कालीन संगीत के विषय में संक्षेप में बताइये।

ग) एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न :–

1. पूर्व पाषाण काल में आधुनिक मंजीरा वाद्य के समय पत्थर से निर्मित वाद्य का नाम बताइये।
2. 'सामगायन में कितने स्वर प्रयुक्त किए जाते थे?
3. नाट्शास्त्र के लेखक का नाम बताइये।
4. राग शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रन्थ में हुआ है?
5. काकली निषाद किस ग्रन्थ में उल्लिखित है?
6. दत्तिलम द्वारा किस ग्रन्थ की रचना हुई।
7. अज्ञातवास में अर्जुन ने किस नर्तकी का रूप धारण किया?

8. किस काल में भारतीय संगीत यूनान पहुँचा?
9. 'गरवा' नृत्य का प्रारम्भ किस काल में हुआ?
10. 'नारदीय शिक्षा'' ग्रन्थ के लेखक का क्या नाम है?

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. वेदो में .... संगीतमय है।
2. भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में ....और.........................दो विकृत स्वर बताये हैं।
3. वृहद्देशी के लेखक .... हैं।
4. ....ग्रन्थ में प्रथम बार पुरुष व स्त्री राग का विवरण प्राप्त होता है।
5. दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश .... कहलाता है।
6. ....काल में सातों स्वर प्रकाश में आ चुके थे।
7. पाणिनी काल में गायिकाओं को......................कहा जाता था।
8. ....काल में वृन्दगान की परम्परा प्रारम्भ हुई।
9. जातिगायन का प्रथम लक्षण .... है।
10. तीन ग्राम .... हैं।

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. ईसा से लगभग 2000 वर्ष पूर्व का काल कहलाता है–
   क. प्रागैतिहासिक काल   ख. आधुनिक काल
   ग. प्राचीन काल   घ. वैदिक काल
2. आधुनिक कालीन भारतीय संगीत का प्रादुर्भाव माना गया है–
   क. मुगल काल   ख. सामगान से
   ग. पाणिनी काल   घ. बौद्धकाल से
3. 'ग्रामो' की संख्या मानी गयी है–
   क. दो   ख. चार
   ग. तीन   घ. सात
4. जाति गायन के लक्षण है–
   क. पॉच   ख. सात
   ग. दस   घ. ग्यारह
5. आधुनिक वायलिन वाद्य किस वैदिक कालीन वाद्य का परिष्कृत रूप है–
   क. तुरही   ख. दुन्दुभि
   ग. शंख   घ. रावनास्त्र
6. पाणिनी काल में हाथ से ताल देने वाले को कहा जाता था–
   क. गाथक   ख. गायनी
   ग. पाणिध   घ. गायन
7. नाट्यशास्त्र मुख्यतः ग्रन्थ है–
   क. नाटकों के सम्बन्ध में   ख. महाकाव्यों के सम्बन्ध में
   ग. संगीत के सम्बन्ध में   घ. धर्म के सम्बन्ध में
8. ग्राम कहते हैं–
   क. औडव–सम्पूर्ण को   ख. स्वर–समूह को
   ग. जातिगायन को   घ. स्वरों के व्यवस्थित क्रम को
9. स्वरो के क्रमानुसार आरोह–अवरोह को कहते हैं–
   क. स्वरित   ख. मूर्च्छना
   ग. ग्राम   घ. जाति

10. घुंघुरू' का प्रयोग सर्वप्रथम किस काल में हुआ?
    क. प्रागैतिहासिक काल   ख. संदिग्ध काल
    ग. वैदिक काल   घ. लौह युग

1.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के प्राचीन काल से परिचित हो चुके होंगे। भारतीय संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की सुमधुर स्वर–लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान होती रही हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- वेदों के रचनाकाल को वैदिक युग कहा गया है।
- वैदिक काल में संगीत उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित था।
- इसी युग में सातों स्वरों की उत्पत्ति हुयी।
- संगीत के माध्यम से ही ईशवरोपासना का मौलिक भाव वैदिक काल में ही सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुआ।
- भरत मुनि द्वारा भारतीय संगीत का आधारभूत ग्रन्थ नाट्यशास्त्र की रचना भी इसी काल में की गयी है।
- दत्तिल द्वारा 'दत्तिलम्, मतंगमुनि द्वारा बृहद्देशी, नारद कृत नारदीय शिक्षा जैसे संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों का रचना काल भी प्राचीन काल ही है।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न :–

1. अग्सा   2. तीन   3. भरत   4. बृहद्देशी
5. नाट्यशास्त्र   6. दत्तिलम   7. बृहन्नला   8. मौर्यकाल
9. शंगुकाल   10. नारद

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. सामवेद   2. अन्तर गन्धार व काकली निषाद   3. मतंग
4. नारदीय शिक्षा   5. जाति   6. वैदिक काल   7. गायनी
8. संदिग्ध   9. ग्रह   10. षड्ज, मध्यम व गांधार

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. (घ) वैदिक काल   2. (ख) सामगान से   3. (ग) तीन   4. (ग)दस
5. (घ) रावनास्त्र   6. (ग) पाणिध   7. (क) नाटकों के सम्बन्ध में
8. (घ) स्वरों के व्यवस्थित क्रम को   9. (ख) मूर्च्छना   10. (ख) संदिग्ध काल

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, *भारतीय संगीत का इतिहास,* मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, श्री शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास,* चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. वृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।

4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास,* वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, *आदिवासी संगीत,* मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, *प्राचीन भारत का इतिहास,* बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण,* टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, *प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक),* संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, *उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा,* रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. साभार गूगल।
11. Bandopadhya Shripad, The Music of India, Tresure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
12. Eathel Rosenthal, The Story of Indian Music and its Instruments, Oriental Books, New Delhi.
13. Pingle B.A., History of Indian Music, Indological Book House, Delhi, 1985.
14. Deva B.C, Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास,* संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3,* संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध,* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन काल में भारतीय संगीत की स्थिति का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 2 – मध्यकाल

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मध्यकाल
 2.3.1 पूर्व मध्यकाल
 2.3.2 उत्तर मध्यकाल
2.4 सारांश
2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। आप प्राचीन काल से भी अवगत हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत मध्यकाल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। मध्यकाल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित, इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ चुके होंगे कि मध्यकाल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए क्या–क्या प्रयास किए गए। आप मध्यकाल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में भी जान चुके होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे :–

- पूर्व मध्यकाल में संगीत के विषय में।
- उत्तर मध्यकाल में संगीत के विषय में।
- मध्यकाल में रचित संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में।
- पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में प्राप्त संगीत सम्बन्धी सामग्री के विषय में।
- अमीर खुसरो के भारतीय संगीत में योगदान के सम्बन्ध में।
- संगीत सम्राट तानसेन के विषय में।
- मुगल शासकों के संगीत प्रेम के सम्बन्ध में।

2.3 मध्यकाल

मध्यकाल की अवधि 8 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक मानी जाती है। अध्ययन की सुविधा के लिये मध्य काल को मुख्य दो उपभागों में विभक्त किया जा सकता है–

मध्यकाल

पूर्व मध्यकाल
(8 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक)

उत्तर मध्य काल
(13 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक)

2.3.1 पूर्व मध्यकाल (8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक) – पूर्वमध्यकाल की अवधि 8 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक मानी जाती है। इस समय भारतवर्ष में छोटे–छोटे राज्य स्थापित होने तथा उनके आपस में युद्धरत रहने के कारण काफी निराजनक अराजक स्थितियॉ उत्पन्न हो गयी थी जिसका मानव जीवन तथा संगीत पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। मौर्य तथा गुप्तकाल में संगीत की जो अविछिन्न धारा सार्वभौमिकता के रुप में स्थापित हो गयी थी, वह इस काल में वर्गो में विभक्त हो गयी। इस काल के विभिन्न राज्यों के शासक जो अधिकाशतः राजपूत थे, युद्धप्रिय होने के साथ ही साथ संगीत प्रेमी भी थे। इनके समय में दीपावली जैसे परवोत्सवों पर रासलीला नृत्य एवं प्रकाश नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। विजयदशमी के शुभ अवसर पर नव दुर्गा की पूजा गा–बजाकर की जाती थी। मंदिरों में धूम–धाम से उत्सवों का आयोजन किया जाता था। इस काल में मंदिर संगीत (Temple Music) का विकास हुआ ।

राजपूत संगीतकारों का सम्मान करते थे। उनके राजदरबारों में अनेक संगीतज्ञों और कलाकारों को आश्रय मिला करता था। राज्याश्रय प्राप्त होने से संगीत कला का विकास भी हुआ। इस काल के कलाकारों की मनोवृति संकीर्ण एवं ईर्ष्यापूर्ण थी। इस समय के कलाकार अपने संगीत ज्ञान को छिपाकर रखते थे। उनका संगीत पीढी–दर–पीढी मौखिक परम्परा से चला करता था। निःसंतान होने की स्थिति में उनका संगीत उन्हीं के साथ समाप्त हो जाता था। इस संकीर्ण मनोवृति के कारण भारतीय संगीत में घरानों का सूत्रपात हुआ।

जिन राजाओं ने संगीत को राज्याश्रय दिया उनके महलों में राग–रागनियों के चित्र भी बनाये गये। संगीत राज्याश्रय प्राप्त हो जाने के कारण वह सामन्तशाही बन गया था। संगीत जन–सामान्य के जीवन से हटता गया और उसमें सामान्तशाही–ऐश्वर्य प्रवेश करता गया। सामान्य जन–जीवन से शास्त्रीय संगीत पृथक हो जाने के कारण लोक संगीत का निर्माण होने लगा।

नौ वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भारत में संगीत की अच्छी उन्नति हुई। उस समय के ग्रन्थों में 'संगीत रत्नाकर' व 'गीत गोविन्द' को देखने से यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल राग–गायन प्रचलित है, उसी प्रकार उस काल में प्रबन्ध गायन प्रचलित था इसलिये इस काल को **'प्रबन्ध काल'** भी कहते हैं। पूर्व मध्यकाल मे 8 वीं0 शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक के मध्य अनेक संगीत ग्रन्थों की रचना हुई जिनका विवरण निम्नानुसार है :–

- **संगीत मकरन्द** – 7वीं और 9वीं शताब्दियों के मध्य में नारद नामक भारतीय विद्वान ने ''संगीत–मकरन्द'' नामक ग्रन्थ की रचना की। 'संगीत–मकरन्द' के लेखक 'नारदीय शिक्षा' के प्रणेता नारद से भिन्न प्रतीत होते है। इस ग्रन्थ मे प्रथम बार पुरूष राग, स्त्री राग और नपुन्सक रागों का वर्गीकरण किया गया है। उन्होंने 'रागिनी' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इस ग्रन्थ में 20 पुरूष राग,

24 स्त्री राग और 13 नपुन्सक राग बताये गये हैं। साथ में स्वर, मूर्च्छना, राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। रागों के इस वर्गीकरण का आधार उनका रस सिद्धान्त है। नारद का कहना है कि रौद्र, अदभुत तथा वीर रस के लिए पुरूष राग, श्रृंगार, हास्य तथा करूण रस के लिए स्त्री राग और भयानक तथा शान्त रस की उत्पत्ति के लिये नपुन्सक रागों को प्रयोग में लाना चाहिए। उन्होंने इस ग्रन्थ में रागों की जातियॉ (सम्पूर्ण, षाड़व, व औड़व) तथा रागों के गायन समय को भी बताया है। उन्होंने इस ग्रन्थ में 19 अलंकारो का निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज नाम से नाद के पॉच भेदों का उल्लेख है तथा वीणा के अटठारह भेदों का वर्णन किया है। नारद ने 101 तालों को परिभाषित करके उनका वर्णन भी किया गया है। ताल शब्द की निष्पत्ति करके दस प्राणों का उल्लेख किया है। मार्ग, मात्रा, क्रिया, अंग, ग्रह आदि पर भरतोक्त मान्यताओं की पुष्टि की है।''

- <u>गीत गोविन्द</u> – गीत गोविन्द की रचना 12वीं शताब्दी में जयदेव ने की। जयदेव उच्चकोटि के कवि होने के साथ–साथ उत्तम संगीतकार भी थे इसलिए इनको वाग्गेयकार भी कहा जा सकता है। गीत–गोविन्द जयदेव की अमर कृति है। यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है। इसका अनुवाद दूसरी भाषाओं में भी हो चुका है। इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण की प्रेम–लीलाओं का भी वर्णन किया गया है। यह संगीतमयी ग्रन्थ माना जाता है क्योंकि इसके पदो के ऊपर राग और तालों के नाम अंकित किए गए हैं। इस ग्रन्थ का स्थायी भाव प्रेम है परन्तु यह प्रेम भौतिक न होकर आत्मा–परमात्मा के मिलन का आध्यात्मिक प्रेम है। गीत–गोविन्द संगीत के क्षेत्र में बहुत उच्च स्थान रखता है। इसमें प्रबन्धों व गीतों का संग्रह है, किन्तु स्वरलिपि न होने के कारण उन्हें उसी प्रकार गाया नहीं जा सकता।

<u>2.3.2 उत्तर मध्य काल (13 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक)</u> – इस काल का प्रारम्भ 13वीं शताब्दी के बाद से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में फारस और उत्तर भारतीय संगीत का मिश्रित रूप भली–भॉति विकसित हुआ। अतः इसे विकास काल कहा जाने लगा। मुसलमानों का प्रभाव विशेषकर उत्तरी संगीत पर पड़ा। अतः उत्तरी संगीत धीरे–धीरे दक्षिणी संगीत से अलग होने लगा। अधिकांश मुसलमान राजाओं को संगीत से विशेष प्रेम था, अतः उन लोगों ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया और संगीत को प्रोत्साहन दिया। इस काल में संगीत विकास का क्रम निम्नानुसार है :–

- <u>अलाउद्दीन खिलजी (1269–1316)</u> – इनके शासन काल में संगीत का बहुत विकास हुआ। खिलजी ने संगीत के प्रचार–प्रसार में अत्यन्त योगदान किया। इनके दरबार में अमीर खुसरो और गोपाल नायक जैसे उच्चकोटि के संगीत कलाकार थे।

- <u>अमीर खुसरो</u> – यह अलाउद्दीन के दरबार में प्रमुख रत्न थे। खुसरो फारसी के प्रसिद्ध कवि और महान् संगीतकार थे। अमीर खुसरो को कौल, कलवाना, कव्वाली, गजल और तराना आदि का आविष्कारक माना जाता है। सितार और तबले के आविष्कार का श्रेय भी अमीर खुसरो को ही दिया जाता है। इसके बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। यदि इनको आविष्कारक न भी माना जाए तो भी यह जरूर कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो ने इन वाद्यों के प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न किए। अमीर खुसरो ने अपना समस्त जीवन ही संगीत के लिए व्यतीत कर दिया।

अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तानी संगीत में फारसी संगीत का मिश्रण कर राग–रागिनी की एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया। हिन्दुस्तानी 6 राग और 36 रागनियों तथा ईरानी 12 मुकामों का समन्वय किया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत में नवीनता के दर्शन हुए। अमीर खुसरो ने कोल, कलवाना, नक्शेगुल, तराना आदि का आविष्कार किया। इनके द्वारा निर्मित रागिनियों में ईमन रागिनी

गायकों में आज भी विशेष प्रिय है उन्होंने भारतीय 'हिण्डोल' तथा फारसी 'मुकाम' राग मिलाकर 'इयामन' या 'इमन' राग की सृष्टि की थी।

- <u>गोपाल नायक</u> – खिलजी काल के दूसरे प्रमुख संगीतकार गोपाल नायक थे। गोपाल नायक देवगिरि राज्य के प्रसिद्ध गायक थे। 1294 ई0 में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर हमला किया और विजय प्राप्त की। विजय प्राप्त करने के बाद अलाउद्दीन वहां के बहुत सारे गायकों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया क्योंकि वह संगीत प्रेमी था। गोपाल हिन्दू ब्राह्मण थे। उनको संस्कृत भाषा का काफी ज्ञान था। वह संगीत के क्रियात्मक पक्ष में ही निपुण नहीं थे बल्कि संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों का भी भलीभांति ज्ञान रखते थे। इन्होंने ख्याल शैली के विकास के लिए बहुत यत्न किए। बडहंस, पीलू आदि रागों का आविष्कारक इनको माना जाता था। अलाउद्दीन खिलजी के समय में ही 13 शताब्दी के उत्तरार्ध में महान संगीतज्ञ शारंगदेव ने भारतीय संगीत के आधार एवं अमर ग्रंथ संगीतरत्नाकर की रचना की थी।

- <u>संगीत रत्नाकर</u> – 13 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शांरगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा था। इनमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में स्वराध्याय, राग विवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय और नर्तनाध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणा–चतुष्टय, ग्राम–मूर्च्छना, तान निरूपण, स्वर और वर्ण, अलंकार और जातियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में ग्राम राग और उनके विभाग तथा रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग और उनके नाम आदि दिये गये है। तृतीय अध्याय में वाग्गेयकार के लक्षण, गीत के गुण–दोष, गायक के गुण–दोष, और स्थाय इत्यादि का विवरण है। चतुर्थ अध्याय मे गान के निबद्ध–अनिबद्ध भेद, धातु व प्रबन्ध के भेद और अंगो का विवरण है।

पंचम अध्याय में तालों के विषय में तथा षष्ट अध्याय मे तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों के भेद, वादन विधि और वाद्यों तथा वादकों के गुण दोष दिये गये हैं। सप्तम अध्याय नृत्य और नाट्य पर है। इसमें नर्तन सम्बन्धी विवरण दिया गया है।

- <u>बाबर काल में संगीत</u> – मुगलों के प्रथम बादशाह जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर थे। बाबर स्वयं एक अच्छे संगीतकार थे। बाबर गाने में प्रवीण था। गायन विधा में दक्षता के साथ–साथ संगीतकारो का आदर–सम्मान करना तथा उनकी कला से प्रभावित होकर उन्हें पुरस्कृत भी करता था। बाबर के समय भारतीय संगीत उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता गया। इस काल में कल्लिनाथ ने 'संगीत रत्नाकर' की टीका लिखी। इस काल में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारक कबीर, रामानन्द, चैतन्य, नामदेव और वैष्णव मत के अनुयायी आदि ने परमात्मा के गुणों का गायन संगीत के माध्यम से किया। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारकों ने संगीत की अपार शक्ति का अनुभव कर लिया था। बाबर युग में धर्म और संगीत का सम्मिश्रण हुआ।

- <u>हुमायूॅ काल में संगीत</u> – बाबर के बाद उसका पुत्र नासिरूद्दीन हुमायूॅ गद्दी पर बैठा। हुमायूॅ के शासन काल में भी संगीत एवं संगीतकारों को मान–सम्मान प्राप्त हुआ। विद्वानों के मतानुसार हुमायूॅ ने संगीत को संकट कालीन अवस्था में भी नहीं छोड़ा। उन्हें संगीत अत्यन्त प्रिय था। बाबर का विश्वास था कि संगीत से मानव जीवन में एक नवीन रोशनी आती है, एक नवउत्साह का संचार होता है इसलिए वह अंत समय तक संगीत का महान उपासक बना रहा। हुमायूॅ काल में नये–नये भजन भी निर्मित हुए। इन भजनों द्वारा जहॉ एक ओर संगीत का प्रचार–प्रसार हुआ वही दूसरी ओर आध्यात्मिक ज्ञान भी आम जनता में प्रसारित हुआ। सूफी मत का भी अधिक प्रचार हुआ। सूफी कवियों ने भी अपनी रचनाओं का संगीत के माध्यम से प्रचार किया। इसके परिणाम स्वरूप नैतिक चरित्र भी उन्नत हुआ। इसके शासनकाल में कर्नाटक के प्रसिद्ध ग्रन्थकार रामामात्य जी ने 'स्वरमेल कलानिधि' की रचना की।

● <u>राग तरंगिणी</u> – इसी काल की यह सर्वप्रथम पुस्तक लोचन कृत है। इसकी रचना 15वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। इनके अनुसार शुद्ध थाट काफी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सम्पूर्ण रागों को कुल 12 मेलों (थाटों) में विभाजित किया गया है। आधुनिक थाट राग वर्गीकरण का बीजारोपण 'राग–तरंगिणी' में हुआ ऐसा विद्वत लोगों का विश्वास है।

● <u>मानसिंह तोमर</u> – (1486–1516) ग्वालियर के संगीत सम्प्रदाय का प्रारम्भ राजा मानसिंह तोमर के समय से होता है। इन्हीं के दरबार में प्रसिद्व नायक बक्सू रहते थे जिनका सुमधुर संगीत तानसेन के बाद ही अपना अलग स्थान रखता है। बक्सू मानसिंह तोमर के पुत्र, राजा विक्रमाजीत के दरबार में भी रहे।

सर डब्लू0 आंसले के अनुसार संगीत पर ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की आज्ञा से संकलित किए हुये ''मान कुतूहल'' का अनुवाद फकरउल्ला द्वारा ''राग दर्पण'' के नाम से किया था ।

● <u>बैजू बावरा</u> – राजा मानसिंह तोमर के दरबार में बैजू बावरा एक प्रसिद्व गायक थे। संगीत के महान ग्रन्थ ''राग कल्पद्रुम'' में तानसेन और बैजू के अनेक ध्रुपद संकलित हैं। कहा जाता है कि बैजू के सहयोग से ही राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद शैली का परिष्कार और प्रचार किया। राजा मानसिंह तोमर ने अपनी रानी मृगनयनी को संगीत शिक्षा देने के लिए बैजू वावरा को संगीत शिक्षक नियुक्त किया था। गुजरी–तोडी और मंगल गुजरी आदि राग मृगनयनी के नाम पर बने हैं। मृगनयनी गूजर कुल की थी और राइ गॉव की दरिद्र किसान की कन्या थी। बैजू ने अनेक लोकप्रिय गीत व ध्रुपद लिखे हैं। बैजू को वीणा–वादन पर भी उत्तम अधिकार था। बैजू स्वामी हरिदास के शिष्य थे।

बैजू बाबरा ने होरी गायन शैली का तथा धमार ताल का आविष्कार किया। बैजू ने कुछ नए रागों जैसे लंकदहन, सारंग, धूलिया मल्हार आदि की रचना की।

● <u>सुल्तान हुसैन शर्की काल में संगीत (1458–1499)</u> – जौनपुर के राजा सुल्तान हुसैन शर्की एक महान संगीतकार थे। कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल शैली का आविष्कार किया किन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। ख्याल के आविष्कार के संबन्ध में भले ही मतभेद हो परन्तु यह अवश्य कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने ''ख्याल शैली'' के प्रचार–प्रसार के लिए विशेंष योगदान दिया। इन्होंने कई नवीन रागों की रचना की थी– जैसे जौनपुरी तोड़ी, सिन्धी भैरवी, श्याम के विभिन्न प्रकार जैसे मल्हार श्याम, बसन्त श्याम आदि।

● <u>अकबर काल में संगीत</u> – अकबर एक अच्छा शासक होने के साथ–साथ संगीत–प्रेमी भी थे। अकबर स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। संगीत का प्रेमी होने के कारण उसने नक्काड़ा नामक वाद्य को बजाना सीखा और इसमें निपुणता हासिल की। अकबर के काल में संगीत का अत्यधिक प्रचार–प्रसार हुआ।

अकबर के जन्म के समय उसके पिता हुमायूँ को भारत छोड़कर फारस भागना पड़ा। 12 वर्ष की अल्पायु में ही अकबर को राज्यभार संभालना पड़ा। अकबर एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसने अपने राज्य का विस्तार पश्चिमी सीमा के कन्धार से पूर्व में आसाम तक और उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में अहमद नगर तक किया। अकबर एक प्रतिभाशाली शासक ही नहीं, वरन् समाज सुधारक भी था। उसने हिन्दू–मुसलमानों को एक सूत्र में बांधा। जाति–भेद की भावना को दूर किया।

अकबर के राज्यकाल में समस्त कलाओं का उत्कर्ष हुआ जिससे कलाकारों और विद्वानों को दरबार में उच्चपद और सम्मान प्राप्त हुआ। अकबर का राज्यकाल संगीत में स्वर्ण–युग कहा जाता है क्योंकि उसके राज्यकाल में संगीत कला सर्वोच्च शिखर पर पहुॅच गयी थी ।

अकबर ने अपने दरबार में गायकों तथा वादकों को विशेष रूप से स्थान दिया। अकबर संगीतकारों का बहुत आदर करते थे और समय–समय पर वह उन्हें पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित भी

करते थे। इनके दरबार में दूसरी रियासतों के कलाकार भी अपने कला–प्रदर्शन के लिए आते थे। इनके दरबार में तानसेन, नायक बैजू, तानतरंग खां, गोपाल, विचित्र खां, रामदास, सुरज्ञान, मियाचॉद, आदि प्रमुख संगीतकार थे।

- **तानसेन** : भारतीय संगीत के क्षेत्र में तानसेन को संगीत का सम्राट कहा जाता है। तानसेन द्वारा संगीत के क्षेत्र में दिया गया योगदान अद्वितीय है। तानसेन का बचपन का नाम तन्ना मिश्र था। तानसेन बचपन से ही बहुत नटखट था। पढ़ाई की जगह प्राकृतिक वातावरण में बहुत मन लगाता था और जानवरों की आवाज की नकल करने में वह बहुत निपुण था। एक बार स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य–मण्डली के साथ जंगल से जा रहे थे, तो तानसेन ने उनको शेर की आवाज निकालकर डराया। जब स्वामी जी को यह पता चला कि यह आवाज किसी शेर की नहीं किसी बच्चे की है, तो वह उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हुए और उसको अपना शिष्य बनाने का निर्णय किया। तानसेन ने स्वामी जी से संगीत की शिक्षा हासिल करने के बाद संगीत के क्षेत्र में बहुत निपुणता प्राप्त की। उनकी प्रसिद्धि का नाम सुनकर राजा राम चन्द्र ने आपको दरबारी गायक के तौर पर अपने दरबार में रख लिया। तानसेन के समय में प्रमुख गायन शैली ध्रुपद थी। तानसेन ने अनेक ध्रुपदों की रचना की और उनका गायन किया। जिसकी चर्चा सुनकर अकबर ने तानसेन को दिल्ली में बुलाया। तानसेन का गायन सुनकर अकबर बहुत प्रभावित हुए और तानसेन को रत्न की उपाधि देकर दरबार में रख लिया। अकबर ने 'कण्ठाभरणवाणीविलास' की उपाधि देकर तानसेन को सम्मानित किया।

तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मियां की तोड़ी, मियां की सारंग, मियां की मल्हार आदि रागों की रचना की। दरबारी कान्हड़ा को छोड़कर बाकी रागों के साथ मियां शब्द जोड़ा गया क्योंकि मियां शब्द का प्रयोग तानसेन के नाम के साथ किया जाता था। यह सारे राग उत्तर भारत में आज भी प्रचलित है। तानसेन से अकबर के दरबार के दूसरे कलाकार ईर्ष्या करते थे। उन्होंने अकबर बादशाह को तानसेन से दीपक राग सुनने के लिए कहा क्योंकि वह जानते थे कि जब तानसेन यह राग गाते थे तो तपिश पैदा हो जाती थी। इस राग को गाने के बाद तानसेन की हालत बहुत खराब हो गई। इस गर्मी को कम करने के लिए तानसेन की पुत्री ने मल्हार राग गाया। इस तरह के और भी उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि तानसेन ने संगीत की अच्छी साधना की थी। तानसेन ध्रुपद गायकी के सिद्ध गायक थे। तानसेन ने ध्रुपद गायन शैली को उच्चकोटि तक पहुंचाया। आज भी तानसेन के बनाये ध्रुपद प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में संगीतसार, रागमाला, गणेश स्त्रोत मुख्य हैं जिनमें से गणेश स्त्रोत अप्राप्त है।

तानसेन के पुत्र सूरत सेन और विलास खां ने उनकी संगीत–परम्परा को आगे बढ़ाया। इनका घराना रबाबियों का घराना कहलाया। इनकी लड़की–दामाद, जो वीणा बजाने में निपुण थे, बीनकार कहलाए। तानसेन की वंश परम्परा सेनीया घराना कहलायी।

- **रामदास** : अकबरी दरबार के संगीतज्ञों की सूची में रामदास का नाम दूसरे स्थान पर आता है। आप रामदास मल्हार के आविष्कारक कहे जाते हैं तथा उस समय के महान कलाकार सुरज्ञान खॉ के पिता भी थे। सुरज्ञान खॉ का वास्तविक नाम सुजान दास था, और सुरज्ञान खॉ की उपाधि उन्हें मिली थी। वे अकबर के दरबार में 1602 तक रहे। आपने अनेक पदों की रचना की।

- **चॉद खॉ व सूरज खॉ** : अकबर दरबार के संगीतज्ञ थे। सरमाया–ए–इशरत और सौत–उल–मुबारक ग्रन्थों के अनुसार इनके नामकरण का कारण यह था कि चॉद खॉ रात्री कालीन गाये जाने वाले राग रागिनी गाते थे और उनका उपनाम 'शशि' था जबकि सूरज खॉ दिन में गाये जाने वाले राग गाते थे और अपना उपनाम 'रवि' प्रयुक्त करते थे।

इस काल में वाद्यों में झांझर, बीन, रबाव, किन्नरी, सुरमण्डल जलतरंग, पखावज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कठसाल मुहचंग, खंजरी, मृदंग, डफर, झांझ, शंख, श्रंगी, भेरी, नगाड़ा, दुंदुभि, डोल, वेणु जिनांक, मंजीरा, मुरली आदि प्रयोग में लाये जाते थे।

अकबर के समय में वृन्द वादन को नौबत के नाम से जाना जाता था। आइन–ए–अकबरी में इस प्रकार का उल्लेख है कि अकबर के नक्कारखाने में 14 बड़े नौबत, 20 छोटे आकार के नक्कारे, 4 ढोल, 4 कनी, 4 सुरनई, उनके साथ आधार स्वर के वाद्य 2 श्रृंगी या सींग तथा 3 जोड़े बड़े आकार के आघाती (Symbol) और नक्कारा का उल्लेख मिलता है।

भारत में भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। भक्ति मनुष्य को दुःख, सुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि की भावनाओं से मुक्त करवा देती है। भक्ति का प्राचीन स्वरूप वेदों के द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर चली जिसको भक्ति–आन्दोलन का नाम दिया गया। भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने आम जनता को भक्ति के बुनियादी तत्वों का ज्ञान संगीत के माध्यम से दिया। इन पीरों–फकीरों और संतों ने संगीत को ही अपना प्रमुख साधन माना। इस प्रकार मध्यकाल में हमारे भक्ति संगीत की प्रमुख विभूतियां मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि प्रमुख थे।

- **स्वामी हरिदास** : स्वामी हरिदास जी तानसेन के गुरू थे तथा आध्यात्मिक संगीत के महान् संगीतज्ञ थे। स्वामी हरिदास जी ने ब्रज भाषा में अनेक ध्रुपदों की रचना की और उन्हें गेय रूप दिया। स्वामी हरिदास उत्तर भारत के महान् वाग्गेयकार थे। स्वामी जी गायन तथा वादन दोनों कलाओं में प्रवीण थे। इन्होंने अनेक शिष्य तैयार किए जिनमें से तानसेन, बैजू बावरा, गोपाल नायक, मदनलाल, रामदास, पं0 सोमनाथ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अकबर काल में पुण्डरीक विट्ठल ने सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, नर्तन निर्णय, रामामात्य ने स्वरमेलकलानिधि, सूरदास ने सूरसागर, सूररचनावली आदि प्रमुख ग्रन्थों की रचना की। गुरू अर्जुन देव जी ने अपनी और पांच गुरूओं की वाणी के अतिरिक्त दूसरे भक्तों पीर, फकीरों की वाणियों को इकट्ठा करके आदि गुरू ग्रन्थ साहिब संकलित किया है। उनका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक पक्ष को उभारना था न कि सांगीतिक पक्ष को। संगीत का तो उन्होंने एक मात्र सहारा ही लिया।

- **स्वरमेलकलानिधि** : इसी समय दक्षिणी संगीत विद्वान् रामामात्य ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें पांच प्रकरण हैं – स्वर प्रकरण, उपोद्धात प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण और राग प्रकरण। स्वर प्रकरण में सात शुद्ध और सात विकृत स्वर माने गए हैं। वीणा प्रकरण में वीणा की डांड पर आपने 14 स्वर स्थापित किए हैं। मेल प्रकरण में 20 थाट का वर्णन है। राग प्रकरण में 20 थाट के अर्न्तगत 63 जन्य रागों का वर्णन मिलता है।

- **सद्रागचन्द्रोदय** : इस ग्रन्थ में दक्षिणी संगीत का विवरण है। इसमें पुण्डरीक विटठल ने 19 थाटों को मानकर उनमें दक्षिण के रागों का वर्गीकरण किया है।

इस प्रकार अकबर के समय में भारतीय संगीत उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच चुका था।

- **जहॉंगीर (1605–1627)** : जहॉंगीर अकबर के समान ही कला और साहित्य प्रेमी थे। उन्हें सितार वाद्य में विशेष रूचि थी जिस कारण इस युग में सितार वादन की विशेष प्रगति हुई। इनके दरबार में छत्तर खॉं, विलास खॉं, परवेजदाद खुर्रमदाद, मक्खू इत्यादि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। जहॉंगीर नामा में उल्लेख मिलता है कि शौकी नामक गजल गायक को जहॉंगीर ने आनन्द खॉं की उपाधि प्रदान की।

1610 में दक्षिण के विद्वान पं0 सोमनाथ ने ''रागविबोध'' नामक पुस्तक लिखी। इसमें भी उत्तरी और दक्षिणी संगीत को एक में समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है।

1625 ई0 में पंडित दामोदर द्वारा संगीत दर्पण की रचना हुई। इस ग्रन्थ के दो अध्याय हैं – पहला स्वर अध्याय और दूसरा राग अध्याय। यह ग्रन्थ हिन्दी, फारसी, गुजराती आदि भाषाओं में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में रागों का विशेष वर्णन किया गया है।

- **रागतत्व विबोध** : सोमनाथ के द्वारा लिखित रागतत्व विबोध भी इसी काल की रचना है। इन्होंने कुल 22 श्रुतियां मानीं और इन्होंने सात शुद्ध और 15 अशुद्ध स्वरों का वर्णन 23 मेलों के अर्न्तगत किया।

- **शाहजहॉ (1627–1658)** :–जहांगीर की मृत्यु के पश्चात् उनका बेटा शाहजहां गद्दी पर बैठा तो उसने भी अनेक संगीतकारों को राज्याश्रय देकर अपने कला प्रेमी होने का प्रमाण दिया। यह शासक संगीत प्रेमी होने के साथ–साथ गायक भी था। शाहजहां का सुर सुमधुर एवं हृदयग्राही था। ये उर्दू भाषा के गीत बहुत अच्छी तरह से गाते थे। शाहजहॉ के समय से ही संगीत की स्थिति में गिरावट आने लगी थी क्योंकि इस समय अधिकांशतः संगीतज्ञ अनपढ़ थे।

वास्तव में शाहजहॉ के काल से नृत्य और गायन गणिकाओं के हाथ में पूर्णरूपेण चला गया था। संगीत में निम्नता की नींव इस काल पड़ गयी थी। इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा इतनी उच्च व दैदीप्य मान नहीं रही जितनी कि प्राचीन काल में थी। शाहजहॉ के दरबार में जगन्नाथ, लाल खॉ, विलास खॉ, दिरग खॉ, ताल खॉ आदि संगीतज्ञ थे। जगन्नाथ को **कविराज** और दिरग खॉ को **गुण समुद्र** की उपाधि शाहजहॉ ने प्रदान की। समय–समय पर संगीत सम्मेलन आयोजन किये जाते थे। संगीत प्रतियोगिताएं आयोजित कर विजेताओं को पुरस्कृत भी किया जाता था।

- **संगीत पारिजात** :– यह पुस्तक 1650 ई0 में पंडित अहोबल द्वारा लिखी गई। दीनानाथ ने फारसी में इसका अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में प्रथम बार वीणा के तार पर बारह स्वरों की स्थापना की गई है। संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक उत्तरी भारत के काफी थाट और दक्षिणी भारत के खरहरप्रिया के सदृश्य है। पं0 अहोबल ने 29 विकृत स्वरों के नाम तो दिये हैं, किन्तु राग अध्याय में कई स्वर छोड़ दिये हैं। वास्तव में उन्होंने एक ही स्वर के लिए कई नाम प्रयोग किये हैं।

- **औरंगजेब–(1658–1700)** : औरंगजेब के शासनकाल में संगीत को इतना प्रोत्साहन नहीं मिला क्योंकि वह संगीत प्रेमी नहीं था परन्तु फिर भी संगीत के साधक एकान्त में बैठकर संगीत की साधना करते रहे। इनके शासनकाल में हृदयनारायण ने हृदयकौतुक, हृदय प्रकाश, भावभट्ट ने अनूप संगीत विलास, अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप प्रकाश, व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डि प्रकाशिका आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की।

- **अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूप प्रकाश** : भावभट्ट ने यह तीनों ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में संगीत के पारिभाषिक तत्व जैसे स्वर, ग्राम, मूर्छना, अलंकार आदि का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त ध्रुपद गायन शैली और रागों के भेदों के बारे में बताया।

- **हृदयकौतुक और हृदय प्रकाश** : हृदय नारायण के हृदयकौतुक और हृदय प्रकाश नामक ग्रन्थों की रचना औरंगजेब के समय में ही मानी जाती है। इनमें उन्होंने वीणा तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना की है। इनमें संगीत के पारिभाषिक तत्वों जैसे वादी, संवादी, विवादी, तान आदि का वर्णन किया है। इन्होंने एक राग, जिसका नाम हृदयराग रखा, की रचना भी की।

- **चतुर्दन्डिप्रकाशिका** : यह ग्रंथ 1660ई0 में दक्षिणी के पं0 व्यंकटमुखी द्वारा लिखा गया है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि उस समय के स्वर–सप्तक से अधिक से अधिक 72 थाटों की रचना हो सकती है तथा एक थाट से कुल 484 राग उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि ग्रन्थकार ने एक सप्तक में 12 स्वर माने हैं, किन्तु एक स्वर के कई नाम भी स्वीकार किये हैं।

- **बहादुर शाह प्रथम** : औरंगजेब का सबसे छोटा प्रिय पुत्र ''मुअज्जम'' बहादुर शाह प्रथम के नाम से प्रसिद्व हुआ। ''रागमाला', 'ध्रुवपद ''संग्रह'' में इसके नाम से अंकित ध्रुवपद मिलते हैं। सुप्रसिद्व ''सदारंग'' भी इनके दरबार में थे ।

- **मोहम्मद शाह रंगीले (1719–1748)** : बहादुरशाह का पोता मुहम्मद शाह 1719 ई0 में गद्दी पर बैठा। मुहम्मद शाह संगीतकला का अत्यन्त प्रेमी था। इसी कारण उसका उपनाम 'रंगीला' पड़ा इनके दरबार में गायकों के दो प्रमुख वर्ग 'कलावन्त' और कव्वाल थे। इनके दरबार में सदारंग, अदारंग, इच्छा बरस आदि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जिन्होंने ख्याल बनाये और अपने शिष्यों को सिखाये। यद्यपि वे स्वयं ध्रुवपद गाते थे और अच्छे वीणावादक भी थे। अपनी बंदिशों में इन्होंने सम्राट का नाम मुहम्मद शाह

रंगीले दिया है। इसी युग में ख्याल गायकी का प्रचार बहुत तीव्रता से हुआ। इसी युग में 'सितार' वाद्य का आविष्कार हुआ।

'टप्पा' गायन शैली का प्रारम्भ भी इसी काल में 'गुलाम नवी' द्वारा हुआ। गुलाम नवी अच्छे गायक और कवि थे। वह पंजाब के रहने वाले थे और 'मियॉ शोरी' के नाम से प्रसिद्ध हुये। 'टप्पा' गायन शैली अन्य गायन शैलियों से भिन्न प्रकार की है। इसका गायन संक्षिप्त, चंचल प्रकृति का होता है। इसके लिये गले की तैयारी की आवश्यकता होती है। काफी, 'झिंझोटी', 'खमाज', भैरवी आदि रागों में टप्पा की बंदिशें विशेषतया गायी जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जहॉ रंगीले का राज्यकाल शासन की दृष्टि से तो अवनति की दशा की ओर जा रहा था वहीं संगीत के क्षेत्र में संगीतज्ञों ने नये–नये मार्गों की खोज कर ऐसी नवीन गायन शैलियों का प्रचार कर दिया जिसने प्राचीन ध्रुवपद, धमार गायन शैली के स्थान पर ख्याल, टप्पा जैसी नवीन शैलियों को प्रचारित–प्रसारित कर दिया।

मुगल सम्राट अहमदशाह के दरबार में 'सुरभावन' और आलम ध्रुवपदकार हुए। 1797ई0 में शाह आलम का शासन आरम्भ होता है। शाह आलम भी अत्यन्त संगीत प्रेमी शासक था। उसने स्वयं एक गेय काव्य संग्रह की रचना 'नादिरातिशाही' नाम से की थी। इसी समय दक्षिण के प्रसिद्ध संत संगीतज्ञ त्यागराज का जन्म हुआ।

अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर कुशल शायर एवं सहृदय व्यक्ति था। वह 'संगीत' द्वारा जीवन में प्रेरणा लेता रहा। इनके राज्यकाल में संगीत के लिये उपर्युक्त परिस्थितियां नहीं थी और परिणाम स्वरूप दरबार में संगीत का अनुशीलन लगभग बन्द हो गया था। राज्य की दयनीय दशा के कारण दिल्ली के अधिकांश कलाकार देश की विभिन्न रियासतों में चले गये जहॉ नवाबों एवं राजाओं ने इन संगीतज्ञों को आश्रय प्रदान किया।

- **संगीत–ग्रन्थो की रचना–** पूर्व–मध्यकाल मे रचित ग्रन्थो संगीत मकरन्द, गीत–गोविन्द आदि के अतिरिक्त उत्तर–मध्यकाल मे भी अनेक महत्वपूर्ण संगीत ग्रन्थो की रचना हुई जिनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय है :–

1. शारंगदेव कृत संगीत–रत्नाकर
2. लोचन कृत रागतरंगिणी
3. कल्लिनाथकृत संगीत–रत्नाकर की टीका
4. रामामात्यकृत स्वरमेलकलानिधि
5. पुण्डरीकबिट्ठलकृत सद्रागचन्द्रोदय
6. रागमाला
7. रागमंजरी
8. नर्तननिर्णय
9. सोमनाथकृत राग–विबोध
10. पं0 दामोदर कृत संगीतदर्पण
11. व्यंकटमुखीकृत चतुर्दन्डिप्रकाशिका
12. पं0 अहोबलकृत संगीत–पारिजात
13. हृदयनारायणदेवकृत हृदय–कौतुक और हृदय–प्रकाश
14. पं0 श्रीनिवासकृत राग–तत्व–विवोध
15. पं0 तुलाजीराव भोंसले कृत संगीत–सारामृत और राग–लक्षणम्
16. भावभट्टकृत अनूप–विलास, अनुप प्रकाश और अनूप संगीत रत्नाकर आदि।

इस युग ने भारतीय संगीत को भक्ति–संगीत के एक अनुपम भण्डार से समृद्ध किया। कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के पद, भजन और गीत भारतीय संगीत की अमूल्य निधि है।

मुगल–शासन काल में संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष दोनो समृद्ध हुए। जहॉ लोचन, रामामात्य, सोमनाथ एवं पं0 अहोबल आदि संगीत–शास्त्रकारों ने अपने संगीत–शास्त्र–ग्रन्थो में भारतीय संगीत के शास्त्र–पक्ष को समृद्ध किया वहीं स्वामी हरिदास, तानसेन, नायक बैजू नायक गोपाल, नायक बख्श, विलास खॉ, लाल खॉ, छतर खॉ, दिरंग खॉ, सदारंग, अदारंग, मुहम्मदशाह रंगीले एवं हिन्दी के भक्ति–संगीत गायकों सूर, तुलसी, मीरा आदि ने भारतीय संगीत के क्रियात्मक पक्ष को पूर्ण समृद्धता प्रदान की।

इन्हीं कारणों से भारतीय संगीत के इतिहास मे मध्य–युग 'स्वर्ण–युग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1) मध्यकाल को कितने भागों में बॉट सकते हैं? उत्तर मध्यकाल के विषय में विस्तार से बताइये।
2) संगीत मकरन्द किसने लिखी तथा इस ग्रंथ में किन बातों का उल्लेख है? संक्षेप में बताइये।
3) संगीत रत्नाकर की रचना किसने की ? संगीत रत्नाकर की विषय–वस्तु के विषय में विस्तार से वर्णन कीजिए।
4) अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल का समय क्या था व उसके दरबार में कौन–कौन संगीतज्ञ थे?
5) राग तरंगिणी पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
6) अकबर के समय में संगीत की उन्नति पर विस्तार से वर्णन कीजिए।
7) अकबर के शासनकाल में किन्हीं 2 प्रमुख संगीतज्ञों के विषय में बताइये।
8) संगीत पारिजात पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1) शारंगदेव के अनुसार कितने ग्राम राग होते हैं? बताइये।
2) मध्यकाल को हम कितने भागों में विभक्त कर सकते हैं?
3) भारत में मुसलमानों का आगमन पर चर्चा कीजिए।
4) संगीत मकरन्द के अनुसार रागों को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है? समझाइये।
5) अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल पर प्रकाश डालिए।
6) अमीर खुसरो ने किन वाद्यों का आविष्कार किया? बताइये।
7) टप्पा गायन शैली पर टिप्पणी लिखिए।

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. गीत गोविन्द की रचना पं0 जयदेव द्वारा .... शताब्दी में हुई।
2. राग तरंगिणी के अनुसार सम्पूर्ण रागों को कुल .... थाटों में बॉटा गया है।
3. राजा मानसिंह तोमर का राज्य काल सन् .... से .... था।
4. तानसेन .... गायकी के प्रसिद्ध गायक थे।
5. दरबारी कान्हड़ा .... द्वारा रचित राग है।
6. रामदासी मल्हार का आविष्कार .... ने किया।
7. चॉद खॉ का उपनाम .... था।
8. सन् .... में पं0 दामोदर मिश्र ने .... ग्रंथ लिखा।
9. ग्रंथ .... में प्रथम बार वीणा के तार पर .... स्वरों की स्थापना की गई है।
10. हृदय नारायण देव ने .... और .... ग्रंथ लिखे।
11. शोरी मियॉ ने .... का आविष्कार किया।

(घ) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

(1) मुसलमान बनने से पूर्व तानसेन का नाम था –

(i)	तानसेन चर्तुवेदी	(ii)	तन्ना द्विवेदी
(iii)	तन्ना मिश्र	(iv)	तानसेन चौबे

(2) गणेश स्त्रोत किसके द्वारा रचित ग्रंथ है –

(i)	रामदास	(ii)	तान तरंग
(iii)	गोपाल	(iv)	तानसेन

(3) ख्याल का आविष्कार किया –

(i)	विचित्र खॉ	(ii)	सुल्तान हुसेन शर्की
(iii)	मोहम्मद शाह रंगीले	(iv)	पं0 अहोबल

(4) पुंडरीक विट्ठल की रचना का नाम है –

(i)	नर्तन निर्णय	(ii)	मेद्य
(iii)	राग तरंगिणी	(iv)	संगीत रत्नाकर

(5) वृन्द वादन का एक अन्य नाम –

(i)	शौकत	(ii)	औकत
(iii)	पंचवत	(iv)	नौबत

(6) शौकी को आनन्द खॉ की उपाधि किसने प्रदान की –

(i)	शाहजहॉ	(ii)	जहॉगीर
(iii)	अकबर	(iv)	अलाउद्दीन खिलजी

(7) 'राग विबोध' के रचनाकार –

(i)	पं0 सोमनाथ	(ii)	पं0 दामोदर
(iii)	पं0 गंगाधर	(iv)	पुॅडरीक बिट्ठल

(8) गुण समुद्र कहते हैं –

(i)	विलास खॉ	(ii)	ताल खॉ
(iii)	दिरग खॉ	(iv)	छत्र खॉ

(9) पं0 अहोबल द्वारा रचित पुस्तक –

(i)	संगीत मकरन्द	(ii)	संगीत रत्नाकर
(iii)	चर्तुदन्डिप्रकाशिका	(iv)	संगीत पारिजात

(10) अदारंग किसके दरबार मे संगीतज्ञ थे –

(i)	मो0 खिलजी	(ii)	मो0 शाह रंगीले
(iii)	सुल्तान हुसेन शर्की	(iv)	औरंगजेब

(11) प्रबंध काल कहलाता है –

(i)	वैदिक काल	(ii)	आधुनिक काल
(iii)	प्रागैतिहासिक काल	(iv)	मध्यकाल

2.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के मध्यकाल से परिचित हो चुके होंगे। भारतीय संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की सुमधुर स्वर–लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान होती रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- सामंतशाही ऐश्वर्य के प्रवेश के कारण संगीत अपनी मौलिक मर्यादा से हटकर श्रृंगार–प्रधान हो गया।
- मुस्लिम आक्रमणों के परिणामस्वरूप मुगल–सभ्यता के प्रभाव से भारतीय संगीत अपनी प्राचीनता को विस्मृत करते हुए एक नवीन रूप में विकसित होने लगा। परिणामतः भारतीय संगीत उत्तरी एवं दक्षिणी दो पद्धतियों में विभक्त हो गया।
- दक्षिण भारतीय संगीत अपने प्राचीन मौलिक रूप को अक्षुण रखते हुए उन्नति पथगामी होता रहा, जबकि उत्तर भारतीय संगीत मुस्लिम–संगीत के सम्पर्क में आकर नित–नवरूपों में विकसित होने लगा।
- मध्यकाल के पूर्वार्ध में प्रबन्ध–गायन प्रचलित था, इसी कारण से यह प्रबन्ध–काल भी कहलाता है।
- इस काल में ''संगीत–मकरंद'', ''गीत–गोविन्द'' एवं ''मानसोल्लास'' जैसे महत्वपूर्ण संगीत–ग्रन्थों की रचना हुई। सन् 1290 से 1320 के बीच अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में महान संगीतज्ञ शारंगदेव ने भारतीय संगीत के आधार एवं अमर ग्रन्थ ''संगीत–रत्नाकर'' की रचना की। रामामात्य कृत ''स्वरमेल कलानिधि'', पुण्डरीक विट्ठल ने ''सद्राग–चन्द्रोदय'', ''रागमाला'', ''रागमंजरी'' एवं ''नर्तन निर्णय'', सोमनाथ कृत ''राग–विबोध'', पं0 दामोदर कृत ''संगीत–दर्पण'', पण्डित अहोबल ने ''संगीत–पारिजात'' भी इसी काल में लिखी गई।
- जौनपुरी बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल–गायन का प्रचार किया।
- मुगल शहंशाह अकबर के शासनकाल में भारतीय संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर पहुॅचा। अकबर के दरबार में तानसेन, नायक बैजू, तालरंग एवं गोपाल आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इस काल में ध्रुपद–गायन का अत्यधिक प्रचार था। इसी समय सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजू बाबरा ने होरी गायन शैली का तथा धमार ताल का आविष्कार किया।
- मुगलकाल के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के समय में भी संगीत पुनः उन्नति की ओर अभिमुख हुआ। इसी समय पंजाब में गुलाम रसूल उर्फ शोरी मियां ने टप्पा जैसी लोचपूर्ण गायन–शैली का अविष्कार किया। त्रिवट, गज़ल एवं तराना जैसी गायन–शैलियॉ भी इसी काल में प्रचार में आयी।

इन्हीं कारणों से भारतीय संगीत के इतिहास मे मध्य–युग को 'स्वर्ण–युग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. 12वीं 2. 12 3. 1486 से 1516 4. ध्रुवपद
5. तानसेन 6. रामदास 7. शशि 8. 1625, संगीत दर्पण
9. स्वरमेलकलानिधि, 14 10. हृदयकौतुक, हृदयप्रकाश 11. टप्पा

(घ) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. (iii) तन्ना मिश्र 2. (iv)तानसेन 3. 4. (iii) राग तरंगिणी
5. (iv)नौवत 6. (ii) जहांगीर 7. (i) पं0 सोमनाथ 8. (iii) दिरग खां
9. (iv)संगीत पारिजात 10. (ii) मो0 शाह रंगीले 11. (iv)मध्यकाल

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, *भारतीय संगीत का इतिहास*, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. बृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास*, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, *आदिवासी संगीत*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, *प्राचीन भारत का इतिहास*, बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण*, टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, *प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक)*, संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, *भारतीय संगीत का इतिहास मध्यकाल उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा*, रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. Bandopadhya Shripad, *The Music of India*, Tresure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
11. Eathel Rosenthal, *The Story of Indian Music and its Instruments*, Oriental Books, New Delhi.
12. Pingle B.A., *History of Indian Music*, Indological Book House, Delhi, 1985.
13. Deva B.C, Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास*, संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3*, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यकाल में लिखित ग्रन्थों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 3 – आधुनिक काल

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 आधुनिक काल में संगीत
  3.3.1 पूर्व आधुनिक काल
  3.3.2 आधुनिक काल
3.4 सारांश
3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। आप संगीत के इतिहास के बारे में पढ़कर यह भी जान चुके होंगे कि भारतीय संगीत का इतिहास अनेक विविधताओं के होते हुए भी अत्यन्त समृद्धशाली रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक के भारतीय संगीत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर यदि दृष्टिपात करने पर हम पायेंगे कि संगीत कला को विविध प्रकार के उतार–चढ़ावों से गुजरना पड़ा है।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत आधुनिक काल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। आधुनिक काल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित, इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ चुके होंगे कि आधुनिक काल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए क्या–क्या प्रयास किए गए। आप आधुनिक काल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में भी जान चुके होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे –

- पूर्व आधुनिक काल में संगीत के विषय में।
- आधुनिक काल में संगीत के विषय में।
- आधुनिक काल में रचित संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में।
- अवध एवं रामपुर के शासक नवाबों के संगीत प्रेम के सम्बंध में।
- पं0 विष्णुनारायण भातखण्डें एवं पं0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के विषय में।
- वर्तमान समय में संगीत की स्थिति के संबंध में।

3.3 आधुनिक काल में संगीत

भारतीय संगीत में 1800 ईसवी से आज तक का समय आधुनिक काल के अर्न्तगत आता है। अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से आधुनिक काल को दो भागों में बांटा जा सकता है।

आधुनिक काल

पूर्व आधुनिक काल
(1800 ई0 से 1900 ई0 तक)

आधुनिक काल
(1900 ई0 से वर्तमान तक)

<u>**3.3.1 पूर्व आधुनिक काल (1800 ई0 से 1900 ई0 तक)**</u> – भारत में विदेशी कम्पनियों के आगमन तथा मुगल शासन के अंत का प्रभाव भारतीय संगीत पर भी पड़ा। सन् 1750 से ही अंग्रेजों के काल का प्रवेश माना जा सकता है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से फ्रॅासीसी तथा अंग्रेज भारतवर्ष पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गये। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे करके देश पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया तथा यहॅा के शासक बन बैठे। उन्होंने अपने गुलाम देश के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिये कुछ भी नहीं किया। उनका मुख्य ध्येय भारत पर शासन करना था। अंग्रेजों ने भारतीय संगीत को मात्र कोलाहल के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा, वे इसे असभ्यों का संगीत मानते थे। अतः उन्होंने सदैव भारतीय संगीत की उपेक्षा की। वे न तो भारतीय संगीतज्ञों का सम्मान करते थे और न उन्हें कुछ प्रोत्साहन देते थे। वे अपनी संस्कृति के सामने भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखते थे। संगीत का आश्रय केवल देशी राजाओं का दरबार रह गया था। इन देशी राजाओं में भी जो राजा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आ गये उन्होंने भी भारतीय संगीत को राज्याश्रय से बाहर कर दिया। परिणाम स्वरूप भारतीय संगीत ऐसे लोगो के हाथ में चला गया जो समाज में घृणित दृष्टि से देखे जाते थे। संगीत कला मात्र कुछ रियासतों मे ही सीमित हो गई। संगीतज्ञों की भी बुरी दशा थी, वे केवल अपने सम्बन्धियों को और उस पर भी बड़ी मुश्किल से सिखाते थे। अन्य किसी बाहरी व्यक्ति का उनसे संगीत सीखना लगभग असंभव था। धीरे–धीरे संगीत समाज की कुलय स्त्रियों के हाथ में चला गया। समाज ऐसे व्यक्तियों से घृणा करता ही था, अतः संगीत से भी घृणा करने लगा। संगीत आमोद–प्रमोद का साधन हो गया, यहॅा तक कि सभ्य समाज में संगीत का नाम लेना पाप समझा जाने लगा।

आधुनिक काल के पूर्वाद्ध में मुगलकाल का अन्तिम सम्राट बहादुर शाह जफर था उसके उपरान्त संगीत का उत्कृष्ट स्वरूप हमें मुहम्मद शाह रंगीले के युग में मिलता है। मुहम्मद शाह संगीत में विशेष रूचि रखते थे। उन्होंने संगीत के प्रचार–प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया, जिस कारण उसको 'रंगीला' के नाम से जाना जाता हैं। उनके काल में साहित्यकला और संगीत सभी को बहुत प्रोत्साहन मिला। इसी काल में ध्रुवपद, धमार का स्थान ख्याल, ठुमरी, दादरा, कब्वाली ने ले लिया था। वीणा जो प्राचीन वाद्य था, उसके स्थान पर नवीन वाद्य सितार का प्रचार हुआ।

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात स्वंय को असुरक्षित एवं आरक्षित अनुभव करने के कारण विद्वानों एवं कलाकारों को दिल्ली छोडना पडा। निराश्रित होकर ये विद्वान एवं कलाकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसने लगे। दिल्ली के विस्थापित अधिकतर कलाकारों को 'अवध' में आश्रय प्राप्त हुआ। अवध के शासक नबाव संगीत प्रेमी थे।

- **नवाब वाजिद अली शाह** – एक सह्दय, कलाप्रेमी एवं बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न शासक थे। संगीत प्रेम उन्हें विरासत में मिला था। वाजिद अली शाह के पिता नवाब अहमद अली शाह तथा दादा मुहम्मद अली शाह भी संगीत में रुचि रखते थे। इसी कारण उस समय अवध पूर्णरुपेण संगीतमय था। इसी संगीतमय वातावरण में वाजिद अली शाह का जन्म हुआ। संगीत जगत में इन्हे 'अख्तर पिया' के नाम से भी जाना जाता है। अपनी प्रजावत्सलता के कारण वह अभूतपूर्व लोकप्रिय थे। जिससे वह आम जनता द्वारा ''जाने आलम'' कहे जाते थे। वे स्वयं उच्चकोटि के गायक थे और 'अख्तर पिया' उपनाम से अनेक ठुमरी, ख्याल, सादरों की रचना भी की। 18 वर्ष की छोटी अवस्था से ही इन्होंने सांगीतिक रचनाओं का लेखन कार्य प्रारम्भ कर उसे आजीवन कायम रखा। इन रचनाओं में संगीत के शास्त्रपक्ष एवं क्रियात्मक पक्ष दोनों का ही वर्णन किया। इन्होंने उर्दू, फारसी, ब्रजभाषा में गद्य व पद्य में लगभग 100 से अधिक पुस्तकें लिखी। संगीत की विभिन्न शैलियों जैसे– ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, सादरा, त्रिवट, चतुरंग, ग़ज़ल आदि सभी का विशद वर्णन किया है। इन रचनाओं की स्वरलिपियां उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि उस समय तक न तो स्वरलिपि पद्धति इजाद हुई थी और न ही ध्वन्यांकन की सुविधा थी। एक अनुमान के अनुसार वाजिद अली शाह के युग में स्वरलिपि की प्राचीन भारतीय पद्धति लुप्त हो गयी थी। इसे स्वयं वाजिद अली शाह ने नवीन रुप दिया जिसका पुनरुद्धार कालान्तर में संगीत के चतुर पंडित भातखण्डे ने किया। नवाब वाजिद अली शाह का संगीत जगत में सराहनीय योगदान रहा। इन्होंने संगीत के शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय विधाओं को भी पल्लवित किया व नृत्यकला की विशेष प्रगति हुयी ।

कालान्तर में अवध में राजनैतिक उथल–पुथल होने पर वहां के अधिकांश आश्रित कलाकार रामपुर रियासत में आ गये। संगीत की अमूल्य पंरम्परा की रक्षा करके उसे जीवित रखने के प्रति दृढ–संकल्प रामपुर रियासत के नवाबों का नाम संगीत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

- **नवाब सादुल्लाह खां** – मुगल दरबार के कुछ कलाकार रुहेला नबाव सादुल्लाह खां के आश्रय में आ गये । इनमें फिरोज खां ''अदारंग'', मेहन्दी हसन और करीम सेन जैसे कलाकार भी थे, जो कि स्थायी रुप से वही रहने लगे। ये तीनों कलाकार सेनिया घराने के प्रसिद्व कलाकार थे।

फिरोज खां ''अदारंग' ''सदारंग'' के भतीजे दामाद एवं शिष्य थे। कुछ विद्वान ''अदारंग'' को नियामत खां ''सदारंग'' का पुत्र भी मानते है। इन्होंने अनेक ध्रुवपद, तरानों एवं ख्यालो की रचना की। इन्होंने ''फीरोजखानी तोडी'' नामक एक राग का प्रचलन किया। फीरोज खां ''अदारंग'' के शिष्य थे। मेंहदी सेन एक कुशल कलावन्त थे ।

- **नवाब यूसुफ अली खां** – नबाव मुहम्मद सईद खां की मृत्यु के पश्चात इनके बडे पुत्र मुहम्मद यूसुफ अली खां ने 9 अप्रैल 1855 को रामपुर की सत्ता ग्रहण की। यह योग्य शासक और संगीत प्रेमी थे और स्वयं कविताओं की रचना भी किया करते थे। आपने अपना उपनाम ''नाज़िम'' रखा था।

नवाब यूसुफ अली खां के समय में रामपुर–दरबार गुणियों का आश्रयस्थल बन गया था। सन 1857 के स्वत्रंता–संग्राम के पश्चात् दिल्ली और लखनऊ के दरबार समाप्त हो चुके थे। इस स्वतन्त्रता–संग्राम के समय रामपुर शान्त रहा, इसलिए विद्वानों, कलाकारों और शायरों आदि ने रामपुर–दरबार में आश्रय प्राप्त किया। नबाब यूसुफ अली खां के दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे जिनमें उस्ताद बहादुर हुसैन खां, उस्ताद अमीर खां और उस्ताद रहीम खां प्रमुख थे। उस्ताद बहादुर हुसैन, उनके दामाद ध्रुवपद–गायक और बीनकार अमीर खां और उनके भाई रहीम खां, ये तीनों ही रामपुर–दरबार में आने से पहले वाजिद अली शाह के दरबारी कलाकार थे।

- **उस्ताद बहादुर हुसैन खां** – उस्ताद बहादुर हुसैन खां, प्यारे खां के भान्जे एवं दत्तक पुत्र थे। इनके मामा तथा धर्मपिता प्यारे खां ने इनको सुरसिंगार की शिक्षा दी। प्यारे खां ने ही सुरसिंगार नामक वाद्य का आविष्कार किया था। बहादुर हुसैन खां ने सैकडों तरानो एवं सरगमों की रचना की

थी। इनकी बहुत सी बन्दिशें, तराने तथा सरगमें प्रसिद्व हैं। ''सनदपिया'' के नाम से जो ठुमरिया मिलती हैं, वे बहादुर हुसैन खां की रचनाओं पर ही आधारित हैं।

रामपुर दरबार में आने से पूर्व बहादुर हुसैन खां वाजिद अली शाह के प्रिय कलाकार थे। वाजिद अली शाह ने खुश होकर इन्हें ''जियाउद्दौला'' की उपाधि से विभूषित किया था। नवाब कल्बे अली खां के छोटे भाई हैदर अली खां बहादुर हुसैन के प्रमुख शिष्य थे। यह महान विचारक, शायर, लेखक तथा सुरसिंगार–वादक थे। हैदर अली खां की तालीम पूर्ण हो जाने के पश्चात् बहादुर हुसैन खां ने स्वयं बजाना छोड़ दिया और कहां करते थे कि जिसे मेरी जवानी का सुरसिंगार सुनना हो, वह हैदर को सुन ले।

- **उस्ताद अमीर खां** – उमराव खां बीनकार के पुत्र थे तथा बहादुर हुसैन खां इनके ससुर थे। आप एक योग्य वीणावादक थे, किन्तु ध्रुवपद–गायन की ओर आपका ध्यान अधिक था। आपके एक मात्र पुत्र वजीर खां थे।
- **उस्ताद रहीम खां** – उमराव के पुत्र और अमीर खां के भाई थे। आपका जन्म बांदा में हुआ था। आपने संगीत की शिक्षा बहादुर हुसैन खां और अपने भाई अमीर खां से प्राप्त की थी। आप भी अपने भाई अमीर खां के समान ही एक उच्चकोटि के कलाकार थे। वास्तव में बहादुर हुसैन खां और अमीर खां ने ही रामपुर में रामपुर–सेनिये–परम्परा की आधारशिला रखी। इनकी ध्रुवपद शैली और इनके वाद संगीत की शैली की कुछ ऐसी विशेषताऐ थी, जो कि उनके संगीत में प्रत्यक्ष हो जाती थी। इनके संगीत की अद्भुत प्रेरणा ने रामपुर के संगीत को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया।
- **नबाब कल्बे अली खां** – यह नबाब युसूफ अली खां के ज्येष्ठ पुत्र थे तथा पिता के मृत्यु के पश्चात् 21 अप्रैल 1865 को रामपुर के नबाब बने। नबाब कल्वे अली खां एक शिक्षाविद् और अरबी एवं फारसी के विद्वान थे। इनके पिता के दरबार में बहादुर हुसैन खां, अमीर खां, रहीम खां जैसी कलाकार थे। रियासत का वातावरण संगीतमय था, जिससे नबाब कल्बे अली खां की रूचि बचपन से ही संगीत के प्रति हो गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने भी अपने पिता के समान संगीत के कलाकारों को आश्रय प्रदान किया।

नवाब कल्बे अली खां के दरबार में बाकर अली खां, नन्हें खां, हैदर बख्श सारंगीवाद, कुदऊसिंह पखावजी, मौधू खां, छिद्दा खां तबला वादक, काजिम अली खां, निसार अली खां, मुराद अली खां, रहीमउल्लाह खां, अजीमुल्लाह खां, मुन्दरू सारंगीवादक, अमीर अली शहनाईवादक तथा गायिकायें बन्दीजान कानपुर वाली, अमानीजान (ख्याल और टप्पा गाने वाली), जद्दी गायिका, मम्मी गायिका, अल्लाह रखी, अब्बासी, अजीजन, अलीजान, दरोगा महबूबजान और नन्नी कलकत्ते वाली आदि ने आश्रय लिया। बहादुर हुसैन खां और रहीम खां तो वहां पहले से ही थे।

- **पं0 कुदऊ सिंह पखावजी** – पं0 कुदऊ सिंह पखावजी का जन्म सन् 1812 में बांदा में हुआ था। यह सुप्रसिद्व मृदंगााचार्य ईश्वरी प्रसाद उर्फ गुप्ते के सुपुत्र थे। इन्होंने मृदंग की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता एवं दादा पं0 भवानी प्रसाद मृदंगाचार्य से प्राप्त की थी। इनकी अल्पायु में ही इनके पिता एवं दादा का स्वर्गवास हो जाने के कारण इन्होंने पखावज की शिक्षा अपने पूर्वजों की शिष्य–परम्परा के भवानीदीन उर्फ दासजी, केवलकृष्ण, हीरालाल तथा मदनमोहन से भी प्राप्त की। इन सभी में श्रेष्ठतम भवानीदीन थे, जिनसे कुदऊसिंह ने प्रमुख रुप से पखावज की शिक्षा प्राप्त की थी। काफी समय तक रामपुर–दरबार में रहे। कुछ समय वहां रहकर ये महारानी लक्ष्मीबाई के आश्रय में आ गये। महारानी लक्ष्मीबाई ने इन्हे अपना अंग–रक्षक बना लिया। एक बार शिकार के समय इन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई की शेर से रक्षा की थी, जिससे प्रसन्न होकर महारानी ने इन्हे ''सिंह'' की उपाधि दी थी। तभी से इन्हें कुदऊ प्रसाद से कुदऊसिंह कहा जाने लगा। अन्त में यह महारानी लक्ष्मीबाई के स्वर्गवास के पश्चात दतिया–दरबार के राजाश्रय में रहे और कई दिनों तक दतिया में ही रहे।

कुदऊसिंह ने अपने वंश में अपने भाई पं0 रामप्रसाद, भतीजे गया प्रसाद एवं पौत्र पद्श्री पं0 अयोध्या प्रसाद को सम्पूर्ण तालीम दी, जो कि आज तक इनके परिवार में चली आ रही है। सन् 1907 में 95 वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ। मौधू खां, उस्ताद छिद्दा खां, उस्ताद काजिम अली खां, उस्ताद निसार अली खां, अब्बासी, दरोगा महबूब जान और नन्नी कलकत्ते वाली आदि संगीत कलाकार रामपुर–दरबार के आश्रय में रहे।

- **नवाब हैदर अली खां** – नबाव यूसुफ अली खां के छोटे पुत्र और नवाब कल्बे अली खां के छोटे भाई थे। नवाब हैदर अली खां स्वयं अच्छे कवि, संगीतज्ञ और कहानीकार थे। इन्होंने संगीत की शिक्षा बहादुर हुसैन खां, सादिक अली खां एवं बासत खां से प्राप्त की थी। इन्होंने सुर–सिंगार की शिक्षा बहादुर हुसैन खां से प्राप्त की थी। अपने संगीत–प्रेम तथा अथक परिश्रम के फलस्वरुप नवाब हैदर अली खां भी अपने गुरुओं के समान ही सुरसिंगार तथा वीणा के निपुण कलाकार हो गये।

भातखण्डे जी के संगीत–गुरु वजीर खां नवाब हैदर अली खां के शिष्य थे। नवाब हैदर अली खां के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य इनके अपने ही पुत्र साहबजादा सआदत अली खां(छम्मन साहब) थे, जिन्होंने भातखण्डे जी को रामपुर–परम्परा के रहस्य समझाये। नवाब हैदर अली खां को संगीत सीखने के लिए अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय के उस्ताद अपनी संगीत–विद्या को अत्यन्त गोपनीय रखते थे और वे अपनी विद्या अपने पुत्र अथवा वंशज को ही सिखाते थे। वे हर किसी को यह विद्या आसानी से नहीं देते थे। नवाब हैदर अली खां ने अथक प्रयत्न से इन उस्तादों से संगीत की शिक्षा ग्रहण करके संगीत को सर्वसुलभ कर दिया। आपने अपनी सन्तान को भी संगीत–विद्या के प्रचार–प्रसार की प्रेरणा प्रदान की।

- **साहबजादा सआदत अली खां ''छम्मन साहब''** – नवाब हैदर अली खां के पुत्र साहबजादा सआदत अली खां ''छम्मन साहब'' उत्कृष्ट कलाकार थे। इनका जन्म सन् 1778 ई0 में हुआ था। नवाब हैदर अली खां ने इन्हें सुरसिंगार–वादन की शिक्षा प्रदान की थी। हैदर अली खां की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने उस्ताद बासत खां के पुत्र उस्ताद मुहम्मद अली खां से संगीत की शिक्षा ग्रहण की। ''छम्मन साहब'' एक कुशल रचनाकार भी थे। ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' में ''सादत'' नाम से अंकित रचनायें इन्हीं के द्वारा रचित हैं। इन्होंने ''फलसफ–ए–मूसिकी, रहनुमाऐं हारमोनियम संगीत ग्रन्थों की रचना की।

पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे के संगीत–उद्धार के भगीरथ–प्रयत्नों में छम्मन साहब का विशेष योगदान रहा था। पं0 भातखण्डे छम्मन साहब के मित्र और शिष्य दोनों ही थे। छम्मन साहब ने बड़ी उदारतापूर्वक अपनी चीजें व रागों के रूप भातखण्डे जी को सिखाये। छम्मन साहब के छोटे भाई अशफाक उल्ला खां उर्फ भाई जानी साहब भी संगीत प्रेमी व कलाकार थे। उन्होंने 'नगमातुल हिन्द' की रचना की।

- **भैया गनपतराव** – नवाब हैदर अली खां के शासनकाल में ग्वालियर–नरेश के पुत्र भैया गनपतराय अतिथि–कलाकार के रूप में रामपुर रिसायत में रहे थे। भैया गनपतराव स्वयं गुणी और उत्कृष्ट कोटि के हारमोनियम–वादक थे। इन्होंने संगीत की शिक्षा अनेक उस्तादों से ग्रहण की थी, जिनमें सितार–वादन की शिक्षा इन्होंने उस्ताद बन्दे अली खां से प्राप्त की थी। सितार की शिक्षा लेने के उपरान्त इन्होंने उस्ताद सादिक खां से ठुमरी एवं टप्पा–गायन की शिक्षा ली। ठुमरी के प्रसार में भैया गनपतराव की चर्चा न करना इस युग–पुरूष के प्रति कृतघ्नता ही होगी। भैया साहब ने अनेक ठुमरियां खुद भी बांधी। मशहूर और मारूक मौजउद्दीन खां साहब भैया गनपतराव के ही शिष्य थे। गौहरजान, बशीर खां, गफूर खां, बाबू श्यामलाल, सोनी बाबू और मीर साहब भी भैया साहब के ही शिष्य थे।

- **नवाब हामिद अली खां** – आप नवाब मुहम्मद मुश्ताक अली के पुत्र थे। इनका जन्म सन् 1875 ई0 में हुआ था। इनके पिता का 32 वर्ष की अल्पायु में ही देहावसान हो गया था। इस कारण इनका शासनकाल भी मात्र दो वर्ष की अल्पावधि का था। पिता की मृत्यु के पश्चात् मात्र 14 वर्ष की आयु में ही हामिद अली खां रामपुर के नवाब बने। इन्हें प्रारम्भ से ही संगीत के प्रति विशेष अनुराग था। संगीत–प्रेम इन्हें अपने पारिवारिक वातावरण से ही मिला हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने दादा नवाब हैदर अली खां से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। उस्ताद इनायत खां (डागर बन्धुओं के नाना) भी इनके गुरू थे। बाद में नवाब हामिद अली खां, उस्ताद वजीर खां और उस्ताद मुहम्मद अली खां के शिष्य बने। आप ध्रुवपद–गायन, पखावज, तबला एवं नृत्य में पूर्ण पारंगत थे।

पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे, उस्ताद मुश्ताक हुसैन खां, अच्छन महाराज तथा उस्ताद अजीम खां आदि सुप्रसिद्ध कलाकार नवाब हामिद अली के गण्डाबन्ध शिष्य थे। इनका दरबार विद्वान एवं गुणी कलाकारों का आश्रयस्थल था। इनके दरबार में **उस्ताद वजीर खां, उस्ताद हैदर खां, पं0 गया प्रसाद, अच्छन महाराज, लच्छु महाराज, उ0 मुहम्मद अली खां, पद्मश्री पं0 अयोध्या प्रसाद, उस्ताद फिदा हुसैन खां सरोदिये, उस्ताद अजीम खां, उस्ताद नत्थू खां, उस्ताद करीम सेन खां, उस्ताद बुन्दा खां, काले नजीर खां, वहीद खां, रजा हुसैन, गफूर खां तथा मुहम्मद हुसैन** आदि कलाकार थे।

- **नवाब रज़ा अली खां** – आप नवाब हामिद खां के पुत्र थे। नवाब रज़ा अली खां स्वयं भी एक संगीत प्रेमी नवाब थे। आपने अपने पिता नवाब हामिद अली खां के शासनकाल के कलाकारों के साथ ही साथ कुछ अन्य संगीतज्ञों को भी राजाश्रय प्रदान किया। इन्होंने ''संगीत–सागर'' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें संगीत सम्बन्धी चर्चा के साथ–साथ रस्मी गीतों को भी शामिल किया गया है।

नवाब हामिद अली खां के दरबार के गुणियों में से मुश्ताक हुसैन खां, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, पं0 अयोध्याप्रसाद तथा वहीद खां आदि नवाब रज़ा अली खां के दरबार में भी रहे। पटना के मुहम्मद रजा ने 'नगमाते आसफी' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने तत्कालीन राग–रागिनी पद्धति के चार मतों–शिवमत, कल्लिनाथ मत, भरत मत और हनुमान मत का खंडन किया और अपना एक नवीन मत छः राग छत्तीस रागिनियों का बनाया। उनकी पुस्तक की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें काफी थाट के स्थान पर बिलावल को शुद्ध थाट माना गया है। जयपुर के राजा प्रतापसिंह देव ने ''संगीत सार'' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने भी शुद्ध थाट बिलावल माना। कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग कल्पद्रुम' में उस समय के प्रचलित ध्रुपद, ख्याल आदि का संग्रह किया, किन्तु बिना स्वरलिपि के केवल शब्द बेकार हैं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत के कई ग्रंथ लिखे गये। बंगाल के सर एस0 एम0 टैगोर ने "The Universal History of Music" नामक ग्रंथ लिखा। इसी काल में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बंगाल के संगीत को एक नया रूप दिया। इसे रवीन्द्र संगीत कहा जाता हे। यह आज उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत की तरह एक भाग है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर बंगाल के एक प्रसिद्ध कवि थे एवं एक नाट्यकार, उपन्यासकार, संगीतकार, गायक, चित्रकार आदि थे। रवीन्द्र संगीत में पद, छंद, लय, ताल, राग, भाव, काव्य आदि का सुन्दर प्रयोग किया गया है। रवीन्द्र संगीत में शब्द तथा स्वर का ऐसा मेल हुआ है कि इस संगीत को अर्द्धनारीश्वर के रूप में देखा गया है। रवीन्द्र संगीत का आधार उत्तरी शास्त्रीय संगीत रहा है। रवीन्द्रनाथ ने ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, बाउल, भटियाली, कीर्तन आदि को मिलाकर यह संगीत बनाया। इसी आधार पर ध्रुपदांग, टप्पांग, ख्यालांग, कीर्तनांग आदि का वर्णन किया। रवीन्द्र नाथ जी शास्त्रीय संगीत के कठोर नियमों के विरोधी थे। उनके अनुसार नियम होने चाहिये परन्तु इतनी कठोरता से लागू करना ठीक नहीं है। इससे नई सृष्टि नहीं हो सकती। इसी आधार पर उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर संगीत की एक नई विधा की सृष्टि की। जिसे 'रवीन्द्र संगीत' के नाम से जाना जाता है। यह संगीत इतना लोकप्रिय हो गया कि इसका प्रसार पूरे देश तथा विदेशों में भी हुआ।

इसी काल में कैप्टन एन0ए0विलयर्ड ने A Treatise on the music of Hindustan नाम से पुस्तक लिखी। इन्हीं के अथक प्रयासों से कई यूरोपियनों ने भारतीय संगीत का अध्ययन किया तथा उसका प्रचार विदेशों में किया। इसी काल में घराना परम्परा का पूर्ण विकास हो चुका था, जिसके फायदे तथा नुकसान दोनों ही थे।

3.3.2 आधुनिक काल (1900 ई0 से वर्तमान तक) — उन्नीसवीं शताब्दी से इस काल का प्रारम्भ माना जाता है। इस काल में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो जाने से भारतवासी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में जकडे जा रहे थे। संगीत पर अशिक्षित वर्ग का पूर्ण अधिकार हो गया था। संगीत में विलासिता भी पूर्ण रुप से प्रवेश कर रही थी और संगीत समाज के निम्न वर्ग के व्यवसायिक लोगों के हाथ की कठपुतली बन कर रह गया था। संगीत को केवल विलासप्रियता का साधन मात्र समझा जाने लगा था। किन्तु ऐसी विषम परिस्थितियों में 19वीं शताब्दी के मध्य में ही संगीत—जगत में पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे तथा पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर दो महान् विभूतियों का पदार्पण हुआ।

- **पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर** का जन्म 18 अगस्त सन् 1872 में महाराष्ट्र में हुआ। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने जिस समय संगीत जगत् में पदार्पण किया तब संगीत व संगीतकारों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। शास्त्रीय संगीत का स्तर धीरे—धीरे गिरता चला जा रहा था। सभ्य वर्ग में संगीत वर्जित सा हो चुका था, ऐसे में पण्डित जी ने महसूस किया कि संगीत की और संगीतकारों को वह मान—सम्मान नहीं मिल रहा जिसके की वे अधिकारी हैं। तब उन्होंने संगीत का प्रचार—प्रसार समाज के सभी वर्गों में समान रूप से करने का निश्चय किया।

  सर्वप्रथम 5 मई 1901 ई0 को लाहौर में पं0 पलुस्कर ने 'गान्धर्व महाविद्यालय' की स्थापना की। इसके उपरान्त मुम्बई, दिल्ली, पटना आदि शहरों में भी 'गान्धर्व महाविद्यालय' स्थापित किये गये। पं0 पलुस्कर जी ने पाठ्य—पुस्तकों के अभाव की पूर्ति हेतु लगभग 60 पुस्तकों का प्रकाशन किया था। 'संगीत बाल—बोध (5 भागों में), राग—प्रवेश (20 भागों में), भजनामृत—लहरी (5 भागों में), स्वल्पालाप—गायन, संगीत—तत्व—दर्शक आदि उल्लेखनीय हैं। भक्ति रस का संचार करने हेतु मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास नामक आदि के भक्ति रस प्रधान पदों को बन्दिशों में संयोजित किया। संगीत को सुलभता प्रदान करने के लिए एक स्वरलिपि का भी निर्माण किया। उक्त स्वरलिपि पद्धति, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं वैदिक स्वरलिपि पद्धति दोनों के गुणों को लेकर ओतप्रोत थी। इस स्वरलिपि पद्धति से काफी हद तक भारतीय शास्त्रीय संगीत को संरक्षण मिला। पं0 दिगम्बर जी की स्वरलिपि पद्धति का प्रचार दक्षिण संगीत पद्धति में अत्यधिक है।

  पं0 पलुस्कर ने अनेक शिष्य भी तैयार किये जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास आदि आपके प्रमुख शिष्यों में से हैं। पं0 पलुस्कर और उनके शिष्यों ने जहॉ संगीत के कियात्मक पक्ष को बढ़ावा दिया वहॉ साथ ही साथ शास्त्र पक्ष को भी समाज में प्रवाहित करने का सफल एवं सतत् प्रयास किया। स्वयं पं0 जी ने कुछ सांगीतिक ग्रन्थों की रचना करके भारतीय शास्त्रीय संगीत को समृद्ध बनाने तथा उसके स्तर को ऊपर उठाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आपके शिष्य विनायक राव पटवर्धन जी ने 'नाट्य संगीत प्रकाश', 'महाराष्ट्र संगीत प्रकाश', 'राग विज्ञान', 'बाल—संगीत', 'माझे गुरू चरित्र' आदि कई पुस्तकें संगीत के शैक्षणिक दृष्टिकोण से लिखी और 1952 ई0 में विष्णु दिगम्बर संगीत विद्यालय की स्थापना की।

- **पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे** ने भी संगीत के प्रचार—प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अत्यन्त ही सरल एवं सुबोधगामी स्वरलिपि—पद्धति का आविष्कार किया, जो कि आज अत्यन्त लोकप्रिय है। उन्होंने लक्षण—गीत नामक नवीन गायन शैली की रचना की, जिसमें राग का नाम, स्वरूप, आरोह—अवरोह एवं जाति आदि अनेक विशेषताएं दी जाती हैं। पं0 भातखण्डे जी ने संगीत कला को शास्त्रीय आधार प्रदान करके उसे उच्चस्तरीय स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने विभिन्न घरानों

और प्रतिष्ठित गायकों को सुनकर, उनकी स्वरलिपि तैयार करके उसे उच्चस्तरीय रूप प्रदान किया। उसका संकलित रूप ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' के रूप में प्रकाशित कराया। उन्होंने मेल वर्गीकरण के स्थान पर थाट पद्धति विकसित करके नियमबद्ध प्रणाली से गायन वादन की प्रेरणा दी। उन्होंने संगीत शिक्षा प्रदान करने हेतु अनेक स्थानों पर संगीत–विद्यालयों की भी स्थापना की।

पं0 भातखण्डे द्वारा रचित स्वरलिपि इस समय में अत्याधिक प्रचलित है। संगीत के विद्यार्थियों के लिए तो यह पद्धति वरदान सिद्ध हुई है। उक्त स्वरलिपि के माध्यम से संगीत को जानना और समझना दोनों ही आसान हो गया। आज समस्त भारत में पं0 भातखण्डे द्वारा अविष्कृत ''स्वरलिपि पद्धति विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में प्रचलित हुई है। पं0 भातखण्डे जी ने ''थाट राग पद्वति'' का निर्माण किया। 72 थाटों में से दस थाट चुनकर, अव्यवस्थित रागों को स्थिरता प्रदान की। आज भी भातखण्डे जी की थाट पद्धति को ही प्राथमिकता मिल रही है। पं0 भातखण्डे ने ही संगीत को घरानों के संकुचित दायरों से बाहर निकाला और कई सांगतिक विद्यालयों की स्थापना की। लखनऊ में ''मैरिस म्यूजिक कालिज'' जो कि अब ''भातखण्डे संगीत संस्थान सम विश्वविद्यालय, लखनऊ' के नाम से प्रसिद्व है, कि स्थापना की। आपने ''माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर, भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ, बडौदा म्यूजिक कालेज की स्थापना की। पं0 जी ने संगीत के प्रचार–प्रसार हेतु कई जगह संगीत सम्मेलनों का आयोजन भी किया। सन 1916 में बडौदा की प्रथम अखिल भारतीय संगीत परिषद, दूसरी सन 1918 में दिल्ली में, तीसरी बनारस में 1919 में, चौथी 1924 तथा पॉचवी 1925 में लखनऊ में आयोजित की गयी। संगीत के उच्च कोटि के बडे–बडे विद्वानों व गुणी उस्तादों द्वारा गम्भीरतापूर्वक चर्चा व विचार विनिमय इन परिषदों में हुआ। भातखण्डे ने क्रमिक पुस्तक माला (6 भागों), भातखण्डे–संगीत–शास्त्र (4 भागों), लक्ष्य संगीत, अभिनव राग–मंजरी आदि ग्रन्थों की रचना की।

- **उस्ताद अलाउद्दीन खां** – उस्ताद अलाउददीन खां की संगीत क्षेत्र में महान देन है। आप को संगीत सीखने के लिए कई मुश्किलों का सामना करना पडा परन्तु इसमें आपकी जिज्ञासा कम नहीं हुई। आपने गायन और वादन दोनों में ही कुशलता प्राप्त की। आपको राष्ट्रपति की ओर से पद्म भूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपने संगीत के क्षेत्र मं उच्च कोटि के शिष्य तैयार किए जिनमें से पं0 रविशंकर, अन्नपूर्णा शंकर, उस्ताद अली अकबर खां, पं0 निखिल बैनर्जी का नाम उल्लेखनीय है।

- **पं0 ओंकारनाथ ठाकुर** – पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के सुयोग्य शिष्यों में पण्डित ओंकारनाथ जी ने संगीत जगत् पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। इनका गायन मनुष्य को ही नहीं अपितु वनस्पति को भी प्रभावित करता था। ठाकुर जी ने शास्त्रीय संगीत को जन–साधारण तक पहुँचाने के लिए अनेकानेक प्रयास किए। इनकी शिष्य परम्परा में जो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है– श्रीमती एन0 राजम, डॉ0 कुमारी प्रेमलता शर्मा, शिव कुमार शुक्ल, पं0 कुंजलाल, पं0 रत्न लाल, पं0 पन्ना लाल मदन, श्री बलवन्त राय पुरोहित, श्री बलवन्त राय भट्ट, मास्टर बसन्त, मनोहर लाल सहजपाल आदि।

पण्डित जी लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय के प्रधानाचार्य भी रहे हैं। आप कुछ समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस के प्राचार्य रहे। आपने आकाशवाणी के सलाहकार मण्डल के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। भारत जब स्वतन्त्र हुआ तब उसकी पहली प्रभात को आकाशवाणी पर वन्देमातरम् प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनकी उत्कृष्ट कला का ही प्रमाण है कि इनको अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया। ''कलकत्ता संस्कृत विद्यालय'' ने आपके गुणों का सम्मान करने के लिए ''संगीत मार्तण्ड'' की उपाधि प्रदान की। सन् 1930 में नेपाल नरेश ने आपको ''संगीत महामहोपाध्याय'' की उपाधि से विभूषित किया। 1940 में ''राजकीय संस्कृत महाविद्यालय'' द्वारा ''संस्कृत मार्तण्ड'' की उपाधि मिली। 1943 में काशी विश्वविद्यालय द्वारा ''संगीत सम्राट'' की उपाधि

मिली। 1955 में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर इन्हें राष्ट्रपति द्वारा ''पद्मश्री'' की उपाधि से विभूषित किया गया। आपको भारत सरकार द्वारा ''पद्मविभूषण'' की उपाधि देकर भी सम्मानित किया गया।

संगीत के प्रचार–प्रसार हेतु आपने ''कला संगीत भारती'' नामक संस्थान का गठन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा वाराणसी में किया। ''संगीत निकेतन संगीत शिक्षालय की स्थापना बम्बई में की। आज भी आपकी रिकार्डिग आकाशवाणी पर उपलब्ध है जो समय–सयम पर प्रसारित होती रहती है और जिससे वास्तव में सांगीतिक जिज्ञासु लाभान्वित हो रहे हैं।

राजा नवाब अली ने उर्दू भाषा में संगीत की सुन्दर पुस्तक 'मारिफुन्नगमात' लिखी। 1911 में वे भातखंडे के संपर्क में आए तथा भातखंडे के विचारों से प्रभावित हो कर पुस्तक लिखी। आपने संगीत सम्मेलनों का आयोजन कर सार्वजनिक उत्साह बढ़ाया। भारतीय संगीत से गंदगी तथा अशुद्धता को दूर करने में महत्वपूर्ण साथ दिया।

इसी समय में राजा भैया पूँछवाले एवं बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर एक प्रसिद्ध गायक हुए हैं। इन्होंने संगीत के उत्थान में कई कार्य किए। इसी काल में प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर तथा रामगोपाल हुए। दोनों ने नृत्य को नए–नए परिर्वतनों से विकसित किया। नृत्य को विदेशों तथा सर्वसाधारण में लोकप्रिय किया। इसी समय दक्षिण भारत में सेमनगुडी श्री निवास अय्यर हुए। आपने संगीत को विकसित किया तथा उसकी आत्मिक पृष्ठभूमि को उत्कृष्ट बनाया।

इसी काल में अब्दुल करीम खां हुए। आप प्रसिद्व गायक थे। आपने 'आर्य संगीत विद्या' की स्थापना 1913 में पूना में की। संगीत को लोकप्रिय हेतु अनेक संगीत समारोह किए तथा अनेक शिष्यों को संगीत सिखाया। इसी काल में प्रसिद्व सुरबहार वादक उ0 इनायत खॉ हुए। सुरबहार के साथ–साथ सितार, ध्रुपद, ख्याल, सारंगी आदि में भी प्रवीण थे। आपने सितार वाद्य को प्रमुख रूप से अपना कर उसे लोकप्रिय बनाया। नृत्य के क्षेत्र में श्रीमति इन्द्रानी रहमान (भरतनाट्यम) तथा अनुराधा गुहा (कत्थक) का काफी योगदान रहा है।

उस्ताद विलायत खॉ सितार वादक रहे हैं। आपने सितार वाद्य में नई–नई चीजों को सम्मिलित किया और उसे लोकप्रिय किया। सितार में गायकी अंग का आप आज प्रतिनिधित्व करते हैं। उ0 अली अकबर श्रेष्ठ सरोद वादक हैं। इसी समय में प्रसिद्ध शहनाई वादक उ0 बिस्मिल्लाह खॉ हुए हैं। इसके अतिरिक्त पं0 वी0 जी0 जोग (वायलिन वादक), उ0 बड़े गुलाम अली खॉ (गायक), रूक्मणि अरूंडेल (नृत्य), विनायक राव पटवर्धन (गायक) आदि कलाकार हुए जिन्होंने संगीत के विकास में योगदान किया। उ0 अलाउद्दीन खां सर्वाधिक प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। आपने ''मैहर बैंड'' की स्थापना की तथा वाद्य वृंद को एक नई दिशा दी, आपने अनेक शिष्य तैयार किए जो आज संगीत क चमकते सितारे हैं जैसे पं0 रविशंकर, उ0 अली अकबर खॉ, अन्नपूर्णा देवी आदि। पं0 रविशंकर सितार के श्रेष्ठ कलाकार हैं। आपने नृत्य, गायन, सितार सभी सीखे हैं। संगीत को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का श्रेय आपको जाता है। आपने नए–नए राग बनाए। आरकेस्ट्रा को भारतीय तथा पाश्चात्य वाद्यों से सजाया। पं0 सामता प्रसाद, पं0 किशन महाराज, उस्ताद अल्लारक्खा खां, उस्ताद ज़ाकिर हुसैन खां (तबला), नृत्यकार गोपीनाथ, नर्तकी मृणलिनी साराभाई आदि ने संगीत को विकसित किया।

दक्षिण में आर चन्द्रशेखरय्या, जा0 चन्नम्मा संगीतज्ञ हुए। इसके अतिरिक्त श्रीमती एम0एस0 सुबुलक्ष्मी ने संगीत को नया जीवन प्रदान किया।

भारतीय चित्रपट संगीत भी विकसित हुआ। कई संगीतकार इसमें सम्मिलित हुए। इनमें बंगाल के पंकज मलिक (संगीतज्ञ), गायक के0सी0डे0, गायिका कानन देवी, संगीतकार नौशाद, शंकर जयकिशन, नर्तक गोपीकृष्ण, लता मंगेशकर, गायिका सुरैया, नर्तकी सितारा देवी आदि। इन्होंने शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत, नृत्य आदि को जन साधारण में लोकप्रिय बनाया।

सरकार का ध्यान सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भारतीय संगीत के उन्नयन की ओर भी गया तथा दूसरी ओर स्वतंत्र संस्थाओं की ओर से भी इस दिशा में पर्याप्त प्रयास हुए। इन दोनों के प्रयासों

के फलस्वरूप समग्र भारत में संगीत उत्तरोत्तर उन्नति की दिशा में अग्रसर हैं इन प्रयासों को संक्षेप में हम निम्नवत् देख सकते हैं।

वर्तमान समय में संगीत का प्रचार–प्रसार प्रत्येक वर्ग में समान है। शिक्षण संस्थाओं में संगीत को एक विषय के रूप में पढ़ाए जाने, लागू करने और इस विषय को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देने हेतु सरकार द्वारा किए गए अनेक प्रयास प्रभावी सिद्ध हुए। शिक्षण संस्थाओं में इस विषय का समावेश होने से संगीत जिज्ञासुओं की गिनती बढ़ने लगी जिससे समाज के सभ्य वर्ग में भी संगीत के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ।

सन् 1952 ई0 में भारत सरकार ने संगीत कला को प्रोत्साहन करने हेतु राष्ट्रपति पदक प्रदान करने आरम्भ किए। सन् 1953 में 'संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना की तथा उसी क्रम में 1954 में 'ललित कला अकादमी' की स्थापना की। इन अकादमियों ने कलाकारों को उनकी कला का प्रदर्शन करने तथा समाज में यश कमाने का भी अवसर प्रदान किया। संगीत नाटक अकादमी समय–समय पर अनेक राष्ट्रीय स्तर के संगीत महोत्सवों का आयोजन करती रहती है। सरकार ने कलाकारों को मान–सम्मान प्रदान करने हेतु गत् वर्षों से अनेक पुरस्कार जैसे पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण, तानसेन अवार्ड आदि देने भी प्रारम्भ किए हैं। सरकार के अनेक प्रयत्नों के कारण ही भारतीय कलाकारों तथा विदेशी कलाकारों तथा विदेशी कलाकारों के साथ कला प्रदर्शन से अन्य देशों से सांस्कृतिक सम्बन्ध सुदृढ़ होना संभव हो पाया है। सन् 1980–81 में हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटकी संगीतकारों के एकत्रित रूप में कार्यक्रम हुए तथा इन कार्यक्रमों को दूरदर्शन द्वारा प्रसारित किया गया।

इस समय देश में संगीत प्रेमी समाज द्वारा स्थापित अनेक संगीत संस्थाएं हैं, जो अपने केन्द्रों के माध्यम से न केवल देश के कोने–कोने में अपितु विदेशों में भी शास्त्रीय संगीत की परीक्षा आयोजित करती है तथा क्रियात्मक संगीत–शिक्षण की व्यवस्था करती है। देश के कोने–कोने में पूर्व माध्यमिक से स्नातकोत्तर स्तर तक अनेक शिक्षण संस्थाएं हैं जो अपने पाठ्यक्रम में 'संगीत' विषय का समावेश कर एवं संगीत–शिक्षण–व्यवस्था कर शास्त्रीय संगीत का प्रचार–प्रसार कर रही हैं। आज देश में संगीत की अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है यथा 'संगीत' संगीत–कार्यालय, हाथरस, छायानट, संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ एवं 'संगीत–कला–विहार' मुम्बई से प्रकाशित आदि, जिनके माध्यम से देश में शास्त्रीय संगीत का प्रचार–प्रसार हो रहा है।

आज देश के कोने–कोने में अनेक प्रकाशन–संस्थाएं हैं जो संगीत–शास्त्र संबंधी ग्रन्थों का प्रकाशन कर शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में लगी हैं। संगीत पर केवल ग्रन्थ तथा पुस्तकें ही नहीं लिखी गयी हैं अपितु संगीत के विभिन्न पक्षों पर अन्य विषयों के समान पी–एच0डी0, डी0लिट्0 व स्तरीय शोध प्रबन्ध भी लिखे जा रहे हैं। जिससे संगीत की दिन प्रतिदिन उन्नति हो रही है।

संगीत के प्रचार एवं प्रसार में आकाशवाणी का विशेष योगदान रहा प्रत्येक वर्ष आकाशवाणी की ओर से संगीत प्रतियोगिता का आयोजन करके तथा कुशाग्र बुद्धि वाले नवविद्यार्थियों जो मासिक छात्रवृत्ति देकर आने वाली संगीतज्ञों की पीढ़ी को बहुत कुछ प्रोत्साहित कर रही है। आकाशवाणी के स्तर को उच्च करने के लिए उसमें भाग लेने वाले कलाकारों की ध्वनि–परीक्षा सरकार द्वारा नियुक्त संगीतज्ञों का विशेषज्ञ पैनल लेती है और कलाकारों की श्रेणी तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करती है। आकाशवाणी प्रतिवर्ष एक संगीत प्रतियोगिता और वृहद–संगीत सम्मेलन आयोजित करती है। सम्मेलन में संगीत सम्बन्धी विवादग्रस्त विषयों पर भी विचार–विमर्श होता है। 1953 में संगीत नाटक अकादमी स्थापित की गई और उच्च संगीत शिक्षा के लिए योग्य विद्यार्थियों को 300/– प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी गई। प्रति शनिवार को साढ़े नौ बजे रात्रि से ग्यारह बजे रात्रि तक शास्त्रीय संगीत के विभिन्न कार्यक्रम आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। विभिन्न केन्द्रों में गीत और भजन के रिकाड़ तैयार किये गये। दूसरी ओर चलचित्र संगीत ने शास्त्रीय संगीत का प्रचार तो नहीं किया, किन्तु भारत के प्रत्येक व्यक्ति के कानों में संगीत का थोड़ा अंश अवश्य पहुँचा दिया।

इस समय देश भर में अनेक संगीत संस्थायें हैं जो संगीत की शिक्षा दे रही हैं। जैसे प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, भातखण्डे संगीत कालेज लखनऊ, व्यास संगीत विद्यालय बम्बई, माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर आदि। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद, पटना, बनारस, कानपुर, नागपुर, काश्मीर, पंजाब, बड़ौदा विश्वविद्यालय में एम0ए0 के पाठ्यक्रम में संगीत का समावेश हो गया है। इधर संगीत की बहुत सी पुस्तकें शास्त्र और क्रियात्मक दोनों पर लिखी गई।

भारतीय संगीत की धाक विदेशों में जमाने के लिए उस्ताद विलायत खॉं, पं0 रविशंकर उस्ताद विलायत खॉं तथा अल्ला रक्खा खॉं का विशेष हाथ रहा है। इनके अतिरिक्त आधुनिक युग के कुछ संगीतज्ञों के नाम हैं सर्वश्री भीमसेन जोशी, पं0 निखिल बनर्जी, लालजी श्रीवास्तव, स्व0 गोपाल मिश्र, रघुनाथ सेठ, हरि प्रसार चौरसिया, शिव कुमार शर्मा, जाकिर हुसैन आदि। देश के बड़े–बड़े नगरों में प्रत्येक वर्ष उत्कृष्ट संगीत सम्मेलनों का आयोजन करना आवश्यक सा हो गया है। कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े–बड़े नगरों में एक वर्ष में कई–कई सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। जिनमें साधारण जनता भी सुगमता से प्रवेश पा लेती है। इसके अतिरिक्त संगीत शास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में भी कई अच्छे विद्वान खोजपूर्ण कार्य कर रहे हैं जिनमें विद्यार्थी शोधार्थी लाभान्वित हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त संगीत अब एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा है। संगीत विषय में एम0ए0 की कक्षाओं एवं विश्वविद्यालयों द्वारा कराये जा रहे शोध कार्यों ने भी भारतीय शास्त्रीय संगीत के स्तर को बढ़ाया है। अनेकों संगीत समारोह आयोजित किये जाते हैं, समय–समय पर संगीत विषय में सेमिनार होते रहते हैं जिससे शास्त्रीय संगीत को सर्वसाधारण तक पहुंचाया जा सकता है।

संगीत सम्मेलनों एवं सेमिनारों से संगीत के क्षेत्र को एक नई दिशा प्राप्त हुई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को जन साधारण तक पहॅुचाने में संगीत की मासिक, वार्षिक आदि पत्रिकाओं एवं आकाशवाणी ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है। यही कारण है कि भारतीय संगीत आधुनिक काल में भारत जीवन का आवश्यक अंग बन गया है। भविष्य में संगीत अपनी सभी विशेषताओं के साथ संसार का मार्गदर्शन करने में मदद करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भी सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढता प्रदान करने हेतु यूरोपीय एवं एशियाई देशों में सांस्कृतिक मण्डलों का आदान–प्रदान किया गया। राष्ट्रीय संगीत महोत्सव, नृत्य महोत्सव तथा संगीत सम्बन्धी गोष्ठियों का आयोजन केन्द्रीय, प्रान्तीय, सम्भागीय एवं मण्डलीय स्तरों पर होता रहता है।

संगीत के छात्रों को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा विविध छात्रवृतियॉं प्रदान की जाती हैं। प्रारम्भ से लेकर उच्च शिक्षा तक संगीत एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मलित हो चुका है। अनेक शिक्षण संस्थायें आज संगीत की शिक्षा प्रदान कर रही हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत के अन्तर्गत भजन, गीत व गजल आदि प्रसारित किये जाते हैं। आधुनिक युग में संगीत जनसाधारण के अत्यन्त निकट है। आज हमारा भारतीय संगीत पूर्णतः विकासोन्मुख है।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. भारतीय संगीत में आधुनिक कालीन संगीत को आप कितने भागों में बॉंट सकते हैं? स्वतन्त्र भारत में संगीत की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. भारतीय संगीत के इतिहास के आधुनिक काल की विशेषतओं का उल्लेख कीजिए।
3. पूर्व आधुनिक काल में भारतीय संगीत की क्या स्थिति थी? विस्तार पूर्वक समझाइये।
4. पं0 रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा भारतीय संगीत में किये गये योगदान को विस्तार पूर्वक समझाइये।
5. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर एवं पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संगीत की उन्नति के लिये किए गए प्रयासों की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।

6. रामपुर नवाबों के काल में भारतीय संगीत की क्या स्थिति थी? विस्तार से लिखिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आधुनिक काल का समय कब से कब जक माना जाता है? संक्षेप में समझाइये।
2. पूर्व आधुनिक कालीन संगीत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. रवीन्द्र संगीत से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताइये।
4. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा संगीत की उन्नति के लिये किये गये प्रयासों पर प्रकाश डालिये।
5. पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे का संगीत में क्या योगदान रहा?
6. स्वतन्त्र भारत में संगीत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

ग) एक शब्द में उत्तर कीजिए :–

1. आधुनिक काल का समय क्या है ?
2. पूर्व आधुनिक काल का समय क्या है ?
3. सुरसिंगार नामक वाद्य का आविष्कारक कौन है ?
4. पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने संगीत सम्बन्धी कौन–कौन सी पुस्तकें लिखीं ?
5. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का जन्म कब हुआ ?
6. आधुनिक काल में संगीत क विकास तथा प्रकार का श्रेय किन दो विभूतियों को जाता है ?
7. भरतनाट्यम नृत्य में आधुनिक काल की किन महिला कलाकार का योगदान रहा?

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. संगीत मार्तण्ड की उपाधि ....को दी गई।
2. बंगाल के सर एस0एम0टैगोर ने .... नामक ग्रन्थ लिखा।
3. उ0 इनायत खॉं प्रसिद्ध ....वादक थे।
4. कुमारी अनुराधा गुहा का .... नृत्य में काफी योगदान रहा।
5. नगमातुल हिन्द की रचना .... ने की।
6. गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना ....को .... में ....द्वारा की गई।
7. रवीन्द्र संगीत का आधार .... भारतीय संगीत रहा है।
8. राजा नबाब अली ने उर्दू भाषा में संगीत में संगीत की सुन्दर पुस्तक .... लिखी।
9. संगीत नाटक अकादमी की स्थापना सन् .... में की गई।

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

(1) राजा प्रताप सिंह द्वारा लिखित पुस्तक –
  (i) संगीत सार (ii) संगीत राग कल्पद्रुम
  (iii) नगमाते आसफी (iv) संगीत बाल बोध

(2) राग कल्पद्रुम पुस्तक के रचयिता –
  (i) पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे (ii) राजा प्रताप सिंह
  (iii) कृष्णानन्द व्यास (iv) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

(3) रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा संगीत को दिये गये नये रूप को कहते हैं –
  (i) पाश्चात्य संगीत (ii) हिन्दुस्तानी संगीत
  (iii) कर्नाटकी संगीत (iv) रवीन्द्र संगीत

(4) पं0 ओंमकार नाथ ठाकुर के गुरू थे –
(i) रवीन्द्र नाथ टैगोर (ii) पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे
(iii) कृष्णानन्द व्यास (iv) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

(5) 'आर्य संगीत विद्यालय' की स्थापना की –
(i) अब्दुल करीम खॉ (ii) राजा नबाव अली
(iii) विनायक राव पटवर्धन (iv) ओमकार नाथ ठाकुर

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के आधुनिक काल से परिचित हो चुके होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी व पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने अत्यन्त ही सरल एवं सुबोधगामी स्वरलिपि–पद्धति का आविष्कार किया, जो कि आज अत्यन्त लोकप्रिय है। उन्होंने लक्षण–गीत नामक नवीन गायन शैली की रचना की, उन्होंने मेल वर्गीकरण के स्थान पर थाट पद्धति विकसित करके नियमबद्ध प्रणाली से गायन वादन की प्रेरणा दी।
- आधुनिक काल के संगीत विद्वानों, उनके द्वारा रचित विभिन्न संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों व उनके भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण योगदान को।
- भारतीय सरकार ने संगीत को संरक्षण प्रदान किया। भारत सरकार ने संगीतकला को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु पद्मश्री, पदमभूषण एवं पदमविभूषण जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय पदक प्रदान करने आरम्भ किये।
- संगीत के छात्रों को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा विविध छात्रवृतियॉ प्रदान की जाती हैं।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) एक शब्द में उत्तर कीजिए :–

1. 1900 ई0 से वर्तमान तक 2. 1800 ई0 से 1900 ई0 3. प्यारे खॉ
4. कमिक पुस्तक मालिका(6 भागों), भातखण्डे–संगीत–शास्त्र (4 भागों), श्रीमल्लक्ष्य संगीत, अभिनव राग–मंजरी
5. 18 अगस्त 1872 6. पं0 भातखण्डे व पं0 पलुस्कर 7. श्रीमती इन्द्राणी रहमान

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. पं0 ओंमकारनाथ ठाकुर 2. The Universal History Of Music 3. सुरबहार
4. कत्थक 5. अश्फाक उल्ला 6. उत्तरी
7. 5 मई 1901, लाहौर, पं0 पलुस्कर 8. मारिफुन्नगमात 9. 1953

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. (i) संगीत सार 2. (iii) कृष्णानन्द व्यास 3. (iv) रवीन्द्र संगीत
4. (iv) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर 5. (i) अब्दुल करीम खॉ

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, *भारतीय संगीत का इतिहास,* मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, श्री शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास,* चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. वृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास,* वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, *आदिवासी संगीत,* मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, *प्राचीन भारत का इतिहास,* बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण,* टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, *प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक),* संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, *उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा,* रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. Bandopadhya Shripad, The Music of India, Tresure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
11. Eathel Rosenthal, The Story of Indian Music and its Instruments, Oriental Books, New Delhi.
12. Pingle B.A., History of Indian Music, Indological Book House, Delhi, 1985.
13. Deva B.C, Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

3.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास,* संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3,* संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध,* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक काल में भारतीय संगीत में हुए परिवर्तन पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई 1 – भारतीय संगीत वाद्यों का वर्गीकरण (विस्तृत अध्ययन)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वाद्यों की उत्पत्ति, उपयोगिता एवं विकास
1.4 वाद्यों का वर्गीकरण
 1.4.1 विभिन्न विद्वानों के अनुसार
 1.4.2 प्रयोग प्रधान वर्गीकरण
 1.4.3 तत् वाद्य
 1.4.4 अवनद्ध वाद्य
 1.4.5 सुषिर वाद्य
 1.4.6 घन वाद्य
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के तृतीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। आप भारतीय संगीत के इतिहास से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत वाद्यों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। भारतीय संगीत में वाद्यों का अनन्य स्थान है। पौराणिक काल से ही हमें अनेक प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः वाद्य, संगीत की भावात्मक अभिव्यक्ति का एक सुदृढ़ साधन मात्र है जो नादोत्पत्ति के कारण संगीतात्मक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। इस इकाई में भारतीय संगीत वाद्यों के वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत वाद्यों, उनके प्राचीन व आधुनिक स्वरूप, उपयोग, निर्माण सामग्री आदि को समझ सकेंगे। आप वाद्यों के महत्व को समझ कर उनका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- भारतीय संगीत में वाद्यों के महत्व को जान सकेंगे।
- भारतीय संगीत वाद्यों के वर्गीकरण को समझ कर इनमें तुलना कर सकेंगे।
- वाद्यों के उपयोग, स्वरूप, निर्माण सामग्री आदि विषयों से भी परिचित हो सकेंगे।

1.3 वाद्यों की उत्पत्ति, उपयोगिता एवं विकास

<u>उत्पत्ति</u> – भारतीय संगीत में वाद्यों का आविर्भाव कब, कैसे तथा कहाँ से हुआ, यह विषय हमारे वेदों तथा प्राचीन ग्रन्थों के काल, स्थान आदि की तरह अत्यन्त शोध के योग्य है। वाद्यों की उत्पत्ति भी गायन की तरह ही प्राचीन मानी गई है, जिसका ठीक–ठीक समय निर्धारण संभव नहीं है। अतएव भारतीय संगीत वाद्यों का प्रयोग गायन के साथ–साथ ही हुआ, ऐसा माना गया है। गायन के साथ ही वादन की क्रिया भी प्राचीन काल से ही समृद्ध रही है। प्राचीन ग्रन्थों में तथा अन्य स्त्रोतों से जो भी सूचना प्राप्त करने का प्रयास किया गया है उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि संगीत में वाद्यों का प्रयोग भी प्राचीन है।

जैसा कि हम अनुभव करते हैं संगीत स्वाभाविक है। प्राणी मात्र की विकास यात्रा को देखें तो आदि मानव भी अपने मनोभावों को, इच्छाओं आदि को व्यक्त करने की क्षमता रखता होगा, चाहे वह फिर इशारे से हो या अपने चेहरे के भावों से। कालान्तर में वह कंठ से आवाज निकाल कर या अपने आस–पास की वस्तुओं को पीटकर अपने भावों को व्यक्त करने लगा होगा। अर्थात् प्रारंभ से ही वह जो विचार मन में करता होगा, उसे व्यक्त करने के लिए वह ध्वनियों का प्रयोग करता होगा। फिर चाहे वह ध्वनि कण्ठ की हो या किसी अन्य वस्तु के आघात द्वारा उत्पन्न हो। इन ध्वनियों को प्रयोग में लाने के फलस्वरूप ही कण्ठ स्वर अथवा अन्य वस्तुओं के स्वर का महत्व अस्तित्व में आया होगा। जीवन–यात्रा के निरन्तर विकास से कण्ठ स्वर के साथ–साथ वाद्यों की ध्वनि भी प्रयुक्त हुई होगी। आज हम जो विविध प्रकार के वाद्य यंत्र देख रहे हैं उनकी उत्पत्ति विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के कारण हुई और सभ्यता के साथ ये वाद्य यंत्र विकसित हुए। समाज के विविध रूपों व मानव जाति की भावनाओं, हर्ष–विषाद आदि को व्यक्त करने के लिए इन वाद्य यंत्रों का निर्माण व विकास होता रहा है। वाद्यों के आकार–प्रकार तथा बनावट के आधार पर या उनसे निकलने वाली ध्वनियों के आधार पर वाद्यों को विविध वर्गों में रखने का विषय सामने आता है। ध्वनि, आघात से या हवा का दबाव उत्पन्न कर निकाली जाने पर भी वाद्यों के वर्गीकरण करने की बात पर विचार करने का प्रयास होता रहा है।

वाद्य शब्द की रचना वद् धातु से हुई है अर्थात वाणी। वाणी की पहुँच जहाँ न हो पाई वहाँ वाद्य का प्रयोग हुआ होगा। साधारणतः वाणी के अतिरिक्त, संदेश देने अथवा ध्यान आकृष्ट करने के लिए वाद्यों का प्रयोग आरंभ से किया गया होगा। इस सम्बन्ध में शंख, ढोल, नगाड़े आदि का प्रयोग कण्ठ या वाणी के स्थान पर होने लगा। हमारे यहाँ संगीत में उपयोग हेतु विभिन्न वाद्यों का प्रयोग मिलता है। प्राचीन ग्रन्थों में भगवान शिव का डमरू, सरस्वती की वीणा, कृष्ण की मुरली, नारद की वीणा आदि का प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है।

वाद्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई प्राचीन धार्मिक कथाएं व लोक गाथाएं भी प्रचलित हैं। एक लोक गाथा के अनुसार पृथ्वी पर उपस्थित दस कल्पवृक्षों में से एक तुर्याग द्वारा ही मनुष्य को चार प्रकार के वाद्य दिए गए। हमारे प्राचीन वाद्यों का निर्माण व नाम किसी ना किसी देवता से अवश्य जुड़ा हुआ मिलता है। एक धार्मिक कथानुसार दक्ष–यज्ञ विध्वंस के कारण उत्पन्न शिव के क्रोध शान्ति के लिए स्वाति, नारद आदि ऋषियों द्वारा वाद्यों का निर्माण किया गया। एक अन्य धार्मिक कथानुसार, शिव के नृत्य(त्रिपुरासुर विजय पर) के साथ संगत के लिए जिस अवनद्ध वाद्य का निर्माण ब्रह्मा द्वारा किया गया उसे मृदंग कहा गया। इसी तरह अन्य वाद्य भी देवी–देवताओं से सम्बन्धित माने गए हैं। प्राचीन काल के सभी वाद्य हमारे देवी–देवता तथा ऋषि–मुनियों की देन हैं या उन्हीं के द्वारा प्रयोग किए गए हैं। एक मान्यतानुसार तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर वाद्य गंधर्वों से, अवनद्ध वाद्य राक्षसों से तथा घन वाद्य किन्नरों से संबंधित माने गए हैं। पौराणिक मान्यता है कि यह चार प्रकार के वाद्य श्रीकृष्ण के अवतार के बाद पृथ्वी पर आए।

प्राचीन संस्कृत–साहित्य में वाद्य का विविध प्रकार से वर्णन मिलता है तथा संगीत यंत्रों के पर्याय के रूप में वाद्य, वादित्र व आतोद्य का उल्लेख मिलता है। भारतीय संगीत के मूल तत्वों में वाद्य–वादन कला पूर्ण रूप से परिलक्षित होती है। अर्थात् हमारे वाद्यों में कण्ठ संगीत की तरह शास्त्रीय संगीत के सभी गूढ़–तत्वों का समावेश है, चूँकि कण्ठ एक ऐसा यंत्र है जो ईश्वर निर्मित है और वाद्य मानवीय रचना के प्रतिफल हैं।

सभी पक्षों व विचारों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वाद्यों की उत्पत्ति प्राचीन काल में हो चुकी होगी। जहाँ से नैसर्गिक यंत्र या कण्ठ का प्रयोग संगीत में हुआ वहीं से वाद्यों की

उत्पत्ति भी मानी जा सकती है। पाश्चात्य विद्वान फ्रायड कहते हैं कि मनुष्य को जब आवश्यकता महसूस हुई होगी तब स्वयं ही उसने इनकी उत्पत्ति की होगी। कालान्तर में इन वाद्यों को आधार मानकर आवश्यकतानुसार नए वाद्यों का विकास हुआ।

उपयोगिता – संगीत सम्बन्धी किसी भी अनुष्ठान में वाद्यों का बहुत महत्व है। प्राचीन काल में शंख की ध्वनि एवं दुन्दुभी आदि वाद्यों के प्रयोग का वर्णन हमें प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। आज प्रायः शहनाई, दक्षिण भारत का नादेश्वरम तथा कई जगह तुरई आदि वाद्यों का प्रयोग हमें देखने को मिलता है। वाद्यों की प्राचीन बनावट व ध्वनि सम्बन्धी सुधार होने से आज प्राचीन वीणा को कई रूपों में देखा जा सकता है। यथा सुरबहार, सितार, दिलरूबा, सरोद आदि कई वाद्य आज प्रचलित हैं। मनीषियों द्वारा गायन के साथ सहयोग या संगत के रूप में इनकी उपयोगिता को समझते हुए इनकी संरचना में कई संशोधन व प्रयोग किए गए। कण्ठ संगीत अर्थात् गायन व नृत्य में वाद्यों की उपयोगिता या प्रयोग से इन विधाओं का आकर्षण व सौन्दर्य अधिक व पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है।

भारतीय संगीत का आरम्भ वैदिक काल से माना जा सकता है। इसी काल में वेदों की रचना हुई। ऋग्वेद की ऋचाओं गायन के लिए प्रयोग की जाती थी, जिन्हें साम कहा गया। इसी कारण सामवेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया तथा संगीत का उद्गम सामवेद से माना गया। इसे संगीत का प्रथम ग्रन्थ भी माना गया है। सामवेद में तीन स्वरों – उदात्त, स्वरित व अनुदात्त का प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल में संगीत की तीन महत्वपूर्ण इकाईयां थी – 1. मंत्रोच्चारण जिसमें स्वरों का प्रयोग होता था। 2. उन्नत वाद्य संगीत तथा 3. देवताओं की आराधना में नृत्य का समावेश। वैदिक काल में भी शंख, बांसुरी, वीणा, डमरू, दुदुंभि, मृदंग, ढोल आदि वाद्यों का प्रयोग होता था।

वादन करने वाले वाद्य विशेषज्ञ अपनी अन्तर्निहित कला की प्रायोगिकता से गायन तथा नृत्य का सौन्दर्यवर्द्धन करता है, जिससे कला–प्रदर्शन का ध्येय पूरा होता है। जहाँ तंत्र व सुषिर वाद्य अपनी स्वर प्रधान क्षमता को दर्शाता है वहीं अवनद्ध व घन वाद्य लय सीमा को बांध कर कला की अभिवृद्धि करता है। भरत का आतोद्य तंत्र, सुषिर, अवनद्ध व घन वाद्यों का परिचय देता है। सहस्त्रों वर्ष पूर्व से जहाँ गायन का महत्व है वहीं वाद्यों का महत्व भी कम नहीं है। अतः संगीत में वाद्यों की उपयोगिता निरन्तर महत्वपूर्ण रही है। गायन, वादन व नृत्य तीनों विधाएं वाद्याश्रित हैं। अतः इनकी उपयोगिता महत्वपूर्ण है।

विकास – प्राचीन काल से ही वाद्यों का प्रयोग, संगीत की गायन व नर्तन विधा को परिपूर्ण करने में सक्षम है। गायन व नर्तन की सफलता में वाद्यों की अत्यावश्यकीय सहकर्मिता रहती है। विद्वान संगीतज्ञों ने वाद्यों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर प्राचीन तंत्र वाद्यों, सुषिर वाद्यों एवं घन वाद्यों की सरंचना को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया ताकि गायन व नृत्य को और अधिक परिमार्जित व परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

संगीत का प्रचार–प्रसार अधिक होने पर वाद्यों की संख्या व क्षमता निरन्तर बढ़ती गई है। प्राचीन वाद्य रूद्र वीणा, जो शिव द्वारा निर्मित (प्राचीन मान्यता है कि शिव ने पार्वती की शयन मुद्रा को देखकर रूद्रवीणा का निर्माण किया) मानी गई है, का विकास हुआ। तत् वाद्यों के कई प्रकार जैसे – विचित्र वीणा, अन्य वीणा से निर्मित सुरबहार, सितार, सरोद, मोहनवीणा आदि प्रचलन में हैं। इसी प्रकार सुषिर वाद्यों में बाँसुरी, शहनाई, नादेश्वरम आदि वाद्य, अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, पखावज, तबला, नगाड़ा इत्यादि वाद्य तथा घन वाद्यों में देखने–सुनने को मिलते हैं।

उपरोक्त वाद्यों के विकास के साथ ही इनकी वादन शैली, तौर तरीके व बनावट में भी विकास हुआ। जो वाद्य बनावट व बजाने में क्लिष्ट रहे, उनका अभाव हो रहा है। उनके स्थान पर परिवर्तित नए वाद्यों को प्रचलन में लाया गया। वर्तमान में नए वाद्य तथा वादक कलाकार अधिक है। उदाहरणार्थ – रूद्रवीणा का निर्माण कम व सितार का निर्माण अधिक संख्या में हो रहा है तथा सितार वादकों की संख्या भी अधिक है। यही स्थिति पुराने सुषिर, अवनद्ध व घन वाद्यों की भी है।

वैदिक युग में वीणा के अनेक नाम प्रचार में थे जैसे 'महती, पिनाकी, कत्यायनी, रावणी, मत कोकिला–औदुम्बरी, घोषवती, सैरंध्री–जया–ज्येष्ठा, कच्छपी कुन्जिका आदि। उस समय तक वीणा

की बनावट, आकार—प्रकार, तन्त्रिकाओं की संख्या आदि के हिसाब से इसके अनेक प्रकार विकसित हो चुके थे। जैसे—शततंत्री वीणा, कांड वीणा, पिन्छोला, कर्कटिका, अलाबु, बक्री।'

यजुर्वेद कालीन यज्ञों में भी ऋग्वेद की तरह ही सामगान आवश्यक था। इस काल में हाथ से ताली देने का प्रचलन था। अथर्ववेद में वर्णित है कि 'काष्ठ से दुंदुभि का निर्माण किया जाता था तथा परिपक्व चर्म से उसका मुख बनाया जाता था। इसे चारों ओर से चमडे की बद्धियों से बांधा जाता था।

अथर्ववेद काल में 'नाराशंसी' गाथा के अलावा 'रैम्य' जैसे लौकिक (देशी) गीत प्रचार में आ चुके थे। 'हरिवंश पुराण में सात स्वरों, ग्राम रागों, तीन सप्तकों (मंद्र, मध्य, तार) मूर्च्छान, नृत्य, वीणा, दुर्दुर व पुण्कव वाद्यों का वर्णन है। ब्रह्म महापुराण में नृतकों के लिए 'कथक' शब्द का प्रयोग मिलता है।''

संगीत के लिए रामायण व महाभारत काल बहुत महत्वपूर्ण रहा है। रामायण काल को संगीत का स्वर्ण काल कहा जा सकता है क्योंकि इस काल में संगीत की सर्वव्यापकता थी। इस काल में रावण तथा महोदरी उत्कृष्ट संगीतज्ञों में से थे। इस काल में दोनों प्रकार की गायन शैलियॉ – साम (गांधर्व) व देशी (लौकिक), प्रचलित थी। रामायण में भेरी, घट, डिमडम, आदम्बर, दुंदभि तथा वीणा आदि का वर्णन मिलता है।

भेरी मृदंग वीणानां कोणसंघट्टितः पुनः
किमद्य शब्दों विरतः सदादीनगतिः पुराः।

इस काल में संगीतज्ञों के 'संघ' का भी उल्लेख मिलता है–

नटनर्तक सड.धाना गायकानां च गायताम्।
मन कर्ण सुखा वाचः शुश्राव जनतः तत्ः।। (अयोध्या काण्ड, सर्ग 6, श्लोक 14)

मृदंग के विकास की दृष्टि यह काल महत्वपूर्ण माना जाता है। इस काल में बहुत से वाद्यों(नये और पुराने) का उल्लेख मिलता है। महाभारत काल में एक महान वंशी वादक श्रीकृष्ण हुए हैं। इसी काल के अर्जुन, एक महान वीणा वादक थे। वाद्य यंत्रों के रूप में वेणु, मृदंग, शंख, झरझर, तुरी, भेरी, पुष्कर, घण्टा, नुपुर, पराह, दुंदुभि, विभिन्न संख्यक तंत्री युक्त वीणा इत्यादि वाद्यों का वर्णन मिलता है।

भरत, पाणिनी, पतंजलि, कौटिल्य, भास तथा शूद्रक ने उस समय के वाद्यों तथा उनकी वादन कला पर अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है। प्राचीन काल में वाद्यों के सामूहिक वादन को 'तूर्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। भरत कृत नाट्यशास्त्र में चारों प्रकार के वाद्यों का पूर्ण उल्लेख मिलता है। कालीदास के मेघदूतम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि काव्य ग्रन्थों में भी संगीत तथा वाद्य यंत्रों के बहुविध प्रयोगों का वर्णन प्राप्त होता है। बौद्ध व जैन काल में विभिन्न प्रकार की वीणाएं प्रचलित थी। जैसे वल्लकी, भामरी (भ्रमरी), षड्भामरी (षड्भ्मरी) और कच्चहनी (कच्छपी) तथा भंभा व डिंडिम जैसे अवनद्ध वाद्यों का भी प्रचार था।

महात्मा बुद्ध के जन्मोत्सव (ईसा से 563 वर्ष पूर्व) पर पॉच सौ वाद्यों का वाद्यवृन्द हुआ था। इस काल में संगीत की स्थिति का विवरण हमें चीनी यात्री फाह्यान के यात्रा विवरण, अशोक के शिलालेखों एवं अजन्ता के भिन्न चित्रों से प्राप्त होता है।

नाट्यशास्त्र के अध्याय 28 से 33 (कुल छः अध्याय) में संगीत का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। 28 वें अध्याय में वाद्यों के चार भेद, स्वर, श्रुति, ग्राम, मुर्छनायें, 18 जातियां और उनके ग्रह, अंश, न्यास इत्यादि का उल्लेख है। 29वें अध्याय में जातियों का रसानुकूल प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार की वीणाएं एवं उनकी वादन विधि का उल्लेख है। 30वें अध्याय में सुषिर वाद्यों का उल्लेख है। 31वें में कला, लय तथा विभिन्न तालों का वर्णन है। 32वें अध्याय में ध्रुव के पॉच भेद, छंद विधि तथा गायक एवं वादकों के गुण–अवगुण का उल्लेख हैं तथा 33वें अध्याय में अवनद्य वाद्यों की उत्पत्ति, भेद, वादन विधि, वादन की 18 जातियां एवं वादकों के लक्षणों का उल्लेख है।

सातवीं शताब्दी के नारद को विचित्र वीणा वादक एवं किन्नरी वीणा का अविष्कारक कहा जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों में वीणा के कई नामों का उल्लेख मिलता है तथा वाद्य यंत्रों में वीणा के कई प्रकार प्रचलित थे।

वैदिक काल में प्रचलित वीणा के नाम :–

1. **गौड़ ताल्लुक वीणा**
2. **काण्ड वीणा**
3. **अलाबु वीणा**
4. **पिछौरा वीणा आदि**

ईसा के 1000 वर्ष पूर्व की प्रचलित वीणा :–

1. **विपंची वीणा**
2. **चित्रा वीणा**
3. **गौण घोषिका वीणा**
4. **महती वीणा**
5. **नकुली वीणा**

मतंग से शारंगदेव से भरत के काल तक की वीणा :–

1. **किन्नरी महती वीणा**
2. **एकतंत्री वीणा**
3. **गौण नकुली वीणा**
4. **त्रितंत्री वीणा**
5. **सहतंत्री वीणा आदि**

इसी तरह उक्त वीणा के प्रकारों में परिवर्तन तथा परिष्करण होता रहा। विकास की गति निरन्तर चलती रही।

मध्ययुग में तंत्र वाद्यों का बहुत विकास हुआ। कई वीणाओं का आविष्कार हुआ तथा कुछ पुरानी वीणाओं में संशोधन(नया रूप दिया गया) हुआ। पं0 शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' में बहुत सी वीणाओं तथा अन्य वाद्यों का वर्णन है। संगीत रत्नाकर के काल से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक वाद्यों का विकास होता रहा और इस अवधि में रूद्रवीणा, रबाब तथा स्वर मंडल प्रमुख रूप से प्रचलित रहे। साथ ही त्रितन्त्री वीणा, पिनाकी वीणा, रावणास्त्र वीणा तथा सारंगी का भी प्रचलन रहा।

आधुनिक काल में संगीत और वाद्यों का विकास अलग प्रकार से हुआ। तत वाद्यों के विकसित रूप, जो वीणा से ही उत्पन्न माने गए, प्रचलित हैं। इसी प्रकार सुषिर तथा घन वाद्यों का भी विकास होता चला आ रहा है। इस काल में घरानों का जन्म हो चुका था तथा वाद्यों (सितार, वीणा, सरोद, बांसुरी, शहनाई, वायलिन, सन्तूर, सारंगी, तबला, पखावज, गिटार, विचित्र वीणा, हरमोनियम आदि) की स्वतंत्र वाद्य प्रणाली का आरम्भ हो चुका था व इनका विकास भी हुआ।

वाद्यों के विविध रूपों के विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इनके वर्गीकरण की अनिवार्यता का अनुभव होने पर, विद्वान संगीतज्ञों ने वाद्यों को वर्गीकृत किया।

1.4 वाद्यों का वर्गीकरण

<u>1.4.1 विभिन्न विद्वानों के अनुसार</u> – विभिन्न ग्रन्थकारों व विद्वानों ने अनेक प्रकार के वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं। किसी ने वाद्यों के तीन वर्ग, किसी ने चार वर्ग व किसी ने पांच वर्ग माने हैं। कोहल के मतानुसार ये पाँच हैं। यथा :–

पंचधा च चतुर्धा च त्रिविधं च मते मते।
कोहलस्य मते ख्यातं पंचधा वाद्यमेव च।। *(संगीत चूड़ामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ 69)*

नारद मुनि ने वाद्यों के तीन वर्ग माने हैं – आनद्ध, तत एवं घन। यथा :–
नारदमते चार्मणं तान्त्रिकं घनं त्रिधा वाद्यलक्षणम्।*(भरतकोष, द्र. संगीत चूड़ामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ 69)*

दत्तिल मुनि ने इनके चार वर्ग माने हैं – आनद्ध, तत्, घन व सुषिर। यथा :–
दत्तिलेन तु आनद्धं ततं घन सुषिर चेति चतुर्विध वाद्य कीर्तितम्।

महर्षि भरत ने भी इनके चार वर्ग माने हैं। यथा :—

भरतेन वाद्यं चतुर्विधं प्रोक्तम। *(द्र. संगीत चूड़ामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ 69)*

भरत कृत नाट्यशास्त्र में वाद्यों को आतोद्य कहा गया। आतोद्य के अन्तर्गत चार प्रकार के वाद्यों (तत्, सुषिर, अवनद्ध व घन) का विवरण मिलता है। उनके अनुसार —

ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।। नाट्यशास्त्र 28/1

इन चारों वाद्यों के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है —

ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।। नाट्यशास्त्र 28/2

अर्थात् तत—तंत्री वाद्य, अवनद्ध — पुष्कर वाद्य, घन — ताल वाद्य तथा सुषिर — वंशी वाद्य कहे जाते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार तत् व सुषिर वाद्यों का प्रयोग स्वर के लिए तथा अवनद्ध व घन वाद्यों का प्रयोग ताल के लिए किया जाता है।

भरत का वर्गीकरण वाद्य यंत्र की बनावट के आधार पर ना होकर वादन क्रिया पर आधारित है इसलिए यह वर्गीकरण मौलिक कहा जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन युग में विकसित वाद्यों के प्रकारों को देखते हुए महर्षि भरत का वर्गीकरण सर्वथा उचित तथा पर्याप्त प्रतीत होता हैं।

महर्षि वाल्मीकि तथा महाकवि कालीदास द्वारा वाद्यों के समूह के लिए तूर्य शब्द का प्रयोग किया है। महाभारत में भी तूर्य शब्द का उल्लेख अनेक वाद्यों के साथ बजने के सन्दर्भ में हुआ है। पाली, प्राकृत साहित्य में वृन्दवादन के ''तुरिया'' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

नारद कृत संगीत मकरन्द में उल्लिखित है :—

अनाहतः आहतश्चेति द्विविधो नादस्तत्र
सोऽप्याहतः पंचविधो नादस्तु परिकीर्तितः।
नखवायुजचर्माणि(चर्मण्य) लौहशारीरजास्तथा।। *(संगीत मकरन्दे, द्र. संगीत चूड़ामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ 69)*

अर्थात नाद के दो भेद हैं — अनाहत और आहत। जिसको हम सुन सकते हैं, व्यवहार में ला सकते हैं वह आहत नाद है। यह अपने पाँच ध्वनि—रूपों में प्रस्फुटित होता है जिन्हें हम संगीतात्मक ध्वनियाँ कहते हैं। ये संगीतात्मक ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज होती हैं। नखज वाद्यों की श्रेणी में वीणा आदि वाद्य आते हैं, वायुज की श्रेणी में वंशी आदि वाद्य, चर्मज की श्रेणी में मृदंग आदि वाद्य, लोहज की श्रेणी में मंजीरा आदि वाद्य तथा शरीरज की श्रेणी में कंठ ध्वनि आती है।

एकं ईश्वरनिर्मितं नैसर्गिकं अन्यच्चतुर्विधं मनुष्यनिर्मितं चेति पंचप्रकारा महावाद्यानाम। *(नारदीय शिक्षा, द्र. संगीत चूड़ामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ 69)*

अर्थात पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'पंचमहावाद्यानि' कहा गया है। इन पांच में से एक ईश्वर निर्मित है, जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव रचित हैं।

वाद्यों के वर्गीकरण के इतिहास को देखने पर पता चलता है कि उसमें दो मुख्य परिवर्तन हुए जिसे अनेक विद्वानों ने माना है। इसमें पहला है अवनद्ध के स्थान पर वितत का प्रयोग तथा दूसरा एक नवीन वर्गीकरण है जिसे ततानद्ध नाम दिया गया। तानसेन व उनके बाद के विद्वानों द्वारा वितत का काफी प्रचार हुआ है। तानसेन कृत संगीत सार में उनके वर्गीकरण (तत, वितत, घन व सुषिर) का कई जगह उल्लेख मिलता है :—

1. तत को पहिले कहत हैं वितत दूसरो जान।
   तीजो घन चौथे सिखर तानसेन परमान।।
   तार लगे सब साज के सो तत ही तुम मान।
   चरम मढ्यो जाको मुखर वितत सु कहे बखान।।

कंस ताल के आदि दै घन जिय जानहु मीत।
तानसेन संगीत रस बाजत सिखर पुनीत।।

2. नाद नगर बसायो सुरपति महल छायो उनचास
कोट तान अच्छर विश्राम पायो।
गीत छन्द तत वितत घन शिखर कंचन ताल के
किवाड़ आलाप ताली।
हीरा पै थाट नग लगे बरज जंजीर त्रेवट कुंजी
तामें ध्रुपद सो नग छिपायो।। *तानसेन कृत ''संगीत सार''*

उक्त उदाहरणों में से किसी में भी अवनद्ध का प्रयोग नहीं है। ***चरम मढ़्यो जाको मुखर वितत सु कहे बखान*** से भी यह स्पष्ट होता है कि तानसेन का वितत वाद्य, प्राचीन ग्रंथकारों का अवनद्ध, आनद्ध या नद्ध वाद्य ही है।

तानसेन से पूर्व के कवि जायसी ने पदमावत में भी अवनद्ध की जगह वितत का प्रयोग किया है। यथा :–

तत् वितत सिखर घन तारा।
पांचौ सबद होई झनकारा।।

उपरोक्त तथ्यों से यह बात पता चलती है कि पं0 शारंगदेव के बाद के विद्वानों ने वितत व सिखर शब्द का प्रयोग किया है।

इन वाद्यों के अतिरिक्त नए वाद्यों का भी प्रचलन शुरु हुआ तथा वाद्यों के निर्माण की प्रकिया आज तक जारी है। एक ही वर्ग के विभिन्न वाद्यों की वादन शैली भी भिन्न–भिन्न होती है। भरत ने वीणा वादन के सहायक आदि अन्य उपकरणों के प्रयोग के आधार पर चार भेद बताए हैं – 1. विस्तार 2. करण 3. आविद्ध तथा 4. व्यंजन। इन सभी भेदों के पुनः अनेक प्रकार बताए है। भरत ने नाट्यशास्त्र के 34वें अध्याय में वीणा के चार प्रकार दिए हैं तथा उनका वर्णन विभिन्न पक्षों से किया गया है – 1. चित्रा 2. विपच्चि 3. कच्छपी 4. घोषक। इन वीणाओं में तारों की संख्या अलग–अलग है। नाट्यशास्त्र के 30वें अध्याय में सुषिरातोद्य विधान है। हवा या फूॅक से बजने वाले वाद्यों का भी वर्णन किया गया है। वंशी को भरत ने वेणु वाद्य कहा है।

<u>1.4.2 प्रयोग प्रधान वर्गीकरण</u> – प्राचीन काल के ग्रन्थों में चतुर्विध वाद्यों का वर्गीकरण संगीत में प्रयोग के आधार पर भी प्राप्त होता है। संगीत रत्नाकर में वाद्यों के चार वर्ग इस प्रकार किए गए हैं :–

शुष्कं गीतानुगं नृत्यानुगमन्यद द्रयानुगम्।
चतुर्धेति मतं वाद्यं तत्र शुष्कं तदुच्यते।
यद्विना गीत नृत्ताभ्यां तद्गोष्टीत्युच्यते बुंधेः।।

1. **शुष्क** – जिसका वादन स्वतंत्र रूप से होता है।
2. **गीतानुग** – जो गायन में संगत के लिए प्रयुक्त होते हैं।
3. **नृत्यानुग** – जो नृत्य की संगत के लिए प्रयोग होता है।
4. **द्रैयानुग** – गायन तथा नृत्य दोनों की संगत के लिए।

सुषिर और तत वर्ग के वाद्य अधिकतर स्वरगत तथा अवनद्ध व घन वर्ग के वाद्य अधिकतर तालगत हैं। औभापतम् नामक संस्कृत ग्रंथ में वाद्यों को तीन वर्गों में रखा गया है –

1. **सजीव** – मानव कंठ
2. **निर्जीव** – यांत्रिक उपकरणों से ध्वनि उत्पन्न होती है।
3. **मिश्र** – मुख द्वारा या किसी उपकरण की सहायता से ध्वनि किए जाने वाले वाद्य।

1.4.3 तत् वाद्य – वे वाद्य जिनमें धातु की तारें लगी होती हैं तथा अंगुलियों या किसी अन्य वस्तु की सहायता से ध्वनि(नाद) उत्पन्न की जाती है, तत् वाद्य कहलाते हैं। तत वाद्यों के अनेक उपवर्ग भी हैं। वादन पद्धति के आधार पर इन्हें चार उपवर्गों में बांटा गया है :–

1. अंगुलियों से छेड़ कर बजाए जाने वाले वाद्य – जैसे तानपूरा, स्वर मण्डल आदि।
2. मिजराब (कोण या त्रिकोण), जवा आदि की सहायता से बजाए जाने वाले वाद्य – जैसे सितार, सरोद, तंजौरी वीणा, मोहन वीणा (गिटार), रूद्रवीणा आदि।
3. गज(बो) या कमानी की सहायता से बजाए जाने वाले वाद्य – जैसे वायलिन(बेला), सारंगी, इसराज, दिलरूबा आदि।
4. लकड़ी की सहायता(प्रहार कर) से बजाए जाने वाले वाद्य – जैसे सन्तूर, कानून आदि।

डॉ0 लालमणि मिश्र ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य में बनावट अथवा ढाँचे के आधार पर भी तत वाद्यों को वर्गीकृत किया है, जो निम्न है :–

1. **लम्बी गरदन वाले वाद्य** – इस वर्ग में सितार, इसराज, दिलरूबा, तम्बूरा, वीणा आदि वाद्य आते हैं।
2. **छोटी गरदन वाले वाद्य** – इस वर्ग में रावणहत्था, सारंगी आदि भारतीय तथा वायलिन, मेण्डोलिन आदि विदेशी वाद्य आते हैं।
3. **एक या दो तूम्बा युक्त वाद्य** – इस वर्ग में तंजौरी वीणा को छोड़कर सभी वीणाएँ, तम्बूरा, सितार आदि आते हैं।
4. **तबली के स्थान पर चमड़ा मढ़े हुए वाद्य** –इस वर्ग में सारंगी, दिलरूबा, सरोद, रबाब, इसराज आदि वाद्य रखे जा सकते हैं।
5. **ठोस सीधी अथवा घुमावदार लकडी से बने वाद्य** – इस वर्ग में कुछ प्राचीन वीणाएँ अथवा ईरानी एवं पश्चात्य हार्प आदि रखे जा सकते हैं।
6. **चपटे, पहलदार अथवा चौकोने सन्दूक की भाँति बने वाद्य** – इस वर्ग में सन्तूर तथा स्वरमण्डल आदि वाद्य रखे जा सकते हैं।

तानपुरा

सरोद

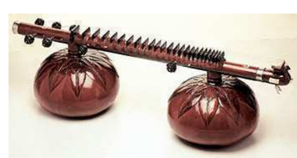
रुद्रवीणा

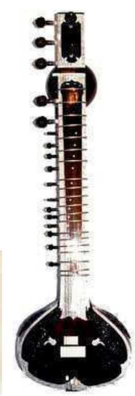
सितार

संतूर

सारंगी

सुरमंडल

इसराज

संगीत सागरिका में एक अन्य प्रकार से भी तत वाद्यों का वर्गीकरण दिया गया है। इसे आप निम्न चार्ट की सहायता से समझ सकते हैं।

<u>तत वाद्यों का वर्गीकरण</u>

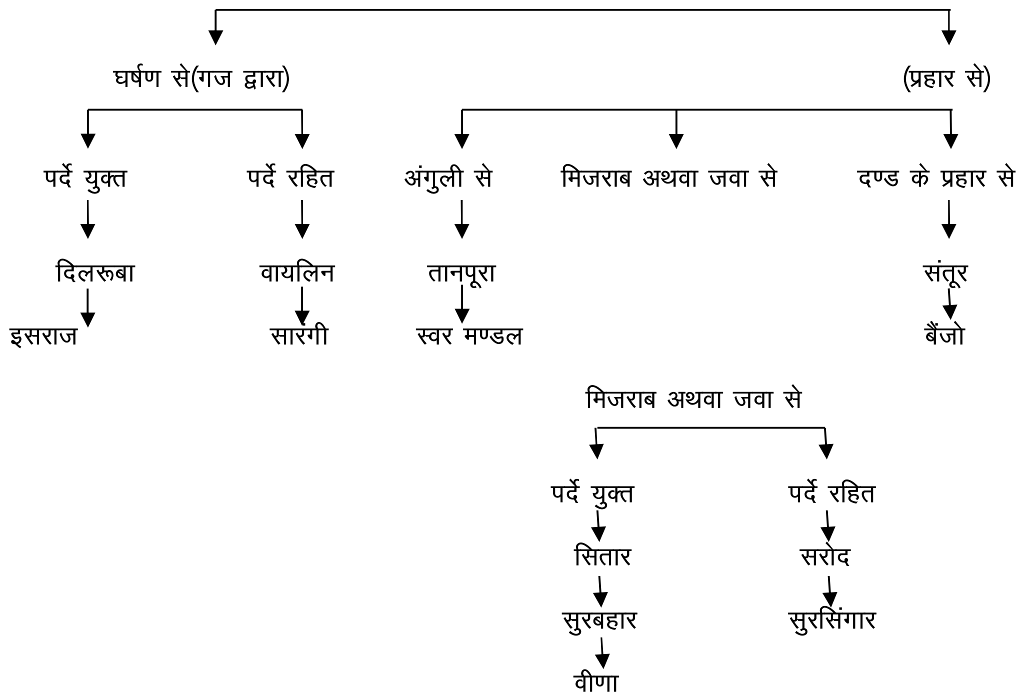

<u>1.4.4 अवनद्ध वाद्य</u> — वे वाद्य जो किसी धातु या लकड़ी के पात्र को चमड़े से मढ़ कर बनाए गए हों तथा हाथ या किसी अन्य वस्तु के आघात से ध्वनि(नाद) उत्पन्न हो, अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। वादन पद्धति के आधार पर अवनद्ध वाद्यों को पांच उपवर्गों में बांटा गया है :—

1. दोनों हाथो की उंगुलियों या पंजों से बजाए जाने वाले वाद्य — जैसे पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक, खोल, नाल, मादल आदि।
2. एक हाथ की अंगुलियों से बजाए जाने वाले वाद्य — जैसे हुडुक्का, खंजरी, ढपली आदि।
3. शंकु की सहायता से बजने वाले वाद्य — जैसे नगाड़ा, धौसा, दमामा आदि।
4. एक ओर डण्डी तथा दूसरी ओर हाथ से बजने वाले वाद्य — जैसे बड़ा ढोल, पटह आदि।
5. घुण्डी के प्रहार से बजने वाले वाद्य — जैसे डमरू, ढक्का आदि।

डॉ0 लालमणि मिश्र ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य में बनावट की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों को निम्न चार उपवर्गों में बांटा है :—

1. भीतर से खोखले तथा दोनों मुखों पर मढ़े हुए वाद्य। इन वाद्यों के पॉच रूप देखने को मिलते हैं।

i) **गोपुच्छा** — एक ओर बड़ा मुख दूसरी ओर छोटा मुख तथा बीच में उठा हुआ। भरतकालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक मृदंग को इसी रूप में लिया जा सकता है।

ii) **यवाकृति** — अपेक्षाकृत दोनों मुख छोटे तथा मध्य भाग उठा हुआ। आधुनिक खोल को इस रूप में लिया जा सकता है।

iii) **हरीतकी** — दोनों मुख लगभग समान तथा मध्य भाग भी समान। पंजाबी ढोलक, महाराष्ट्रीय ढोलक आदि का यही रूप प्रचलित है।

iv) **मध्यभाग और दोनों मुख समान** — यह वाद्य एक से दो फुट या उससे भी अधिक व्यास के वृत्ताकार होते हैं। इस वर्ग में ढोल, ढाक तथा पाश्चात्य साइड ड्रम आदि आते हैं।

v) **दोनों मुख समान किन्तु मध्य भाग भीतर धंसा हुआ** – इस वर्ग में डमरू, हुडुक आदि आते हैं।

2. दूसरे उपवर्ग के वाद्य भीतर से खोखले होते हैं किन्तु यह एक मुखी होते हैं और इनका दूसरा छोर बन्द होता है। इन्हें मुख्यतः तीन उपभेदों में रखा जा सकता है :–

i) **अर्ध गोपुच्छा** – इस प्रकार के वाद्यों के मुख का वृत्त जितना होता है उससे दूसरे छोर का वृत्त अधिक होता है। इस वर्ग में तबले का दाहिना भाग तथा घट आदि रखे जा सकते है।

ii) **अर्ध यवाकृति** – इस वर्ग के वाद्यों का मुख बड़ा होता है तथा इनका दूसरा छोर कुछ नुकीला होता है। नक्कारा, नगड़िया आदि इसी के उपभेद हैं।

iii) **अर्ध हरीतकी** – इस वर्ग के वाद्यों का मुख बड़ा होता है साथ ही दूसरा छोर जो बन्द होता है, वह नुकीला न होकर कुछ गोलाई लिए होता है। तबले का बॉया भाग इसी का उपभेद है।

3. भीतर से खोखले दोनों मुखों पर मढ़े हुए तथा एक मुख पर मढ़े हुए तथा दूसरे मुख पर बन्द वाद्यों के रूप, ऊपर बताए जा चुके हैं। इनका तीसरा रूप वह है जो भीतर से खोखले व दो मुखी होते हैं किन्तु एक ही मुख मढ़ा जाता है। दूसरा मुख खुला रहता है। ऐसे वाद्यों का प्रचार अफ्रीका तथा पाश्चात्य देशों में देखा जाता है। भारतीय सुगम संगीत में प्रचलित कांगों, बांगो आदि वाद्य इसी श्रेणी में आते हैं।

4. लकड़ी की चार से छह अंगुल तक चौड़ी पट्टी में जो गोला, पहलदार अथवा किसी अन्य आकृति का छोटा सा घेरा बनाती है, उसी में एक ओर चमड़ा मढ़ा रहता है। इस वर्ग में अनेक वाद्य हैं जैसे डफ, चंग, डफला, खंजरी, करचक्र, गंजीरा आदि।

तबला पखावज ढोलक डमरू नगाडा

संगीत सागरिका में एक अन्य प्रकार से भी अवनद्ध वाद्यों का वर्गीकरण दिया है। इसे आप निम्न चार्ट की सहायता से समझ सकते हैं।

<u>अवनद्ध वाद्यों का वर्गीकरण</u>

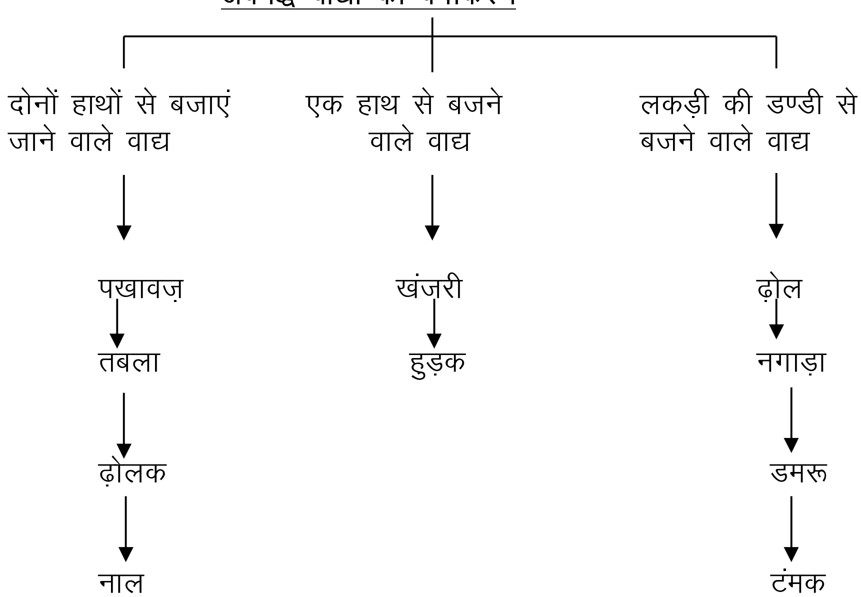

<u>बनावट के आधार पर वर्गीकरण</u>

- एक ओर चमड़े से मढ़े हुए तथा दूसरी ओर से बन्द मुख वाले वाद्य → तबला, नगाड़ा
- एक ओर चमड़े से मढ़े हुए तथा दूसरी ओर से खुले मुख वाले वाद्य → खंजरी, तासा, ढफाल, कौगों
- दोनों ओर चमड़े से मढ़े हुए वाद्य → ढोलक, नाल, पखावज, डमरु, ढोल

1.4.5 सुषिर वाद्य – सुषिर वाद्यों का वादन प्रायः मुख से वायु फूँककर किया जाता है। इस प्रकार के वाद्यों में कुछ छेद बने होते हैं, जिनमें वायु के प्रवेश, निकास से ध्वनि उत्पन्न होती है। सुषिर वाद्य बॉस, हाथी दांत, लोहे, काँसे आदि से बनाए जाते हैं। भरतकालीन वाद्यवृन्द में वंशी का प्रमुख स्थान था। यह अंग वाद्य माना जाता था। भरत के अनुसार विद्वज्जन को बाँस से निर्मित या रन्ध्र युक्त वाद्य जिसकी स्वर ग्राम आदि में होने वाली विधियाँ वीणा के समान होती हैं, इनको सुषिर वाद्य समझना चाहिए।

वादन पद्धति के आधार पर सुषिर वाद्यों को दो उपवर्गों में बांटा गया है :–

1. ऐसे वाद्य जो मुँह से फूँककर बजाए जाए – जैसे वंशी, मुरली, पाविका, पुंगी, शहनाई, नागस्वरम् आदि।
2. किसी अन्य साधन(कृत्रिम) जैसे धमनी से वायु द्वारा ध्वनि उत्पन्न करके बजाए जाने वाले वाद्य – जैसे हारमोनियम, स्वरपेटी आदि।

डॉ0 लालमणि मिश्र ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य में बनावट की दृष्टि से सुषिर वाद्यों को छः उपवर्गों में बाँटा है –

i) **सादे बने हुए वाद्य** – इन वाद्यों में फूॅक के लिए एक छिद्र होता है तथा स्वरों के लिए जो छिद्र होते हैं उन्हें खोलने तथा बन्द करने की क्रिया अंगुली के पोरों से की जाती है। उदाहरणतः मुरली, वंशी, पाविका आदि।

ii) **पत्तीदार सादे वाद्य** – इस वाद्यों में फूॅक के स्थान पर एक विशेष प्रकार की बनी हुई पत्ती लगाकर फूॅकते हैं किन्तु स्वरों के छिद्रों का सीधा संबंध उंगली के पोरों से होता है। जैसे शहनाई, नागस्वरम् आदि।

iii) **पत्तीदार तथा चाभीदार वाद्य** – इस वर्ग के वाद्यों में फूॅक के स्थान पर पत्ती तथा स्वरों छिद्रों को खोलने व बन्द करने के लिए चाभियाँ लगी होती हैं। जैसे क्लेरनेट, सेक्सोफोन आदि।

iv) फूँकने वाला मुख सामान्य किन्तु दूसरी ओर का मुख फूलदार अर्थात बाहर की ओर फैला हुआ। जैसे शहनाई, नागस्वरम् आदि।

v) **घुमावदार बने हुए** – इस वर्ग में अधिकांशतः पीतल के बने हुए वे वाद्य आते हैं जिनका अधिकांश उपयोग बैण्ड में होता है। ट्रम्पेट आदि इसी वर्ग के वाद्य हैं।

vi) **रीड लगे हुए वाद्य** – इस वर्ग में वे सभी वाद्य आते हैं जिनमें एक–एक स्वर के लिए पीतल अथवा किसी अन्य घातु के अलग–अलग रीड बनाकर क्रमानुसार लगा दिए जाते हैं। इस वर्ग में हारमोनियम, हारमोनिका, स्वरपेटी आदि वाद्य आते हैं।

शहनाई

बांसुरी

हारमोनियम

<u>1.4.6 घन वाद्य</u> — ऐसे वाद्य जो ठोस धातु के बने हाते हैं तथा जिन्हें आपस में टकराकर घ्वनि उत्पन्न की जाती है, घन वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। वादन पद्धति के आधार पर घन वाद्यों को मुख्यतः तीन उपवर्गों में बांटा गया है —

1. एक समान दो हिस्सों को आपस में टकराकर बजने वाले वाद्य — जैसे झाँझ, मंजीरा, कठताल क्रमिका आदि।
2. किसी वस्तु (जैसे डण्डी, लकड़ी या किसी अन्य मुलायम वस्तु से बनी हथौड़ी) के प्रहार से बजाए जाने वाले वाद्य — जैसे घण्टा, जयघण्टा, विजयघण्ट, गाँग, गेमलन, बड़ी झाँझ आदि आते हैं।
3. हाथ से हिलाकर बजाए जाने वाले वाद्य। इसमें ऐसे वाद्य आते हैं जिनमें किसी पदार्थ के खोखले आकार के अंदर कंकड़ आदि भरा रहता है। जैसे झुनझुना, रम्भा आदि।

घन वाद्यों की बनावट के आधार पर अनेक भेद संभव हैं किन्तु अभी तक किसी के द्वारा इनके उपवर्ग बनाना संभव नहीं हो सका है।

जलतरंग

मंजीरा

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

1. पं0 शारंगदेव के बाद के विद्वानों ने .... के स्थान पर वितत शब्द का प्रयोग किया है।
2. प्राचीनकाल में वाद्य के..पर्याय मिलते हैं।
3. भरत ने वंशी को .... वाद्य कहा है।
4. नाट्यशास्त्र का .... अध्याय सुषिर वाद्यों से सम्बन्धित हैं।

ख) सत्य/असत्य बताइए :—

1. प्राचीन मान्यता के अनुसार शिव जी ने पार्वती की शयन मुद्रा को देखकर रुद्रवीणा बनाई।
2. सामवेद में दो स्वरों का प्रयोग होता था।
3. भरत ने वाद्यों के तीन प्रकार माने हैं।
4. नाद के दो भेद हैं।

ग) एक शब्द में उत्तर दीजिए :—

1. नाट्यशास्त्र के कितने अध्याय संगीत से सम्बन्धित हैं?
2. पाली साहित्य में वृन्दवादन के लिए कौन सा शब्द प्रयुक्त हुआ है?
3. सितार, सरोद व वायलिन किस श्रेणी के वाद्य हैं?

4. संगीत रत्नाकर में वाद्यों के कितने वर्ग बताए गए हैं?

घ) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. तत् वाद्यों का वर्णन कीजिए।
2. अवनद्ध वाद्यों पर प्रकाश डालिए।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत वाद्यों व उनके वर्गीकरण से परिचित हो चुके होंगे। वस्तुतः वाद्य, संगीत की भावात्मक अभिव्यक्ति का एक सुदृढ़ साधन मात्र है जो नादोत्पत्ति के कारण संगीतात्मक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। प्राचीन काल में वाद्यों को चार वर्गों में बांटा गया। वास्तव में मध्यकाल से ही इतने नए वाद्यों का नए–नए रूपों में अविष्कार हुआ है कि उनका वर्गीकरण एक कठिन समस्या बन गई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत वाद्यों के विषय में समझ चुके होंगे। आप वाद्यों के महत्व को समझ कर उनका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.6 शब्दावली

1. **उपांग** – अंग के सहायक (मुख्य शरीर के अन्य छोटे हिस्से)।
2. **नैसर्गिक** – जो मानव निर्मित नहीं है, ।
3. **पाली, प्राकृत** – संस्कृत ग्रन्थों में ग्रामीण अपभ्रंश शब्दों की भाषा पाली, प्राकृत भाषा बौद्ध ग्रंथों में प्रयोग की गई है।
4. **गोपुच्छ** – गाय की पूँछ के समान।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. अवनद्ध 2. तीन(वाद्य, वादित्र व अतोद्य) 3. वेणु वाद्य 4. 30वां

ख) सत्य/असत्य बताइए :–

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य

ग) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. छः 2. तुरिया 3. तत् वाद्य 4. चार(शुष्क, गीतानुग, नृत्यानुग व द्रैयानुग)

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भरत, *नाट्यशास्त्र(अनु0–श्री बाबू शुक्ल शास्त्री),* चौखम्बा पब्लिकेशन, वाराणसी, उ0प्र0।
2. मिश्र, डॉ0 लालमणि, *भारतीय संगीत वाद्य,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
3. बृहस्पति, आचार्य, भरत का संगीत सिद्धान्त।
4. कसेल, डॉ0 नवजोत कौर, *तत् वाद्यों की जननी वीणा,* निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. बंसल, डॉ0 परमानन्द, *संगीत सागरिका,* प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय संगीत में वाद्यों की उत्पत्ति, उपयोगिता एवं विकास पर प्रकाश डालिए।
2. वाद्यों के वर्गीकरण की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 – ध्वनि का विज्ञान एवं महत्त्व

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ध्वनि की उत्पत्ति एवं विज्ञान
2.4 तरंग या कम्पन
2.5 ध्वनि के विविध रूप
2.6 सारांश
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के इतिहास व भारतीय संगीत वाद्यों से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में ध्वनि के विज्ञान एवं महत्व की विस्तृत व्याख्या की गई है। ध्वनि किन कारणों से उत्पन्न होती है, किस प्रकार हमें सुनाई देती है, ये सारी प्रक्रिया विज्ञान के अनुसार कैसे होती है तथा ध्वनि की विभिन्न अवस्थाओं और उनका श्रोता के मस्तिष्क में प्रभाव और अनुभव इत्यादि के बारे में इस इकाई में बताया गया है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ध्वनि के सभी पहलुओं से परिचित हो सकेंगे। आप ध्वनि के वैज्ञानिक महत्त्व को भी जान सकेंगे। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ध्वनि को 'नाद' कहा है। कोई आवाज या ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है, वह किस माध्यम से हमारे (कान) श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचती है और हम विज्ञान के अनुसार कैसे ध्वनि को सुनते हैं आदि बातें आप इस इकाई के माध्यम से जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- जान सकेंगे कि ध्वनि क्या होती है व कैसे उत्पन्न होती है?
- ध्वनि को वैज्ञानिक दृष्टि से समझ सकेंगे।
- ध्वनि के विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे।
- जान सकेंगे कि संगीत में किन–किन ध्वनि प्रकारों का प्रयोग होता है व इनका कितना महत्व है।

2.3 ध्वनि की उत्पत्ति एवं विज्ञान

ध्वनि और विज्ञान की परिभाषा में वह भौतिक ध्वनि आती है जो किसी द्रव्य में उत्पन्न होती है, किसी भौतिक माध्यम से होते हुए हमारे कानों तक पहुॅचती है और ज्ञान तन्तुओं को छेड़ती है जिससे मस्तिष्क उसका अनुभव करता है। दैनिक अनुभव में जब हम धातु के बर्तन में चोट या आघात करते हैं तो ध्वनि उत्पन्न होती है। यह अनुमान लगाना सरल है कि धातु का बर्तन कंपन करता है जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। किसी वाद्य जैसे सितार या तानपुरे के तार को छेडने से उसमें कम्पन उन्पन्न होता है, आघात करने से ढोल, तबला आदि पर कम्पन होता है और जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह ध्वनि हमारे कानों तक पहुॅचती है।

भौतिक विज्ञान के अनुसार किसी द्रव्य या पदार्थ के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। अतः हम किसी आघात द्वारा ही धातु या अन्य वस्तु पर कम्पन करते हैं और ध्वनि उत्पन्न होती है। तानपुरे के तार, सितार के तारों को छेड़ने या आघात करने पर या ढोल, तबला आदि पर हाथ या अन्य किसी वस्तु के आघात करने पर उस भौतिक पदार्थ में कम्पन होता है फलतः ध्वनि उत्पन्न होती है। बादलों के टकराने पर ध्वनि, पानी का उॅचाई से गिरने से ध्वनि आदि ध्वनि उत्पन्न करने के कारण है। इसी प्रकार जब हम बोलते हैं और गाते है तो विज्ञान के अनुसार– हमारे फेफडों से वायु निकलकर हमारे कंठ से स्वर यंत्र से टकरा कर ध्वनि उत्पन्न करती है। हमारे गले में या कंठ में जो स्वर यंत्र स्थित है उसके विभिन्न अंगों या मांसपेशियों के संकुचन व प्रसार क्रिया से हम विभिन्न प्रकार की ध्वनियॉ उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। इन विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करने में हमारे मुख होंठ, दॉत, तालु, जीभ व स्वर यंत्र की सूक्ष्म तंत्रियॉ, कम्पन के द्वारा ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इन अंगों में कम्पन वायु द्वारा किया जाता है। अर्थात् वायु के आघात से स्वर यंत्र कम्पित होता है। पुनः हमारे कंण्ठ व मुख के विभिन्न अंगों के प्रभाव से यथोचित ध्वनि उत्पन्न होती है।

ध्वनि अनुभव अथवा ध्वनि का श्रवण – हमने यह जाना कि ध्वनि कैसे उत्पन्न होती हैं। अब प्रश्न उठता है कि जो ध्वनि हम सुनते हैं इसकी वैज्ञानिक प्रकिया क्या है। किसी भी ध्वनि के उत्पन्न होने के बाद कम्पन किस माध्यम से हमारे कानों तक पहुॅचती है, इस वैज्ञानिक विचार को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं। किसी भी कम्पन से उसके आस–पास हलचल होती है। जो तरंग का रूप धारण कर आगे बड़ती है।

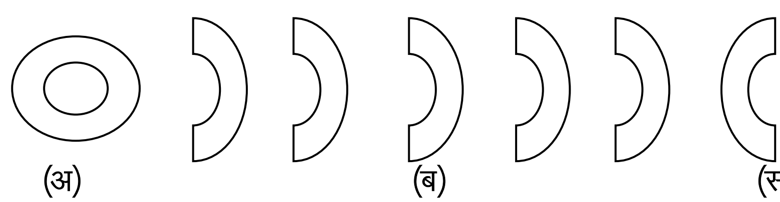

चित्र में (अ) ध्वनि –उत्पादक, (ब) – माध्यम व (स) – कर्णेन्द्रिय है। ध्वनि उत्पन्न होकर माध्यम (ब) में तंरग के आकार में, (स) कान तक पहॅचती है। यह ध्वनि हमारे कान की बनावट में सूक्ष्म ज्ञानिन्द्रियों द्वारा मस्तिष्क तक पहुॅचती है औंर हमें उस ध्वनि का अनुभव होता है। ध्वनि की तीव्रता, ध्वनि उत्पादक व माध्यम पर निर्भर करती है। (कान का चित्र)

ध्वनि का विज्ञान – भौतिक शास्त्र के अनुसार किसी भी द्रव्य, साधारण भाषा में वस्तु से ध्वनि तब उत्पन्न होती है जब उसमे कम्पन होता है। कम्पन होने से वस्तु के आस पास के वातावरण या माध्यम में तरंग पैदा होती है और तरंग आगे बढती है और हमें ध्वनि सुनाई देती है। जो तरंग वस्तु के कम्पन से उत्पन्न होती है, उसके सम्बन्ध में विज्ञान का मानना है कि कम्पन करने वाली वस्तु से तरंग के रूप में ध्वनि आगे बढती है।

ध्वनि, प्रकाश, ऊर्जा, विद्युत आदि को भौतिक विज्ञान एक प्रकार की शक्ति के रूप में देखता है। अंधकार में प्रकाश पहुॅचते ही हमें सब कुछ दिखाई देता है। ऊर्जा द्वारा गर्मी महसूस करते हैं।

उसी प्रकार 'ध्वनि' शक्ति किसी माध्यम से चलकर कानों तक पहुँचती है तो हमें कुछ सुनाई देता है और हम यह समझ जाते है कि वह शक्ति हमें क्या संदेश दे रही है।

वायु या किसी पदार्थ में चलती हुई तरंग जो कानों द्वारा ग्रहण की जा सके, उसे ध्वनि कहते है। 'ध्वनि' वायु तंरगों में हुई हलचल का परिणाम है। इस हलचल को देखा नहीं जा सकता, समझा नहीं जा सकता है पर कानों से सुना जा सकता है। 'ध्वनि', सुनी जाने वाली तंरगों की हलचल है। ध्वनि एक अनुभव है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक साथ रहती है, फिर भी हम उसकी गहराई तक पहुँच नही पाते।

ध्वनि का सामान्य अर्थ आवाज है। यह ध्वनि किसी व्यक्ति, पशु अथवा अन्य भौतिक पदार्थों की पारस्परिक टकराहट की हो सकती है, अर्थात् ध्वनि व्यक्तिगत तथा 'मिश्रित' दोनों प्रकारों की होती है। 'ध्वनि' उत्पन्न होकर हमारे कानों तक जिस रिति से पहुँचती है उसे तीन विभागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. ध्वनि उत्पत्ति का स्त्रोत (उत्पादक)
2. कणेन्द्रिय (ध्वनि ग्राहक)
3. ध्वनि संचार माध्यम जिसके द्वारा ध्वनि का संचार होता है।

जब हमारे कान किसी ध्वनि को ग्रहण करते हैं तब ध्वनि स्नायु संकेतों का विश्लेषण करके, हमारा मस्तिष्क हमें सूचित करता है कि उक्त ध्वनि का स्त्रोत क्या है? वह किस दिशा विशेष से आ रही है और ध्वनि स्त्रोत कितनी दूरी पर है।

<u>संगीत और 'विज्ञान' की परिभाषा में</u> – 'वह भौतिक ध्वनि आती है जो किसी भौतिक द्रव्य में उत्पन्न होती है, किसी भौतिक माध्यम से होकर कान तक पहुँचती है और उनके ज्ञान तंतुओं को छेड़ती है, जिससे मस्तिष्क उसका अनुभव करता है। आधुनिक ध्वनि विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि इस तथ्य पर बल देती है कि 'ध्वनि' सदैव तरंगों द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है और तंरगों को आगे बढाने के लिए यानि प्रस्तारित होने के लिए किसी माध्यम का होना आवश्यक है। जैसे हवा(गैस), पानी(द्रव्य) आदि।

<u>उदाहरण</u> – जब स्कूल की घंटी बजाई जाती है तो हमें उसकी आवाज़ सुनाई देती है। घंटे पर मुंगरी द्वारा प्रहार करने के पश्चात् जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह हमारे कानों तक पहुँचती है। भौतिक विज्ञान द्वारा हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित होता है कि आवाज़ उन्पन्न होने के स्थान से ध्वनि को कानों तक पहुचने के लिए किसी माध्यम की आवश्कता पड़ती है। इसलिए स्पष्ट हो जाता है कि घंटे द्वारा उत्पन्न यह आवाज, हवा के माध्यम द्वारा हमारे कानों तक पहुँच पाई है। ध्वनि प्रसारण के लिए किसी माध्यम का होना आवश्यक है।

एक बड़ी कॉच की बोतल के साथ वायु निकलने वाला पम्प लगा दिया जाए। जिसके तार व बटन बाहर हो। बोतल इस तरह बंद कर दी जाए कि हवा आ जा न सके। अब बटन दबाने से बिजली की घंटी बजने लगेगी और ध्वनि बाहर सुनाई देगी, पर पम्प के द्वारा हवा और ध्वनि बाहर सुनाई देगी। पम्प के द्वारा हवा जैसे–जैसे बाहर निकलेगी वैसे–वैसे ध्वनि भी धीमी पड़ती जाएगी। यहॉ तक कि एक अवस्था में हमें ऑखों से घंटी बजती हुई दिखाई देगी पर कोई ध्वनि सुनाई न पड़ेगीं। इस साधारण प्रयोग से जिसका प्रबंध किसी भी प्रयोगशाला में आसानी से हो सकता है, यह सिद्व होता है कि ध्वनि संचार द्रव्य के अभाव में या शून्य में नहीं हो सकता उसके लिए किसी द्रव्य का माध्यम, चाहे वह गैस, द्रव या ठोस अवस्था में हो आवश्यक है।

इस प्रकार उत्पादक, द्रव्य में उत्पन्न कम्पन्न गैस, द्रव या ठोस माधम के द्वारा कानों तक पहुँचती है। इस आगत कम्पन के वेग से कान के परदे भी कम्पित हो उठते है और फिर इस परदे के कंपन से हड्डियों, परदे और द्रव के जटिल पर सूक्ष्म यंत्र के द्वारा श्रुति तंतुओं में स्पंदन पैदा होते हैं। इन्हीं स्पंदनो से मस्तिष्क को ध्वनि का बोध होता है।

सभी ध्वनियॉ संगातोपयोगी नहीं होती। नाद के दो प्रकार हैं – आहत व अनाहत। आहत नाद का संबध हमारी भौतिक ध्वनियों से है और अनाहत नाद का संबंध योगसिद्ध, बिना किसी कारण से उत्पन्न निरंतर सच्चिदानन्दमयी ध्वनि से है।

संगीतोपयोगी ध्वनि के लक्षण :–

ध्वनि की एकरूपता – ध्वनि की एकरूपता का तात्पर्य है कि ध्वनि तंरग की तीव्रता लगभग एक समान रहती है।

ध्वनि की निरन्तरता – संगीतात्मक ध्वनियॉ गॅूज वाली होती है। उनमें निरन्तरता बनी रहनी चाहिए। यह निरन्तरता अन्य किसी माध्यम से न होकर ध्वनि स्त्रोतों से ही होनी चाहिए।

ध्वनि की सुरम्यता – ध्वनि की सुरम्यता भी संगीतोपयोगी ध्वनि का लक्षण है। संगीतोपयागी ध्वनि के लिए तकनीकी शबदावली है 'नाद', जबकि भौतिक विज्ञान की दृष्टि में नाद एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि ही है। नियमित कंपनों वाली ध्वनियों के अतिरक्ति अन्य सभी ध्वनियॉ हमें शोरगुल सी प्रतीत होती है। इसे तकनीकी भाषा में 'राव' कहते हैं। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि 'राव' अनियमित कंपनों वाली ध्वनि है जबकि नाद नियमित कंपनों वाली ध्वनि।

2.4 तरंग या कम्पन

कंपन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :–

1. अनुप्रस्थ कंपन
2. अनुदैर्ध्य कंपन

1. अनुप्रस्थ कंपन – संगीत में मुख्य रूप से अनुप्रस्थ कंपन का ही प्रयोग होता हैं। अनुप्रस्थ कंपन के अन्तर्गत जब तार या द्रव्य आडी दिशा में कंपन करता है तब वह अनुप्रस्थ कंपन कहलाता हैं। **उदाहरण** – सितार या तानपुरे के तार को जब छेड़ते हैं तब वह आड़ी दिशा में हिलता है यानि तार, घुड़च और मेरू की दिशा में ना हिलकर जब तार अपनी चौडाई की दिशा में हिलता है तो उसमें कंपन होता है, इसे अनुप्रस्थ कंपन कहते हैं।

2. अनुदैर्ध्य कंपन – जब कोई तार व द्रव्य अपनी लंबाई की दिशा में कंपित होता है तो उसे अनुदैर्ध्य कंपन कहते हैं। ध्वनि का संचार अनुदैर्ध्य तरंग से ही होता है। रागों के अन्तर्गत स्वर प्रयोग, अनुदैर्ध्य कंपन के रूप में होता है।

आवृति और कम्पन को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :–

क) 'कम्पन काल' – कम्पन काल से तात्पर्य है वह समय जो एक कंपन में व्यतीत होता है। किसी तंत्रिका को झंकृत करने पर वह अपने मूल स्थान से कुछ हटती है। एक निश्चित दूरी पर जाकर वह प्रत्यावर्तन करती है किन्तु प्रत्यावर्तन इतने अधिक वेग से होता है कि तंत्रिका अपने मूल स्थान पर विश्राम नहीं कर पाती। वह विपरीत दिशा में कुछ आगे तक जाती है और वेगशून्य होकर पुनः वापिस आती है। इस संपूर्ण प्रकिया को एक कम्पन अथवा आंदोलन कहते हैं। यही प्रकिया एक सेकेण्ड में जितनी बार होगी उतनी ही ध्वनि की आवृति होगी। आवृति जितनी अधिक होगी ध्वनि उतनी ही पतली होगी तथा आवृति जितनी कम होगी ध्वनि उतनी ही मोटी होगी।

ख) 'कंपन विस्तार'– कम्पन की प्रकिया के समय जब तंत्रिका अपने मूल स्थान से हटकर किसी एक पार्श्व तक जाती है तब उस दूरी को कम्पन विस्तार कहते हैं। कम्पन विस्तार का संबंध भी ध्वनि के उतार–चढाव से है। कम्पन विस्तार जितना अधिक होगा कम्पनांक अथवा आवृति उतनी ही कम होगी किन्तु यह सर्वदा नहीं होता। यदि हम किसी तंत्रिका पर शनै–शनै प्रहार करें और उसकी आवृति 50 कम्पन हो एवं कम्पन विस्तार एक सेंटीमीटर हो तो उसी तंत्रिका को जोर से झंकृत करने पर कम्पन विस्तार तो बढ जाएगा, किन्तु कम्पनांक अथवा आवृति 50 ही रहेगा। इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि कम्पन विस्तार का मूलाधार ध्वनि सघनता है ना कि ध्वनि का मंद्रतारत्व।

संगीत में ध्वनि या नाद के लक्षण जिन्हें हम अपने कानों द्वारा गृहित करते हैं वे निम्न हैं :–

<u>तारता</u> – तारता को नाद का ऊँचा–नीचापन भी कहते है। संगीत में मंद्र, मध्य व तार तीन सप्तक होते हैं। यहाॅ 'तारता' से तात्पर्य सप्तकों का न होकर अधिक आवृति के नाद से है। कोई स्त्री व बच्चा चाहे जितना भी धीमा बोले या चिल्लाकर बोले उसकी आवाज में महीनपन होता है। जब बच्चे या स्त्री की आवाज की तुलना पुरूष की आवाज से की जाए तो अनुभव होगा कि पुरूष की आवाज में मोटापन है। इसी प्रकार मच्छर व मधुमक्खी की भिनभिनाहट में तीखापन है यानि मच्छर व मधुमक्खी अधिक तारता वाली आवाज पैदा करते हैं।

आधुनिक विज्ञान यह स्थापित करता है कि मच्छर द्वारा निकाली गई ध्वनि हो या वह बच्चे के गले द्वारा निकाली गई ध्वनि हो वह ध्वनि तंरगों द्वारा ही प्रसारित होकर हमारे कानों तक पहुॅचती है व सुनाई देती है। यह भी स्थापित हो चुका है कि कम्पन जितना अधिक होगा यानि कम्पन संख्या प्रति सेकंड जितनी अधिक होगी वह ध्वनि उतनी ही तीखी व ऊँची प्रकार की होगी। कम आवृति का नाद गंभीर तथा मंद्र होगा, जबकि अधिक आवृति वाला नाद महीन तथा तार होगा। इसी प्रकार आवृति कम या अधिक होने से नाद का ऊँचापन व नीचापन प्रकट होता हैं। महिलाओं की आवाज पुरूष की अपेक्षा अधिक आवृति वाली अर्थात् पतली होती है। इसी प्रकार हारमोनियम के स्वर, बाएॅ से दाहिने और अधिक आवृति वाले होते जाते है। संक्षेप में कहें तो नाद के तारत्व का संबंध आवृति संख्या से है।

<u>तारता के विषय में सी0 शोर ने कहा है :</u>–

- तारता उन चार स्वर संबन्धी विशेषताओं में से एक है जिसके द्वारा इस प्रकार की संवेदना की अभिव्यक्ति होती है जिससे तारता को अन्य संवेदनाओं से अलग कर सकते हैं। जैसे रंग व स्वाद।
- तारता स्वर के उॅचे व नीचेपन का बताता है जिसके द्वारा संगीत के सप्तक की पहचान कर सकते हैं।
- तारता के द्वारा मानसिक तथा सांगीतिक संबंध स्थापित करने में मदद मिलती है।

स्वर का प्रभाव हमारी श्रवण शक्ति पर निर्भर करता है जैसे कि यदि नाद का बहुत सूक्ष्म सा परिवर्तन हो जाता है परन्तु यदि **अति स्वरों** में कुछ परिवर्तन कर दिया जाए तो नाद के ऊॅचे नीचेपन में बहुत अन्तर हो जाता है। जब एक नाद में अनेक अति स्वरों का मिश्रण होता है तब हम मूल आन्दोलन संख्या को निश्चित कर लेते हैं। स्वर की तारता स्वरोत्पादक वस्तु की आन्दोलन संख्या पर निर्भर है। आन्दोलन संख्या जितनी अधिक होगी स्वर भी उतना ही ऊॅचा होगा। 'रे' स्वर 'सा' स्वर से ऊॅचा है। इसका कारण यह है कि रे स्वर की आन्दोलन संख्या 'सा' रे अधिक है।

<u>तीव्रता</u> – तीव्रता से अभिप्राया तेज आवाज से है। तीव्रता को नाद का छोटा–बड़ापन कहते हैं। जैसे किसी तार को आहिस्ता से छेड़ने पर धीमी आवाज़ निकलेगी और यदि उस तार को जोर से छेड़ेगे तो आवाज़ तेज निकलेगी। नाद(ध्वनि) का यह गुण वस्तु के कम्पन विस्तार पर निर्भर है। कम्पन विस्तार जितना बड़ा होगा तीव्रता भी उसी हिसाब से बढेगी। ध्वनि का कम्पन विस्तार जितना होगा वायु में उतनी सघनता पैदा होगी। ऐसी सघनता जब कानों के परदे पर पडती है तो कान का परदा अधिक दबाव महसूस करता है यही ध्वनि की तीव्रता का अनुभव है।

नाद की तीव्रता नापने के लिए डैसीबल पद्धति को अपनाते हैं। इसे फॉन(Phan) नाम से भी जाना जाता है, जिसके आधार पर साधारण बातचीत की ध्वनि को क्षेत्र 60 से 70 फॉन के मध्य में रहता है। उदाहरण – एक गायक अगर एक घंटे मंच पर अपना गायन प्रस्तुत करता है तो उसकी स्वर की तीव्रता घटती बढती है। राग में लगने वाले किसी स्वर को जोरदार खुली आवाज में प्रस्तुत किया जाता है तो किसी स्वर को हल्की आवज़ में प्रस्तुत किया जाता है।

<u>नाद की जाति अथवा गुण **(Quality)**</u> – यद्यपि सभी नाद कम्पन से उत्पन्न होते हैं किन्तु तीव्रता और तारता दोनों ही समान हो तो भी दो नादों में अन्तर हम कानों द्वारा महसूस कर सकते हैं। उदाहरण – किसी वाद्यवृंद में अनेक वाद्यों पर एक ही स्वर लहरी बजती है किन्तु अनुभवी संगीतज्ञ

सभी वाद्यों की ध्वनि पृथक–पृथक पहचान सकते हैं। दो वाद्यों, दो मनुष्यों अथवा दो पशुओं द्वारा उत्पन्न की गई ध्वनि एक दूसरे से न्यूनाधिक मात्रा से भिन्न होती है। ध्वनि की इसी भिन्नता के द्वारा हम एक व्यक्ति की ध्वनि सुनकर भी कभी–कभी उसे पहचान लेते हैं। ध्वनियों की यह परस्पर भिन्नता नाद की जाति कहलाती है।

प्रेरित कम्पन – जब वस्तु की मुक्त आवृत्ति और प्रेरक बल की आवृति में अन्तर रहता है तो वस्तु में उत्पन्न कम्पन को प्रेरित कम्पन कहते हैं। किसी भी तार को एक बार न छेडकर बार–बार बराबर अन्तराल में बल लगाते रहे तो थोड़ी देर में यह प्रतीत होता है कि तार का मुक्त कम्पन दब गया और उसमें कम्पन की आवृत्ति वही है जो बल की आवृति है। कभी–कभी एक ध्वनि स्त्रोत अपने आस–पास के परिवेश को अपनी कम्पन तरंग से प्रभावित करता है। **उदाहरण** – यदि सितार के तार को झंकृत करें तो तार अपने कम्पन से घुड़च को प्रभावित करता है, वायु को प्रभावित करता है। किसी कटोरी को मेज़ पर रखकर बजाएँ तो मेज़ और कटोरी दोनों की आवाज़ मिलकर निकलेगी।

अनुनाद – जब दो समान कंपनांको की की वस्तु को पास–पास रखा जाए तथा किसी एक को कंपित करे तो दूसरी स्वयं कंपित होने लगेगी। इसी क्रिया को अनुनाद कहते है। इसका कारण यह है कि जिब एक वस्तु को आंदोलित किया जाता है तो उसकी ध्वनि तरंगे वायु में फैलती है। उसके पास रखी दूसरी वस्तु जिसकी आंदोलन संख्या प्रथम की आंदोलन संख्या के समान है तो दूसरी वस्तु भी स्वयं कंपित होने लगती है और इसके फलस्वरूप ध्वनि की तीव्रता बढ जाती है। अनुनाद भी मूल रूप में प्रेरित कम्पन ही होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि प्रेरित कम्पन में मूल ध्वनि स्त्रोत अपनी आवृत्ति के अनुसार प्रेरित स्त्रोत की आवृत्ति बना लेता है जबकि अनुनाद में दोनों कम्पन स्त्रोतों की आवृत्ति समान अथवा सरल अनुपाती होने चाहिए।

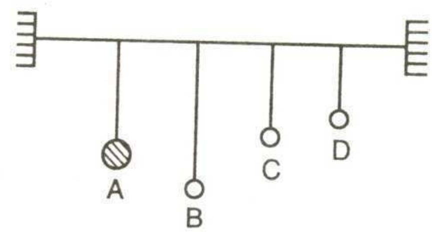

दिये गये चित्र में एक पतली डारी पर चार सरल लोलक (Pendulum) A B C व D लटकाये गये हैं। लोलक A व C की लंबाइयां आपस में बराबर हैं। अतः इनकी आवृत्तियां भी बराबर हैं। लोलक B की लंबाई इनसे कुछ अधिक है तथा लोलक D की लंबाई कुछ कम है। अब यदि इस लोलक A को दोलन करा दें तो ये दोलन डोरी द्वारा अन्य लोलकों पर पहुंच जाते हैं। अतः इन लोलकों पर A की आवृत्ति का बल लगने लगता है। यह देखा जा सकता है कि लोलक B व D (जिनकी स्वभाविक आवृत्तियां A की आवृत्ति से भिन्न है) बहुत ही छोटे आयाम से प्रणोदित दोलन करते हैं, परन्तु लोलक C के प्रणोदित दोलनों का आयाम धीरे–धीरे बढता जाता है तथा । के आयाम के बराबर हो जाता है। C के दोलन अनुवादी दोलन कहलाते हैं।

अनुनाद का उपयोग तार–वाद्यों जैसे– सितार, सरोद, आदि में किया जाता है। अन वाद्यों में तरब के तार इसका उदाहरण है। तरबे राग में लगने वाले स्वरों के हिसाब से मिलाई जाती है। वादन के समय जब वे स्वर बजते हैं तो जो तरब उक्त स्वर में मिली होगी वह स्वतः ही अनुनाद के कारण बज उठेगी। इस प्रकार मूल स्वर तथा तरब का स्वर मिलकर उस स्वर की तीव्रता व मधुरता को बढाते हैं।

तानपुरे या सितार के दो तार एक ही आवृत्ति में मिला लिए जाते हैं। अब दोनों में से किसी एक तार को झंकृत कीजिए और धीरे–धीरे दूसरा तार भी झंकृत होने लगेगा। इसका कारण दोनों तारों का एक आवृति में मिला होना है। इसकी प्रक्रिया यह है कि जब हम पहला तार छेड़ते हैं तो वह

तानपुरे या सितार की घोड़ी और लकड़ी में अपनी आवृत्ति का ही कम्पन पैदा करता है। यह प्रेरित कम्पन है क्योंकि लकडी का मुक्त कम्पन साधारणतः तार के कम्पन से भिन्न होता है। अब यह घोड़ी अपने कम्पन के द्वारा दूसरे तार में गूँज उत्पन्न करती है क्योंकि इस बार दूसरे तार का मुक्त कम्पन घोड़ी के कम्पन जैसा ही है।

वैज्ञानिकों ने स्थापित कर दिया है कि संगीत ध्वनि की आवृत्ति अधिकतम 4 हजार कम्पन संख्या प्रति सेकण्ड पाई जाती है। प्रो0 ललित सिंह अपनी पुस्तक ''ध्वनि और संगीत'' में लिखते हैं कि संगीत के स्वर कम से कम 40 और ज्यादा से ज्यादा 4000 आवृति के होने चाहिए तभी कान उन्हें संगीत के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

2.5 ध्वनि के विविध रूप

1. ध्वनि का परावर्तन (Reflection of Sound) – जब वायु के माध्यम से अग्रसर ध्वनि तंरग किसी समतल बाधा, जैसे दीवार आदि से अवरूद्ध हो जाती है तब उक्त तरंग का कुछ भाग तो अवरोधक द्वारा शोषित कर लिया जाता है, कुछ अवरोधक को पार कर जाता है तथा शेष भाग पूर्ववर्ती आवृति में ही परावर्तित हो जाता हैं, इसे ही ध्वनि का परार्वतन कहते हैं।

जब किसी स्तह का क्षेत्रफल उस पर पडने वाली ध्वनि तरंगों की लम्बाई से अधिक होगा तब वह ध्वनि तरंग परावर्तित होगी। न्यूनतम सुनने योग्य ध्वनि तरंगों की तरंग दैर्ध्य लगभग 1 इंच तथा उच्चतम सुनने योग्य ध्वनि की तरंग दैर्ध्य 34 फीट होती है।

समतल सतह पर ध्वनि का परावर्तन – नीचे दिए गये चित्र में एक लकडी का तख्ता या धातु के पर्दे को जो परावर्तक है उर्ध्वाधर रखते है। किसी धातु की खोखली नली को इस प्रकार लगाते हैं कि नली की अक्ष पर्दे की ओर हो और पर्दे के तल से कुछ कोण बनाए। इसी प्रकार की एक दूसरी नली को चित्र के अनुसार इस प्रकार लगाते हैं कि उसकी अक्ष भी परदे की ओर संकेत करें। पहली नही के एक किनारे पर एक ध्वनि स्त्रोत (छड़ी) तथा दूसरी के किनारे पर ध्वनि सूचक रखते है। नलियों के बीच में एक पर्दा घडी की ध्वनि को सीधे कान तक पहुॅचने से रोकने के लिए रख देते है। दूसरी नली को हर सम्भव स्थिति में घुमाते हैं और ऐसी स्थिति में समंजित करते है कि नली के सिरे पर कान द्वारा अधिकतम ध्वनि ग्रहण की जाय।

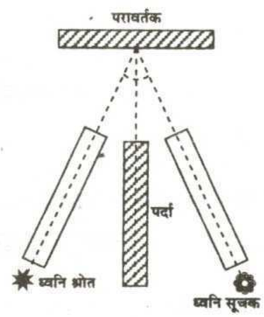

वक्र सतह से ध्वनि का परावर्तन – ध्वनि का परावर्तन वक्र तलों से भी उन्हीं नियमों के अनुसार होता है जिन नियमों पर एका परावर्त समतल सतह से होता है।

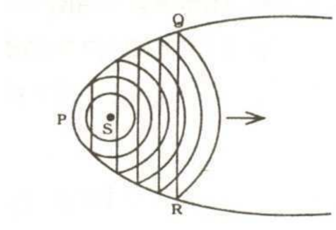

ध्वनि परावर्तन के उपयोग – ध्वनि परावर्तन के निम्न उपयोग हैः–

1. ट्यूब (नली) के द्वारा बहुत कम ऊर्जा का क्षय करके ध्वनि का प्रसारण सम्भव है।
2. कर्ण तर्य (Ear Trampet) के द्वारा उन मनुष्यों को सुनने में सहायता मिलती है जिन्हे कम सुनाई देता है।
3. स्टेथस्कोप (Stethescope) मुनष्य के फेफड़ों तथा हृदय की धड़कन सुनने के काम में आता है।
4. परावर्तन की घटना का प्रयोग समुद्र की गहराई नापने के लिए किया जाता है।

<u>ध्वनि तरंगों का अपवर्तन</u> – जब ध्वनि तरंगों का एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश उपवर्तन के नियमानुसार होता है। उदाहरण – गर्मी के दिनों में पृथ्वी के पास की वायु का तापमान ऊपर की दूर की वायु के तापमान से अधिक होता है तो ध्वनि तरंगे क्रमशः विरल से सगन वायु परतों में से होकर जाने लगती है। दूसरे शब्दों में इन ध्वनि तरंगों की गति ऊपर की ओर हो जाती है। रात में पृथ्वी के समीप की वायु अधिक ठंडी होती है तब ये ध्वनि तरंगों नीचे की ओर हो जाती है। इसजिए रात्रि को ध्वनि अधिक दूर तक सुनाई देती है।

<u>2. ध्वन्यावर्तन (Refraction of Sound)</u> – सामान्यतः ध्वनि का माध्यम वायु है। वायु के तापमान का भी ध्वनि पर प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः कम तापमान में ध्वनि अधिक तीव्रता से चलती है। ध्वनि चालन का एक नियम यह भी है कि यह विरल माध्यम से सघन माध्यम की ओर प्रेरित होती है।

<u>3. ध्वनि का विवर्तन (Defraction of Sound)</u> – जब माध्यम में संचरित ध्वनि तंरग किसी अवरोध से प्रभावित होकर दिशा परिर्वतन कर लेती है तब उसे ध्वनि का विवर्तन कहते हैं। उदाहरण – किसी मोड पर गाड़ी के हार्न की ध्वनि मोड के दूसरी ओर के स्त्रोता को सुनाई देती है जबकि वह उस गाड़ी को नही देख पाता। इससे यह पता चलता है कि ध्वनि तरंगें किसी अवरोध के किनारों पर मुड़ जाती है। विवर्तन ध्वनि तरंगों की तरंग दैर्ध्य और अवरोध के आकार पर निर्भर करता है। जब तक अवरोध का आकार ध्वनि तरंगों की तरंग दैर्ध्य की तुलना में काफी अधिक नही होता तब तक विवर्तन अधिक स्वष्ट नहीं होता।

<u>4. ध्वनि का व्यतिकरण (Interference of Sound)</u> – जब दो ध्वनि तंरगें एक ही माध्यम से एक ही दिशा में, साथ–साथ संचरित होती है तब माध्यम को, दोनों तंरगें एक साथ आन्दोलित करती है एवं उक्त दोनों ध्वनि तंरगों के आधार पर माध्यम में एक तरंग बनती है। इस तंरग का आधार उक्त दोनों तरंगों के आकार और कम्पन विस्तार आदि पर निर्भर करता है। यदि दोनों तरंगें लगभग समान आवृत्ति वाली है तो माध्यम में कुछ स्थानों पर उनका कम्पन विस्तार अधिकतम होगा तथा कुछ स्थानों पर न्यूनतम। एक स्थिति में दोनों तंरगें एक दूसरे में विलिन होती हुई सी प्रतीत होगी, इसे ध्वनि का व्यतिकरण कहते हैं।

<u>5. प्रतिध्वनि (Echo)</u> – प्रतिध्वनि का अर्थ है ध्वनि का ऐसा परावर्तन जिसे कर्णेन्द्रिय दोबारा ग्रहण कर सकें। कभी–कभी पर्वतीय प्रदेशों में अथवा भवनों की पंक्तियों के बीच जोर से ध्वनि करने पर एक ही ध्वनि दो बार सुनाई देती है। यह प्रतिध्वनि सिद्धान्त के आधार पर होता है। ध्वनि की गति, खुली हवा में 1120 फीट प्रति सेकेण्ड है। श्रुत ध्वनि का प्रभाव हमारे कानों में लगभग 1/10 सेकेण्ड तक रहता है। अतः प्रतिध्वनि की अनुभूति के लिए यह आवश्यक है कि ध्वनि परावर्तक तल से कम से कम ध्वनि स्त्रोत से इतनी दूरी तक होना चाहिए कि ध्वनि तंरग के आवागमन में 1/10 सेकेण्ड से कुछ अधिक समय लगे। इस प्रकार ध्वनि परार्वतक तभी प्रतिध्वनि की अनुभूति करा सकता है जब वह कम से कम ध्वनि स्त्रोत से 56 फीट 1120/2/10 की पूरी पर हो। शब्दों के अनुसार यदि परावर्तन तल की दूरी इससे कम होगी तो प्रारम्भिक शब्द और परावर्तित शब्द दोनों मिल जायेंगे और प्रारम्भिक शब्द अधिक लम्बा प्रतीत होगा परन्तु यदि प्रारम्भिक शब्द अधिक लम्बा हो तो उसकी शब्दों में अन्तर 1/10 सेकेण्ड से अधिक होना आवश्यक है।

<u>प्रतिध्वनि के लाभ</u> :–

(1) प्रतिध्वनि के द्वारा वायु में ध्वनि का वेग ज्ञात करने की विधि प्राप्त होती है।

(2) प्रतिध्वनि का प्रयोग समुद्र के भीतर बर्फ की चट्टानों तथा पहाड़ी चट्टानों का पता लगाने के लिए किया जाता है।

(3) प्रतिध्वनि के द्वारा समुद्र की गहराई व हवाई जहाज की उॅचाई का भी पता लगाया जाता है।

<u>प्रतिध्वनि से हानि</u> – बड़े कमरों में सीधी और परावर्तित ध्वनियों के आयाम के मिलने से कमरे के भीतर अस्पष्ट ध्वनि सुनाई देती है।

<u>6. डोल(विस्पंद) (Beats)</u> – व्यतिकरण के सन्दर्भ में जब एक ही आवृत्ति की दो ध्वनियों की आवृत्ति एक सी होती है तब दोनों स्वर एक दूसरे मे विलीन हो जाते हैं और दोनों का पारस्परिक अन्तर अनुभवाती हो जाता है। किन्तु यदि परस्पर साथ–साथ संचरित होती हुई दो ध्वनि तंरगें एक आवृत्ति की न हो, बल्कि दोनों ध्वनि तंरगों की आवृत्ति में सूक्ष्म अन्तर हो तो संयुक्त स्वर एक पृथक रूप में इस प्रकार सुनाई देगा कि उसकी ध्वनि कभी तीव्र होगी तो कभी मंद। ऐसा प्रतीत होगा मानों की स्वर हिल रहा है। स्वरों के इसी हिलने को डोल कहते हैं। दोनों ध्वनि तंरगों की आवृत्ति में अन्तर जितना अधिक होगा, प्रति सेकण्ड डोलों की संख्या भी बढती जाएगीं और अन्तर जितना कम होगा, डोलों की संख्या उतनी ही कम होगी।

वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारे कान 1 सेकेण्ड में सिर्फ 05–16 विस्पंद ही स्पष्ट तरीके से सुन सकते हैं। जब विस्पंदों की संख्या अधिक होती है तो एक खड़ खड़ सी ध्वनि सुनाई देती है। और जब कभी ध्वनी की आवृत्तियों में अन्तर अधिक हो तो कभी–कभी एक अन्तर स्वर भी सुनाई देता है। इसका उदाहरण है रेडियो में सुनाई देने वाली सीटी, यह सीटी प्रायः अन्तर स्वर ही होते हैं।

ग्राफ द्वारा विस्पन्दों का प्रदर्शन :–

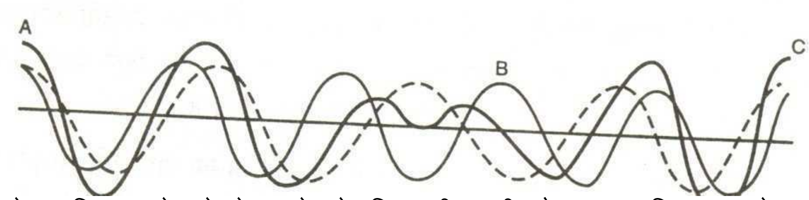

ग्राफ में दो ध्वनि तरंगों दो रेखाओं से दिखायी गयी हैं– एक बिन्दुदार रेखा से तथा दूसरा पतली रेखा से, A बिन्दु पर दोनों तरंगे एक ही कला में है। अतः यहॉ पर परिणामी विस्थापन अधिकतम दोनों तरंगों के अलग–अलग विस्थापन के योग के बराबर होगा क्योंकि दोनो तरंगों की आवृत्तियों या तरंग दैर्ध्य में थोडा सा अन्तर है। अतः ज्यों–ज्यों समय बढता जाता है एक तरंग दूसरे के सापेक्ष हटती जाती है। यहॉ तक कि B पर दोनों तरंगे विपरीत कला में आ जाती है। चित्र में दिखाये गये ग्राफ में मोटी रेखा द्वारा दोनों तरंगों की परिणामी तरंग प्रदर्शित की गई है, जिससे स्पष्ट है कि ध्वनि लगातार अधिकतम और न्यूनतम होती रहती है।

<u>विस्पंदों का उपयोग</u> :–

<u>1. संगीत वाद्यों को ट्यून करने में</u> – संगीतकार द्वारा अपने वाद्य को ट्यून करने में विस्पंदों का प्रयोग किया जाता है। वे दो वाद्यों को एक एक कर बजाते हैं तथा किसी एक वाद्य की आवृति को इस प्रकार समायोजन किया जाता है इसकी ध्वनि तथा दूसरे वाद्य की ध्वनि समान प्रतीत हो। इस प्रकार दोनों वाद्यों की आवृत्तियों को बराबर करके एक साथ बजाया जाता है तथा विस्पंद सुना जाता है। वे एक वाद्य की आवृत्ति को इस प्रकार समायोजित करते हैं कि विस्पंदों की संख्या धीरे–धीरे कम होने लगे तथा अन्त में सुनाई देने बन्द हो जाए। ऐसी स्थिति में दोनों वाद्यों की आवृत्तियॉ बिलकुल बराबर हो जाती है।

<u>2. रेडियों तरंगों को ग्रहण करने में</u> – विस्पंद का प्रयोग रेडियों तरंगों को ग्रहण करने की विधि में होता है। रेडियो ग्राही में प्राप्त उच्च आवृत्ति की तरंगों से मिलाया जाता है। तरंगे मिलकर ऐस तंरगें उत्पन्न करते है जो सुनने योग्य हो।

3. स्वरित्र की आवृत्ति ज्ञात करने में।

<u>4. खानों में हानिकारक गैसों का पता लगाने में</u> – खानों में हानिकारक गैस का पता लगाने के लिए शुद्ध हवा भरे दो आर्गन पाइपों को एक साथ बजाया जाता है जिससे विस्पंद उत्पन्न होते हैं। अगर कोई भी विस्पंद नही सुनाई देता तो इसका अर्थ है खान की हवा शुद्ध है। विस्पंद तब सुनाई देगा जब खान की हवा अशुद्ध हो, अशुद्ध हवा के कारण आवृत्ति परिवर्तित हो कर विस्पंद उत्पन्न करता है। इस प्रकार खान में उपस्थित हानिकारक गैसों का पता लगाया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. ध्वनि, प्रकाश व विद्युत एक प्रकार की .... है।
2. कान द्वारा सुनी जाने वाली तरंगों की हलचल को ....कहते है।
3. ध्वनि ....द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है।
4. नियमित कम्पन वाली ध्वनि .... कहलाती है।
5. संगीतोपयोगी ध्वनि के ....लक्षण बाए गए है।
6. तरंगे ....प्रकार की होती है।
7. उच्चतम सुनने योग्य ध्वनि की तरंगदैर्ध्य.................फीट होती है।
8. नाद की तीव्रता नापने के लिए...................... पद्धति का प्रयोग होता है।
9. समुद्र की गहराई का अनुमान........................के द्वारा लगाया जाता है।
10. ....क्रिया में दो ध्वनियॉ मिलकर शांत हो जाती है।

2.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ध्वनि के सभी पहलुओं से परिचित हो चुके होंगे। आप ध्वनि के वैज्ञानिक महत्त्व को भी जान चुके होंगे। कोई आवाज या ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है, वह किस माध्यम से हमारे (कान) श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचती है और हम विज्ञान के अनुसार कैसे ध्वनि को सुनते हैं आदि बातें आप इस इकाई के माध्यम से जान चुके होंगे। ध्वनि की विभिन्न अवस्थाओं और उनका श्रोता के मस्तिष्क में प्रभाव और अनुभव इत्यादि के बारे में भी जान चुके होंगे। संगीत में किन–किन ध्वनि प्रकारों का प्रयोग होता है व इनका कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई के माध्यम से जान चुके होंगे। ध्वनि सम्बन्धित उक्त सभी बातों को जानकर आप संगीत में इनका सही प्रयोग कर सकेंगे।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. शक्ति
2. ध्वनि
3. तरंगों
4. नाद
5. तीन(एकरुपता, निरन्तरता व सुरम्यता)
6. दो(अनुप्रस्थ व अनुदैर्ध्य)
7. 34
8. डैसीबल
9. प्रतिध्वनि
10. व्यतीकरण

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, श्री ललित किशोर, *ध्वनि और संगीत*, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1971।
2. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत–एक वैज्ञानिक विश्लेषण*।
3. मिश्रा, श्री कांताप्रसाद, *स्वर विज्ञान एवं गणित*।
4. सिंह, डॉ0 यशपाल, *भारतीय संगीत में श्रुति।*
5. माथुर, सुश्री मीरा, *संगीत शास्त्र परामर्श*।
6. भातखण्डे, श्री वी0डी0, *संगीत शास्त्र भाग–2* ।
7. साभार गूगल।

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 व 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, *संगीत शास्त्र दर्पण*।
4. बंसल, डॉ0 परमानन्द, *संगीत सागरिका,* प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. रानी, डा0 सुभाष, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ध्वनि का विज्ञान विषय पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 3 – ध्वनि भेद[ध्वनि (संगीतोपयोगी), नाद(आहत एवं अनाहत), ध्वनि का ऊँचा व नीचापन, काकु]

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संगीतोपयोगी ध्वनि
3.4 नाद(आहत एवं अनाहत)
3.5 ध्वनि का ऊँचा व नीचापन
3.6 काकु
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के इतिहास व भारतीय संगीत वाद्यों से भी परिचित हो चुके होंगे। आप ध्वनि के विज्ञान एवं महत्व को भी समझ चुके होंगे। जैसे ध्वनि किन कारणों से उत्पन्न होती है, किस प्रकार हमें सुनाई देती है, ध्वनि की विभिन्न अवस्थाओं और उनका श्रोता के मस्तिष्क में प्रभाव और अनुभव कैसे होता है इत्यादि।

इस इकाई में हम ध्वनि के प्रकारों का अध्ययन करेंगे। संगीत पूर्णतः ध्वनि पर आधारित है। आप समझ सकेंगे कि ध्वनि जो हमें अच्छी लगती है अर्थात मधुर ध्वनि क्या है? क्योंकि कर्णप्रिय मधुर ध्वनि हमें आकर्षित करती है वही संगीत में उपयोगी है। प्रस्तुत इकाई में हम विशेष रूप से इसी ध्वनि, जिसे हमारे प्राचीन ग्रन्थों में नाद कहा गया है, के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि हमारे भारतीय संगीत में ध्वनि, जिसे नाद कहा जाता है वह कितने प्रकार का है? आप नाद के प्रकारों की विशेषताओं व महत्व को जान सकेंगे जिससे यह आपके प्रयोगात्मक पक्ष में सहायक सिद्ध होगा।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. ध्वनि भेदों को समझ सकेंगे।
2. नाद के प्रकारों को समझ कर उनमें तुलना कर सकेंगे।
3. ध्वनि व नाद के प्रकारों की विशेषताओं को समझते हुए इनका प्रयोग अपने गायन/वादन में कर सकेंगे।

3.3 संगीतोपयोगी ध्वनि

जो कुछ भी हमारे कानों को सुनाई देता है वह ध्वनि है। हमारे दैनिक जीवन में कई प्रकार की ध्वनि हमको सुनाई देती हैं। कुछ ध्वनियाँ हमें सुनने में अच्छी लगती है– जैसे कोयल की आवाज, किसी वाद्य के तारों की आवाज आदि। इसके अतिरिक्त कुछ ध्वनियाँ हमारे कानों को अच्छी नहीं लगती और कई बार तो हम अपने कान को ढकने लगते हैं। संगीत का सम्बन्ध केवल उस ध्वनि से है जो मधुर और कर्णप्रिय है। ध्वनि भेदों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

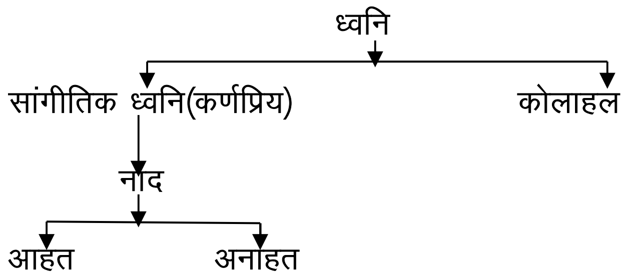

<u>1. सांगीतिक ध्वनि या संगीतोपयोगी ध्वनि</u> – इस श्रेणी में वे ध्वनियाँ आती है जो सुनाई देने पर हमें मधुर लगती है। यह ध्वनि किसी ध्वनि उत्पादक वस्तु के लगातार आवर्त कम्पनों से उत्पन्न होती है। जैसे सितार, वायलिन, बाँसुरी आदि की ध्वनि। अर्थात नियमित और स्थिर आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि सांगीतिक ध्वनि कहलाती है। इसको सांगीतिक ध्वनि या संगीतोपयोगी ध्वनि इसलिए कहते हैं क्योंकि इसका प्रयोग संगीत के क्षेत्र में किया जाता है। दूसरे शब्दों में सांगीतिक ध्वनि वह है जो सुने जाने पर मस्तिष्क पर सुखद प्रभाव उत्पन्न करें, जो किसी ध्वनिस्त्रोत के लगातार आर्वत कम्पनों से पैदा होती हो, जो नियमित व स्थिर आन्दोलन संख्या वाली हो।

<u>2. कोलाहल</u> – ऐसी ध्वनि जो सुनाई देने पर कर्कश लगती हो व मस्तिष्क पर कष्टदायक प्रभाव डालती हो उसे कोलाहल कहा जाता है। जैसे दीवाली मनाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले पटाखे व बम इत्यादि की आवाज, अनियमित व तेज गाडियों के हॉर्न व ठोक पीटने की आवाज, ऊँची आवाज में बजाने वाले विद्युत या इलेक्ट्रिक उपकरण (जो हमें व हमारे मन/हृदय को एक तरह से चोट करते हैं) इत्यादि सब कोलाहल के अन्तर्गत रखी जाती है। इस ध्वनि के आंदोलन/कंपन व्यवस्थित नहीं होते अर्थात अनियमित और अस्थिर आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि कोलाहल है।

दोनों ध्वनियों के कम्पन को दर्शाये जाने वाले चित्र से यह आसानी से समझा जा सकता है।

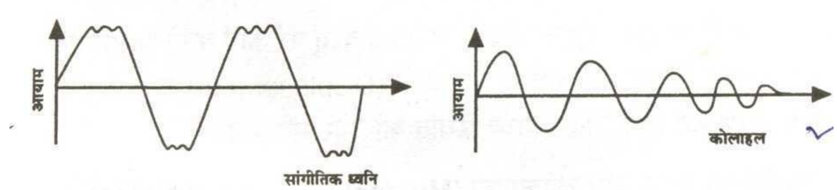

संगीत में जिन ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है वे **नाद** कहलाती है। नाद के सम्बन्ध में *संगीत रत्नाकर* ग्रंथ में लिखा है :–

चैतन्य सर्वभूतानां विवृत्तं जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीय मुपास्महे।। *संगीत रत्नाकर*

अर्थात नाद एक प्रकार की ध्वनि है जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। नाद सभी प्राणियों में स्थित है इसी कारण इसे ब्रह्म नाद कहते हैं।

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसन्धेः परा पूजा न हि तृप्ते परं सुखम्।। *योगशिखोपनिषद 2.20*

अर्थात – नाद से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं है, नाद अनुसन्धान से बड़ी कोई पूजा नहीं है तथा तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है। यह सन्दर्भ इस बात का दिग्दर्शन करता है कि भारतीय परम्परा में नाद के अनुसंधान तथा नादोपासना का अत्यन्त महत्व है। वेद, उपनिषद, योगदर्शन, व्याकरण तथा संगीत के शास्त्र ग्रन्थों में नाद को अपार महत्व दिया गया है। हृदय का उद्रेक, भाव की संवेदना, ज्ञान का भण्डार तथा विचार की शक्ति – इन सबकी अभिव्यक्ति वाणी के द्वारा ही होती है। वह वाणी स्वरमयी एवं शब्दमयी है और वह स्वर तथा शब्द नाद के अधीन है :–

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।। *संगीत रत्नाकर 1.2.2*

अर्थात् – नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की और पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। वाणी से ही यह सब व्यवहार चलता है। अतः यह सम्पूर्ण जगत् नाद के अधीन है।

नाद नियमित कम्पनों का समूह है। सुनने के बाद भले ही अखण्ड और अटूट प्रतीत होता हो, परन्तु यथार्थ में वह ध्वनि तरंगों का समूह है।

नाद की उत्पत्ति शरीर में कैसे होती है इस विषय में संगीत मकरन्द में लिखा है कि – सर्वप्रथम आत्मा मन को प्रेरित करता है, तत्पश्चात मन देह में स्थित अग्नि को प्रेरित करता है और फिर अग्नि वायु को प्रेरित करती है। इस प्रकार ग्रन्थि स्थित नाद, क्रम से ऊपर की तरफ चलता है और नाभि, हृदय, कंठ, तथा मूर्धा में ध्वनि को धारण करता है। वहॉ नाद के पाँच भेदों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार हैं – अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट तथा तार। आचार्य मतंग ने इन्हें सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त तथा कृत्रिम कहा है। यह ध्वनि प्रायोगिक अवस्था में तीन प्रकार की होती है – हृदय में स्थित मन्द्र, कंठ में स्थित मध्य तथा मूर्धा में स्थित 'तार' होती है। संगीत मकरन्द में चार प्रकार के वाद्यों तथा पॉचवां मनुष्य कंठ से निकलने वाले पॉच नाद कहे हैं जो इस प्रकार है – नरवज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा देहज।

<u>नाद की व्युत्पत्ति</u> – नाद शब्द की सामान्यतः 'नद' धातु से व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका अर्थ होता है अव्यक्त ध्वनि। इसकी उत्पत्ति प्राण तथा अग्नि के संयोग से होती है। जैसे –

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
जातःप्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।। *संगीत रत्नाकर 1.3.6*

अर्थात – नकार प्राण वाचक तथा दकार अग्नि वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग से उत्पन्न होता है उसी को नाद कहते हैं।

<u>नाद की विशेषतायें</u> – नाद की तीन विशेषतायें अथवा गुण–धर्म माने गये हैं :–

1) **तारता अथवा नाद का ऊँचा–नीचापन** (Pitch)
2) **तीव्रता अथवा नाद का छोटा–बड़ापन** (Loudness or Magnitude)
3) **जाति या गुण** (Timbre)

<u>1) तारता अथवा नाद का ऊँचा–नीचापन**(Pitch)**</u> – अग्रिम उपखण्ड में इस पर प्रकाश डाला गया है।

<u>2) तीव्रता अथवा नाद का छोटा–बड़ापन**(Loudness or Magnitude)**</u> – ध्वनि स्त्रोत के चारों ओर का वह क्षेत्र जिसमें उसका प्रभाव अनुभव किया जाता है, ध्वनि क्षेत्र कहलाता है। इस प्रभावित क्षेत्र में ध्वनि की मात्रा या माप को ध्वनि की तीव्रता कहते हैं। नाद का यह गुण धर्म आघात की शक्ति पर निर्भर करता है। आघात जितना जोरदार होता है, नाद उतना ही बड़ा और दूर तक सुनायी देता है। आघात जितना हल्का या क्षीण होता है, नाद उतना ही छोटा, कम दूरी तक सुनायी देने वाला और कम टिकने वाला होता है। आप इस बात को ध्यान में रखें कि नाद का यह गुण कम्प–विस्तार पर

निर्भर करता है। कम्पन का समय जितना अधिक होगा, आवाज उतनी ही तीव्र या बड़ी होगी ओर यह समय जितना कम होगा, आवाज उतनी ही सूक्ष्म या छोटी होगी।

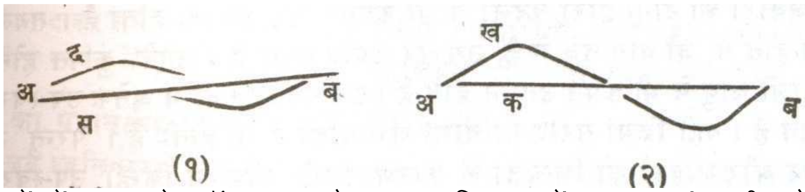

उक्त चित्रों में अ–ब रेखाऍं बराबर है। परन्तु चित्र 1 में स–द तरंग की चौडाई चित्र 2 की क–ख तरंग की चौडाई से कम है। उक्त दोनों चित्रों में दर्शाई हुई ध्वनियॉं नाद के उॅचे–नीचेपन में समान होंगी क्योंकि तरंग की लम्बाई अ–ब समान है। परन्तु चित्र 1 की ध्वनि पास तक ही सुनाई देगी और चित्र 2 की ध्वनि दूर तक।

<u>3) नाद की जाति अथवा गुण **(Timbre)**</u> – नाद का तीसरा गुण उसकी जाति है। समान कम्पन्न आवृति की दो ध्वनियों में जो हल्का सा अन्तर सुनाई देता है, वह नाद की जाति या गुण कहलाता है। दो वाद्ययंत्रों को समान कम्पन आवृति में मिलाने व ध्वनि उत्पन्न करने पर जो अन्तर महसूस होता है, वह जाति या गुण है। इसी कारण विभिन्न वाद्यों की आवाज एक दूसरे से अलग पहचानी जा सकती है। दो अलग–2 ध्वनि स्त्रोतों से उत्पन्न ध्वनि के साथ–साथ मूलस्वर तो सुनाई देते ही है, परन्तु जो और ध्वनि सुनाई देती है वह संनाद स्वर Harmonics होते है। इस प्रकार जिन वाद्यों में संनादी स्वर अधिक होते हैं वे अधिक मधुर सुनाई देते हैं। नाद का माधुर्य उसकी जाति ही है।

3.4 नाद (आहत एवं अनाहत)

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।
सोऽय प्रकाशते पिंडे तस्तात्पिंडोऽभिधीयते।। *संगीत रत्नाकर 1.2.3*

अर्थात नाद के दो भेद माने गये हैं – एक अनाहत और दूसरा आहत। ये दोनों पिंड(देह) में प्रकट होते हैं, इसलिए पिंड का वर्णन किया जाता है।

पं0 विष्णु नारायण भातखण्ड़े ने अपनी पुस्तक 'क्रमिक पुस्तक मालिका' भाग दो में नाद के प्रकार को निम्न प्रकार से वर्णित किया है :–

" आहत–अनहत भेद नाद के
प्रथम भेद श्रुतियन सो होवे
अनहत मुनि जन ध्यान धरत जब"।

- <u>अनाहत नाद</u> – साधारण शब्दों में जो बिना किसी आघात के स्वयं उत्पन्न होता है उसे अनाहत नाद कहते हैं। जैसे मनुष्य के शरीर में दोनों कान बन्द करने पर भी जो आवाज सुनाई देती है वह अनाहत नाद है। दूसरे शब्दों में अनाहत नाद वह है, जिसकी उपासना महर्षि/मुनि/योगी लोग ध्यान या समाधि लगाकर किया करते हैं और जिसके फलस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति करते हैं। सृष्टि के पॉच तत्वों – आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु में से नाद को आकाश का गुण माना जाता है। यह नाद श्रवणेद्रियों से नहीं सुनाई देता। योगी, योग द्वारा शरीर में स्थित पॉंचों चक्र को जिसे अनाहत चक्र कहते है, को सुन पाते है। अतः यह योगार्थ या साधनार्थ नाद है। यह मोक्ष प्रदान करने वाला है परन्तु रंजक नहीं होता। अतः यह नाद संगीतोपयोगी नहीं होता।
- <u>आहत नाद</u> – आहत नाद वह है जो घर्षण/आघात से उत्पन्न होता है। किसी वस्तु पर आघात से जो नाद उत्पन्न होता है उसे आहत नाद कहते है। संगीत में इसी नाद का प्रयोग होता है। जैसे सांरगी या वायलिन से घर्षण करता हुआ गज आहत नाद उत्पन्न करता है, सितार या वीणा में

मिजराब से आघात करने पर उत्पन्न नाद, आहत नाद कहलाता है इत्यादि। हमारे भारतीय संगीत में स्वर, श्रुति आदि की उत्पत्ति इस नाद की ही देन है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तिदाता माना गया है, किन्तु दामोदर पंडित ने संगीत दर्पण में आहत नाद को निम्न प्रकार से वर्णन किया है :–

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः।
श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिनिरुप्यते।।

अर्थात – आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि (स्वर, ग्राम, मूर्च्छना) से रंजक बनकर भव–भंजक भी बन जाता है, इस कारण इसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ।

3.5 ध्वनि का ऊँचा व नीचापन

इसे तारता (Pitch) भी कहते हैं। नाद की ऊँची–नीची अवस्था को 'तारता' कहते हैं। तारता से हमें पता चलता है कि अमुक ध्वनि कितनी ऊँची अथवा नीची है। इसी गुण के आधार पर ध्वनि के भिन्न रूप बनते हैं जिनको षड्जादि नामों से जाना जाता है। विज्ञान की दृष्टि से नाद का ऊँचा व नीचापन, ध्वनि स्त्रोत की कम्पन संख्या पर निर्भर करता है। कम आन्दोलन संख्या वाला नाद नीचा होगा और अधिक आन्दोलन संख्या वाला नाद ऊँचा होगा। ध्वनि कम्पनों की एक सेकेण्ड में उत्पन्न होने वाली संख्या को *आन्दोलन* कहते हैं। नियमित काल में यदि आन्दोलन संख्या कम हो तो नाद नीचा कहलाता है और अधिक हो तो नाद उच्च कहलाता है। किसी ध्वनि तरंग की लम्बाई बढ़ते जाने पर नाद नीचा तथा कम होते जाने पर नाद ऊँचा होता जाता है। पुरूषों की आवाज गंभीर होती है और स्त्रियों की बारीक और टीप वाली होती है। इसका कारण यह है कि पुरूषों की आवाज में जहां कम्पन संख्या अपेक्षाकृत कम होती है वहीं महिलाओं की आवाज में यह अधिक होती है।

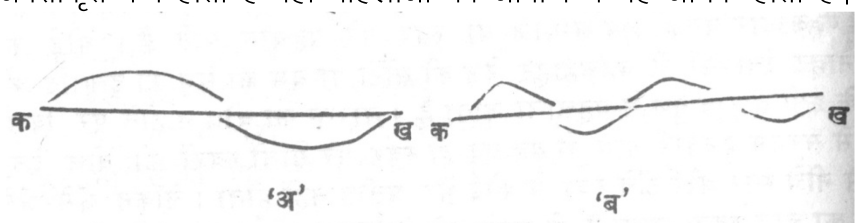

ऊपर अ और ब दो चित्र दिए हैं। दोनों में क–ख रेखा बराबर है किन्तु अ चित्र में केवल एक सम्पूर्ण तरंग है, जबकि ब चित्र में उतनी ही दूरी में दो तरंगे हैं। इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जितनी देर में अ चित्र की एक तरंग उत्पन्न होती है, उतनी ही देर में ब चित्र की दो तरंगे उत्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो ब चित्र की कम्पन संख्या अ चित्र की कम्पन संख्या से दुगुनी है।

प्रत्येक नाद एक दूसरे से ऊँचा अथवा नीचा होता है। जैसे 'सा' स्वर से 'रे' स्वर ऊँचा है तथा 'प' स्वर से 'म' नीचा है। अर्थात 'रे' की आन्दोलन संख्या 'सा' से अधिक होती है और वह ऊँचा होता है। इसके विपरीत 'सा' की आन्दोलन संख्या 'रे' से कम होती है इसलिए वह नीचा होता है। इस प्रकार हर स्वर, जैसे–जैसे हम सा से तार सां तक जायेंगे तो वह ऊँचा होता चला जाता है और तार सा से अवरोह में आते हैं तो स्वर नीचा होता जाता है। एक सप्तक में आरोही क्रम में स्वर ऊँचे होते जाते है और अवरोही क्रम में नीचे होते चले जाते है। यही *नाद का ऊँचा व नीचापन या तारता* है।

मध्य सप्तक का *सा* और तार सप्तक का *'सा'* का अन्तर उच्चता–नीचता या पिच का अन्तर होता है। मध्य सा के कम्पन यदि 240 प्रति सेकेण्ड है तो तार सा के कम्पन 480 प्रति सेकेण्ड होंगे। हमारे संगीत में 'सा' की आन्दोलन संख्या 240 है तथा क्रमशः रे – 270, ग – 300, म – 320, प – 360, ध – 405, नि – 450 और सां – 480। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वर की आन्दोलन संख्या आरोही क्रम में बढ़ती गई है और नाद ऊँचा होता जाता है। 'सा' की आन्दोलन संख्या 240 है वही तार सा की आन्दोलन संख्या 480 है। अतः 'सा' से तार 'सा' का ऊँचापन दो गुना है, यही नाद का ऊँचापन है। इसी प्रकार विपरीत क्रम अवरोही में नाद का नीचापन स्पष्ट हो जाएगा।

3.6 काकु

''भिन्नकंठध्वनिधीरेः काकुरित्यभिधीयतेः''

कंठ की भिन्नता से ध्वनि में जो भिन्नता पैदा होती है उसे 'काकु' कहते हैं। काकु शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के कक् धातु से हुई है जिसका अर्थ है ध्वनि का लचीलापन। सर्वप्रथम भरत ने नाट्यशास्त्र के 17वें अध्याय में काकु पर चर्चा की है। भरत ने काकु के छः अंग बताए हैं – *विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन, एवं प्रशमन*। संगीत में रस उत्पत्ति में इन छः अंगों का विशेष महत्व है। अमरकोष के अनुसार काकु ध्वनि के उस विकार को कहते हैं जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो। संगीतांजलि में पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने स्वरों के भावपूर्ण उच्चारण को काकु कहा है। ध्वनि या आवाज में मानोभावों को व्यक्त करने की अदभुत शक्ति होती है। कंठ में जो ध्वनि–तंत्रियां है उनके स्पंदन से ध्वनि निकलती है। इसी तरह तंतुवाद्यों में तारों के छेड़ने से ध्वनि पैदा होती है। हारमोनियम, बाँसुरी आदि सुषिर वाद्यों में वायु के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है।

ध्वनि में मनोभावों को व्यक्त करने की विचित्र शक्ति है। शोक, भय, प्रसन्ता, प्रेम आदि भावों को व्यक्त करने के लिए जब ध्वनि या आवाज में भिन्नता आती है तब उसे 'काकु' कहते है। काकु का प्रयोग मानव तो करते ही हैं, पशुओं में भी काकु प्रयोग भली–भाँति पाया जाता है। उदाहरण – जब बिल्ली भूखी होती है तो उसकी आवाज में कुछ और ही बात होती है और वही बिल्ली किसी के द्वारा अपने बच्चे को छेड़ते समय विरोध प्रकट करती है तब वह कुछ और ही प्रकार की ध्वनि निकालती है। ध्वनि की इसी भिन्नता या शैली को 'काकु' कहते हैं।

नाटक में जब किसी पात्र द्वारा कोई विशेष भाव व्यक्त कराया जाता है तब वहाँ काकु बहुत सहायक सिद्ध होता है। जो अभिनेता काकु का प्रयोग जितनी कुशलता से कर सकने में समर्थ होगा वह अपने अभिनय को उतनी ही सफलता पूर्वक निभा सकेगा।

संगीत–रत्नाकर में काकु के छः प्रकार बताए गए हैं :–

छायाकाकुः षट्प्रकारा स्वर रागान्यरागजा।
स्याद्देशक्षेत्रयंत्राणां तल्लक्षणमथोच्यते।।

1. <u>**स्वर काकु**</u> – स्वर काकु का तात्पर्य स्वर के विशिष्ट लगाव से है। श्रुति को कुछ अधिक या कम कर देने से एक स्वर की दूसरे स्वर में जो छाया दिखाई देती है वह *स्वर काकु* है।

श्रुतिन्यूनाधिकत्वेन या स्वरान्तरसंश्रया
स्वरान्तरस्य रागे स्यात् स्वर काकु रसौ मताः। संगीत रत्नाकर, पृ0 175

2. <u>**राग काकु**</u> – किसी राग की जो अपनी मुख्य छाया है, वह *'राग–काकु'* कहलाती है। राग काकु, राग के नियमानुसार ऐसे स्वर समूह की रचना करते हैं जो उस राग विशेष का रुप स्पष्ट करें। अतः इसे राग की पकड़ भी कह सकते हैं। पं0 शारंगदेव के अनुसार :–

या रागस्य निजच्छाया राग काकुं तु तां विदुः।

3. <u>**अन्यराग काकु**</u> – जब किसी राग की छाया अन्य राग में दिखाई देती है तो उसे *'अन्यराग–काकु'* कहते है। जैसे – श्याम कल्याण, भैरव बहार, जोंगकौंस, कान्हडा आदि। कुछ राग ऐसे भी हैं जो मिश्र नहीं हैं पर उनमें किसी अन्य राग की छाया है। जैसे – मियॉ मल्हार में कान्हडा, कान्हडा में सारंग आदि।

4. <u>**देश काकु**</u> – जो किसी अन्य राग का सहारा ना लेकर अपने देश और स्वभाव से अपने राग में सम्मिलित रहता है उसे *देश काकु* कहते हैं। पं0 शारंगदेव के अनुसार :–

सां देश काकुर्या रागे भवेहेशस्वभावतः।

अर्थात किसी विशेष स्थान, देश अथवा राज्य से जिसका प्रभाव राग पर पड़ता है उसे राग काकु कहते हैं। इसके दो प्रकार माने गये हैं – पहला किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित जो वहाँ की संस्कृति और समाज से प्रभावित हो। दूसरा किसी प्रदेश विशेष से सम्बन्धित – मांड़, पहाडी, भटियाली आदि।

5. <u>क्षेत्र काकु</u> – क्षेत्र शरीर को कहते हैं, अतः राग में अलग–अलग शरीर के प्रति जो काकु विभिन्न रूप धारण करता है उसी को *'क्षेत्र–काकु'* कहते हैं। यह कंठ के गुण से सम्बन्धित है। प्रत्येक संगीतकार का, अपनी आवाज के गुण के अनुसार राग प्रस्तुतिकरण का अलग तरीका होता है। अतः परिणामस्वरुप श्रोता पर अलग–अलग तरह से असर होता है। पं0 शारंगदेव ने ध्वनि के विशेष गुण को क्षेत्र काकु कहा है।

6. <u>यंत्र काकु</u> – वीणा तथा बाँसुरी आदि वाद्य–यंत्रों से उत्पन्न ध्वनि का जो अपना काकु होता है उसे *यंत्र काकु* कहते है। इस यंत्र काकु के द्वारा ही हमारे कान वाद्यों की परस्पर भिन्नता करके उन्हें बिना देखे ही केवल श्रवण मात्र से पहचान लेते है कि यह ध्वनि किस वाद्य की है। इस ध्वनि भिन्नता के कारण विभिन्न वाद्यों के द्वारा उत्पन्न प्रभाव में भी अन्तर आ जाता है। उदाहरण – वीणा द्वारा राग दरबारी के प्रस्तुतिकरण का प्रभाव सितार द्वारा प्रस्तुत राग दरबारी के प्रभाव से भिन्न होगा।

अतः हम कह सकते हैं कि स्वरों को भावुक बनाकर सौन्दर्यानुभूति कराने के लिए काकु का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

<u>पाश्चात्य संगीत में काकु</u> – पाश्चातय संगीत में काकु का अत्यधिक प्रयोग होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि पाश्चात्य संगीत का आधार काकु है। काकु के दो भेद माने गये हैं –

1. इन्टोनेशन(Intonation) – स्वरों का प्रयोग व आवाज के उतार–चढ़ाव को इन्टोनेशन कहते हैं।
2. इनफलेक्शन(Inflection) – यह काकु के समान है। इसमें आवाज की तीव्रता व मंद्रता गुण आते हैं।

भावों को व्यक्त करने के लिए पाश्चात्य संगीत में निम्न अलकारों का प्रयोग होता है।

- **i.** उच्चारण(Accent) – अक्षर पर बल देना
- **ii.** आर्टीकुलेशन (Articulation) – अक्षरों को विशेष रूप से जोड़ने की कला।
- **iii.** मोडूलेशन(Modulation) – स्वरों को घटाना, बढ़ाना, अचानक आवाज बदलना।

अगर सीधे–सीधे स्वर गाए या बजाए तो वह उतने प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकेंगे। इसके लिए आवाज को बढ़ाना/घटाना, जोर से/मध्यम से कम्पन आदि अंलकारों की आवश्यकता होती है। स्वरों की भिन्न–भिन्न आवाजें ही काकु भेद है। काकु का प्रयोग भाव प्रदर्शित करने के लिए भी किया जाता है। पाश्चात्य सिम्पनी आरकेस्ट्रा की रचनाओं में काकु युक्त गायन–वादन होता है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. संगीत में 'काकु' का प्रयोग.......................................के लिए किया जाता है।
2. सांगीतिक ध्वनि की आन्दोलन संख्या.................................... होती है।
3. नाद................................ प्रकार के होते है।
4. भरत ने काकु के ....अंग बताये है।
5. मध्य सा तथा तार सा की आंदोलन संख्या... है।
6. नाद का उॅचा व नीचापन ध्वनि स्त्रोत की .... पर निर्भर करता है।
7. ....नाद संगीतोपयोगी नहीं होता है।

8. नाद की तीन विशेषताएं.. हैं।
9. स्वरों का प्रयोग व आवाज के उतार चढ़ाव को..................................... कहते है।
10. वाद्य यंत्रो से उत्पन्न ध्वनि के काकु को......................... कहते हैं।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. अनाहत नाद को समझाइये।
2. पाश्चात संगीत में काकु पर प्रकाश डालिए।
3. नाद की तीव्रता पर टिप्पणी लिखिए।

3.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ चुके होंगे कि ध्वनि कितने प्रकार की होती है। संगीत में जो ध्वनि प्रयोग की जाती है उसे आहत नाद कहते है और आहत नाद में समान व नियमित आन्दोलन संख्या वाला नाद हमारे संगीत में प्रयुक्त होता है। हमारे आज के स्वर आन्दोलन संख्या पर ही आधारित है। सात शुद्ध स्वर तथा पाँच विकृत स्वरों की नियमित आवृति व आन्दोलन संख्या ही हमारे संगीत को मधुर व कर्णप्रिय बनाती है। जब एक नाद की आन्दोलन संख्या दूसरे नाद से अधिक होती है तो उसे नाद का ऊँचापन तथा जब कम होती है तो उसे नाद का नीचापन कहते है। नाद उत्पन्न करने वाले स्त्रोत पर पूर्णतः आधारित नाद की नियमित आन्दोलन संख्या से मधुर संगीत की उत्पत्ति होती है। स्वर में माधुर्य तथा कभी वैचित्र्य उत्पन्न करने लिए 'काकु' का प्रयोग किया जाता है। संगीत में काकु के प्रयोग से सौन्दर्य वृद्धि होती है। गायन करते हुए अपने मनोभावों को स्वरों द्वारा व्यक्त करने में विशेष प्रकार की आवाज उत्पन्न की जाती है, अर्थात काकु का प्रयोग किया जाता है। गायन को सुन्दर बनाने के लिए काकु का प्रयोग करना कलाकारो के अभ्यास पर संभव होता है। इस इकाई के माध्यम से आप ध्वनि भेदों को समझ कर इनका सही प्रयोग कर सकने में समर्थ हो चुके होंगे।

3.8 शब्दावली

- ध्वनि स्त्रोत – जिस वस्तु से ध्वनि उत्पन्न होती है।
- भावाभिव्यक्ति – भावों को प्रकट करना।
- नियमित कम्पन – प्रत्येक कम्पन की माप समान हो।
- कम्पनांक – कम्पन की प्रति सेकन्ड संख्या।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. सौन्दर्यवृद्धि	2. नियमित	3. दो(आहत व अनाहत)	4. छः
5. 240 व 280	6. कम्पन संख्या	7. अनाहत	
8. तारता, तीव्रता व जाति	9. इन्टोनेशन	10. यंत्र काकु	

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. माथुर, सुश्री मीरा, *संगीत शास्त्र परामर्श*।
2. भातखण्डे, *संगीत शास्त्र भाग–2* ।
3. रानी, डा0 सुभाष, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

4. सिंह, श्री ललित किशोर, ध्वनि और संगीत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1971।
5. साभार गूगल।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 व 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, *संगीत शास्त्र दर्पण*।
4. बंसल, डॉ0 परमानन्द, *संगीत सागरिका*, प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ध्वनि के भेद व संगीतापयोगी नाद पर विस्तार से लिखिये।
2. संगीत में काकु के महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 1 – संगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों की विस्तृत व्याख्या (नाद, स्वर, श्रुति, सप्तक, ताल, लय, लयकारी, ख्याल, ध्रुवपद, धमार, ठुमरी व टप्पा)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द

1.3.1	नाद	1.3.2	स्वर
1.3.3	श्रुति	1.3.4	सप्तक
1.3.5	ताल	1.3.6	लय
1.3.7	लयकारी	1.3.8	ख्याल
1.3.9	ध्रुवपद	1.3.10	धमार
1.3.11	ठुमरी	1.3.12	टप्पा

1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0—101) के चतुर्थ खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे। आप ध्वनि के विज्ञान, महत्व एवं ध्वनि भेदों को भी समझ चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में संगीत की विधाओं से सम्बन्धित परिभाषाओं (स्वर, श्रुति, नाद, सप्तक, लय आदि) के बारे में विस्तार से बताया गया है। गाना, बजाना व नाचना प्रारम्भ से ही मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। इसी प्रवृत्ति ने आगे चलकर कला का रूप धारण किया और जब इसने कला का रूप धारण किया तब उसके स्वरूप बोध की अभिव्यक्ति के लिये स्वर, गीत, श्रुति, वाद्य, नृत्य आदि शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार स्वरूप बोध के लिये प्रयुक्त शब्द ही परिभाषिक शब्द बने। इस इकाई में विभिन्न गायन शैलियों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संगीत के पारिभाषिक शब्दों को समझ सकेंगे तथा इन पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से संगीत एवं भारतीय शास्त्रीय संगीत के शास्त्रीय पक्ष को भी समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- संगीत में प्रयोग होने वाले पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- भारतीय शास्त्रीय संगीत में इन पारिभाषिक शब्दों (श्रुति, स्वर, नाद इत्यादि) के महत्व को समझ सकेंगे।
- इन शब्दों व इनके अन्तर को समझकर अपने गायन अथवा वादन में इनका प्रयोग कर सकेंगे।
- विभिन्न गायन शैलियों को समझ कर उनमें तुलना कर सकेंगे।

1.3 संगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द

प्रस्तुत इकाई में संगीत (गायन तथा वादन) सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत है।

1.3.1 नाद –

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसन्धेः परा पूजा न हि तृप्ते परं सुखम्।। *योगशिखोपनिषद 2.20*

अर्थात – नाद से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं है, नाद अनुसन्धान से बड़ी कोई पूजा नहीं है तथा तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है। यह सन्दर्भ इस बात का दिग्दर्शन करता है कि भारतीय परम्परा में नाद के अनुसंधान तथा नादोपासना का अत्यन्त महत्व है। वेद, उपनिषद, योगदर्शन, व्याकरण तथा संगीत के शास्त्र ग्रन्थों में नाद को अपार महत्व दिया गया है। हृदय का उद्रेक, भाव की संवेदना, ज्ञान का भण्डार तथा विचार की शक्ति – इन सबकी अभिव्यक्ति वाणी के द्वारा ही होती है। वह वाणी स्वरमयी एवं शब्दमयी है और वह स्वर तथा शब्द नाद के अधीन है :–

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।। *संगीत रत्नाकर 1.2.2*

अर्थात् – नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की और पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। वाणी से ही यह सब व्यवहार चलता है। अतः यह सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन है। वाक्यपदीय में भी ऐसा ही कहा गया है कि –

वागेव विश्वा भुवनानिजज्ञे वाच इत।
ससर्वममृतं यच्च मर्त्यमिति श्रुतिः।। *वाक्य. 1.11 2*

अर्थात् वाणी से ही यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ है।

ये समस्त भुवन गिरा से ही जन्म पाये हैं। इस अमर और मर्त्य संसार की जनयिता, वाणी ही है। इसी से इस संसार को नाद का परिणाम कहा गया है। स्वर रूप नाद की विवेचना संगीत–शास्त्र का तो निजी विषय है ही, उसके अतिरिक्त कुछ अंशों में साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनि सिद्वान्त में भी इसकी चर्चा पायी जाती है। नाद की आध्यात्म–विषयक विवेचना तन्त्र, मन्त्र शास्त्र, योगमार्गीय ग्रन्थ तथा मध्ययुगीन सन्तों की वाणी में उपलब्ध होती है। भारतीय दर्शन तथा विविध शास्त्रों में नाद तत्व की सूक्ष्म एवं निगूढ़ रूप से विवेचना की गयी है। यहां हमने मात्र संकेत किया है ताकि संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थी इस दिशा में अनुसंधान करने के लिए अग्रसर हों।

<u>नाद की व्युत्पत्ति</u> – नाद शब्द की सामान्यतः 'नद' धातु से व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका अर्थ होता है अव्यक्त ध्वनि। इसकी उत्पत्ति प्राण तथा अग्नि के संयोग से होती है। जैसे –

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
नकारः प्राणबीजः स्यात् दकारोवह्रिरूच्यते।। *संगीत रत्नाकर 1.3.6*

आकाश का गुण नाद है। समस्त विश्व का कारण होने के कारण उस नाद को पराशक्ति, महेश्वर आदि कहा गया है। वह जो समस्त संसार का चैतन्य है, अद्वितीय है अर्थात् उसके जैसा कोई दूसरा नहीं है, जो आनन्दमय है, जो विश्व में व्याप्त है उसकी हम उपासना करते हैं। यही नहीं संगीत रत्नाकर में यह भी कहा है कि उस नाद की उपासना तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी करते हैं। वस्तुतः उस नाद को आत्मसात करने के कारण ये देवता विश्व में उपासना के योग्य हुए हैं।

<u>नाद के भेद</u> – नाद के दो भेद माने गये हैं – एक अनाहत और दूसरा आहत।

- <u>अनाहत नाद</u> – जो नाद आकाश से स्वयं उत्पन्न होता है उसको अनाहत नाद कहते हैं। सृष्टि के पॉच तत्वों – आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु में से नाद को आकाश का गुण माना जाता है। नारद के अनुसार इसी नाद का, योगी व महात्मा ध्यान करते हैं, उसी अनाहत नाद में देवता रमण करते हैं। साधारण शब्दों में जो बिना किसी आघात के मनुष्य के शरीर में स्वयं उत्पन्न होता है उसे अनाहत नाद कहते हैं। यह मोक्ष प्रदान करने वाला है परन्तु रजंक नहीं होता। अतः यह नाद संगीतोपयोगी नहीं होता।

- <u>आहत नाद</u> – नाद का दूसरा भेद आहत है। किसी वस्तु पर आघात होते ही, चाहे वह आघात फूंकने से हो या घर्षण से हो, वह वस्तु विशेष ढंग से थर्राती या कम्पित होती है। यही कम्पन, ध्वनि

का कम्पन, स्पन्दन या आन्दोलन कहलाता है। आप जान गये होंगे कि बिना किसी आघात के नाद की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। वस्तु पर आघात किये जाने के कारण जो कम्पन होते हैं, वे नियमित और अनियमित दो प्रकार के हो सकते हैं। नियमित कम्पन मधुर ध्वनि उत्पन्न करते हैं और अनियमित कम्पन तीक्ष्ण एवं कर्णकटु ध्वनि पैदा करते हैं। मधुर और कर्णप्रिय ध्वनि के लिए 'नाद' संज्ञा है।

नाद नियमित कम्पनों का समूह है। सुनने के बाद भले ही अखण्ड और अटूट प्रतीत होता हो, परन्तु यथार्थ में वह ध्वनि तरंगों का समूह है।

नाद की उत्पत्ति शरीर में कैसे होती है इस विषय में संगीत मकरन्द में लिखा है कि – सर्वप्रथम आत्मा मन को प्रेरित करता है, तत्पश्चात मन देह में स्थित अग्नि को प्रेरित करता है और फिर अग्नि वायु को प्रेरित करती है। इस प्रकार ग्रन्थि स्थित नाद, क्रम से ऊपर की तरफ चलता है और नाभि, हृदय, कंठ तथा मूर्धा में ध्वनि को धारण करता है। वहाॅ नाद के पाँच भेदों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार हैं – अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट तथा तार। आचार्य मतंग ने इन्हें सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त तथा कृत्रिम कहा है। यह ध्वनि प्रायोगिक अवस्था में तीन प्रकार की होती है – हृदय में स्थित मन्द्र, कंठ में स्थित मध्य तथा मूर्धा में स्थित 'तार' होती है। संगीत मकरन्द में चार प्रकार के वाद्यों तथा पॉचवां मनुष्य कंठ से निकलने वाले पॉच नाद कहे हैं जो इस प्रकार है – नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा देहज।

<u>**नाद की विशेषतायें**</u> – नाद की तीन विशेषतायें अथवा गुण–धर्म माने गये हैं :–

1) तारता अथवा ऊँचा–नीचापन
2) तीव्रता अथवा छोटा–बड़ापन और
3) जाति

1) <u>तारता</u> – नाद की ऊँची–नीची अवस्था को 'तारता' कहते हैं। तारता से हमें पता चलता है कि अमुक ध्वनि कितनी ऊँची अथवा नीची है। इसी गुण के आधार पर ध्वनि के भिन्न रूप बनते हैं जिनको षड्जादि नामों से जाना जाता है। यह आन्दोलन या कम्पनों की कम अधिक संख्या पर निर्भर रहती है। कम्पन संख्या जितनी कम होती है नाद उतना ही नीचा तथा कम्पन संख्या जितनी अधिक होती है नाद उतना ही ऊँचा होता है। ध्वनि कम्पनों की एक सेकेण्ड में उत्पन्न होने वाली संख्या को *आन्दोलन* कहते हैं। नियमित काल में यदि आन्दोलन संख्या कम हो तो नाद नीचा कहलाता है और अधिक हो तो नाद उच्च कहलाता है। पुरूषों की आवाज गंभीर होती है और स्त्रियों की बारीक और टीप वाली होती है। इसका कारण यह है कि पुरूषों की आवाज में जहां कम्पन संख्या अपेक्षाकृत कम होती है वहीं महिलाओं की आवाज में यह अधिक होती है। मध्य सप्तक का *सा* और तार सप्तक का *'सा'* का अन्तर उच्चता–नीचता या पिच का अन्तर होता है। मध्य सा के कम्पन यदि 240 प्रति सेकेण्ड है तो तार सा के कम्पन 480 प्रति सेकेण्ड होंगे। उच्च–नीच का अभिप्राय आप समझ गये होंगे।

2) <u>तीव्रता अथवा छोटा–बड़ापन</u> – नाद का यह गुण धर्म आघात की शक्ति पर निर्भर करता है। आघात जितना जोरदार होता है, नाद उतना ही बड़ा और दूर तक सुनायी देता है। आघात जितना हल्का या क्षीण होता है, नाद उतना ही छोटा, कम दूरी तक सुनायी देने वाला और कम टिकने वाला होता है। आप इस बात को ध्यान में रखें कि नाद का यह गुण कम्प–विस्तार पर निर्भर करता है। कम्पन का समय जितना अधिक होगा, आवाज उतनी ही तीव्र या बड़ी होगी ओर यह समय जितना कम होगा, आवाज उतनी ही सूक्ष्म या छोटी होगी।

3) <u>नाद की जाति अथवा गुण</u> – नाद का तीसरा गुण उसकी जाति है। इसी कारण विभिन्न नाद एक दूसरे से अलग प्रतीत होते हैं, जैसे मनुष्य का स्वर, वाद्य की झंकार, बादल की गड़गड़ाहट इत्यादि। इसी कारण विभिन्न वाद्यों की आवाज एक दूसरे से अलग पहचानी जा सकती है। नाद का माधुर्य उसकी जाति ही है।

इस प्रकार आप जान गये हैं कि :–

- संगीत का आधार नाद है।
- नाद के दो भेद हैं।
- अनाहत नाद योगियों द्वारा साधा जाता है तथा रंजक नही होता है।

- आहत नाद प्राण तथा अग्नि के संयोग से आघात करने पर उत्पन्न होता है।
- आहत नाद के पॉच भेद हैं।
- गुण धर्म के आधार पर नाद के तीन गुण तारता, तीव्रता तथा गुण है।

<u>**1.3.2 स्वर**</u> – संगीत का मूलभूत उपादान स्वर है। संगीत चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य, स्वर पर आधारित होता है। इसको पाश्चात्य संगीत में नोट कहते हैं। स्वरों के विभिन्न समुदायों से संगीत का निर्माण होता है।

<u>**स्वर का अर्थ एवं परिभाषा**</u> – जब हम स्वर की परिभाषा पर विचार करते हैं तो उसके लक्षण के रूप में भरत का कोई वचन उपलब्ध नहीं होता। मतंग एवं उनके परवर्ती ग्रन्थकारों ने स्वर की परिभाषा कही है। यहां हम उन पर विचार करेंगे।

राजृ दीप्ताविति धातोः स्वशब्दपूर्वकस्य च।
स्वयं यो राजते चस्मात् तस्मादेष स्वरः स्मृतः।। *वृह. 1.4.54*

राजृ धातु में स्व शब्द पूर्व में लगाने से स्वर शब्द बनता है। क्योंकि यह स्वयं चमकता है, इसलिये इसे स्वर कहते हैं। फिर यह स्वर क्या है? इस प्रश्न का उत्तर ग्रन्थकार स्वयं देते है। मतंग कहते हैं कि – *राग जनको ध्वनिः स्वर इति* अर्थात् राग की जनक ध्वनि स्वर है। संगीत रत्नाकर में कहा गया है – *स्वयं जो राजते नादः स्वरः सः परिकीर्तितः* अर्थात् जो नाद स्वयं चमकता हो, स्वतः रज्जन प्रदान करने वाला हो, वही स्वर है। संगीत रत्नाकर की टीका करते हुए सिंह भूपाल ने लिखा है कि जो ध्वनि श्रुतियों के अनन्तर उत्पन्न होती है अर्थात् अनुरणनात्मक हो और जो श्रोतृधित्त को सुखद हो ऐसे नाद को स्वर कहते हैं। संगीत दर्पण में भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया गया है :–

श्रुत्यनन्तर भावित्वं यस्यानुरणनात्मकः।
स्निग्धश्च रज्जकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते।
स्वयं यो राजते नादः स स्वर परिकीर्तितः ।। *संगीत दर्पण 54.55*

पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने अपनी कृति 'संगीतांजली' भाग–चार, पृष्ठ–3 पर स्वर की परिभाषा इस प्रकार दी है – *"वह अनुरणानात्मक नाद जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न होता है, जो रंजक हो, जो श्रोत्रचित्त को सुख देने वाला हो, जो निश्चित श्रुति स्थान पर रहते हुए भी अपनी जगह से ऊपर या नीचे हटने पर विकृत होता है, और आत्मा की सुख–दःख आदि संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायक हो, उसे 'स्वर' कहते हैं"*।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल नाद के रंजक होने से वह नाद स्वर नहीं बन सकता। स्वर कहलाने के लिये उसका अन्य नादों या ध्वनियों से कोई सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है। हमारे यहां मूलभूत स्वर को षड्ज या 'सा' कहते हैं। संगीत के समय कोई न कोई मूल स्वर कायम करना पड़ता है वह चाहे जिस ऊंचाई का हो। वह स्वर प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न हो सकता है। इसी सा के आधार पर अन्य 6 स्वर भी स्थापित किये जा सकते हैं।

<u>**शुद्ध एवं विकृत स्वर**</u> – षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद ये सात स्वर हैं। प्रयोग के समय इन्हें सा, रे, ग, म, प, ध और नि कहा जाता है। इन स्वरों को दो वर्गों में बांटा जाता है – शुद्ध और विकृत। शुद्ध स्वर वह है जो अपने स्वाभाविक या मूलभूत स्थान पर स्थित है। विकृत वह है जो अपने मूल स्थान से हट जाता है चाहे वह नीचे की दिशा में हो या ऊपर की। आचार्य भरत के अनुसार स्वर की अन्तिम श्रुति पर 'शुद्ध' अवस्था होती है। ये स्वर जब ऊपर चढ़ जाते हैं तो उनकी विकृति होती है। शुद्ध स्वर सप्तक में केवल दो ही विकृत स्वर भरत ने माने हैं – (1) अंतर गांधार, जो अपनी द्विश्रुतिक स्थिति से चतुःश्रुतिक या चार श्रुतिवाला बन जाता है (2) काकली निषाद, जो अपनी दोश्रुति वाली स्थिति को छोड़कर दोश्रुति ऊपर चढ़ जाता है। वर्तमान काल में भारतीय संगीत में कुल 12 स्वरों का प्रयोग किया जाता हैं जिनमें 7 स्वर शुद्ध तथा 5 विकृत हैं। सा और प अचल एवं शुद्ध है। रे, ग, ध तथा नि स्वर शुद्ध होने के साथ–साथ जब अपने स्थान से नीचे उतरते हैं तो उनकी विकृत संज्ञा होती है। मध्यम स्वर अपने स्थान से ऊपर प्रयोग होता है तो उस विकृत अवस्था को तीव्र की संज्ञा प्रदान की जाती है।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो प्रारम्भ में तीन स्वर थे जिन्हें उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहा जाता था। वेदों की रचना इन्हीं स्वरों में हुई तथा वेदों के सस्वर उच्चारण में इन्हीं का प्रयोग किया जाता था। धीरे–धीरे अन्य स्वर दृष्टिगोचर होने लगे। सामगान सात स्वरों में होने लगा। उन सात स्वरों के नाम – क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य थे। इन्हें साम के स्वर कहा गया तथा षड्ज ऋषभ आदि को गान्धर्व अथवा लौकिक स्वर कहा गया। बाद में गान्धर्व स्वर शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने लगे। ये ही आज तक प्रचलित हैं। शिक्षा ग्रन्थों में वैदिक उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सामवैदिक स्वरों की साम्यता गान्धर्वा स्वरों से की। जैसे –

उदात्ते निषाद गांधारों अनुदात्ते ऋषभ धैवतौ।
स्वरित प्रयावाहचेते षड्जमध्यम पंचमाः।।

अर्थात् उदात्त से निषाद और गांधार, अनुदात्त से ऋषभ तथा धैवत एवं स्वरित से षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार सामगान के स्वरों का सम्बन्ध भी लौकिक स्वरों से बताया जो इस प्रकार है :–

सामस्वर	लौकिकस्वर
प्रथम	मध्यम
द्वितीय	गांधार
तृतीय	रिषभ
चतुर्थ	षड्ज
मन्द्र	धैवत
अतिस्वार्य	निषाद
क्रुष्ट	पंचम

सामवेदियों का स्वर सप्तक अवरोही क्रम में था अर्थात् प्रथम स्वर सबसे ऊँचा, द्वितीय उससे नीचा, तृतीय द्वितीय से नीचा आदि–आदि।

सभी शास्त्रकारों ने भारतीय संगीत में सात शुद्ध स्वरों की मान्यता स्वीकार की है। लेकिन विकृत स्वरों की संख्या विकास क्रम में अनेक शास्त्रकारों के द्वारा अलग–अलग भी करी गयी। जैसे भरत ने सात शुद्ध तथा दो विकृत स्वर माने। शारंगदेव ने 7 शुद्ध तथा सात विकृत स्वर माने। पंडित आहोबल ने 7 शुद्ध तथा 22 विकृत स्वर माने। भातखण्डे जी ने 7 शुद्ध तथा 5 विकृत स्वर कहे हैं। आज के संगीत में यही मान्य है। हालांकि श्रुति प्रयोग से एक स्वर के अलग–अलग रूप भी दृष्टि गोचर होते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर ही की गयी है जिसमें 13 श्रुति, 9 श्रुति, 7 श्रुति, 6 श्रुति संवाद जो ध्यान में रख कर ही ग्राम बनता है जिसे आज सप्तक कहा जाता है इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

1.3.3 श्रुति – नाद तथा स्वर की जानकारी आपको हो गयी है। अब यहाँ हम श्रुति की चर्चा करेंगे। श्रुति भारतीय सप्तक का मूलाधार है। प्राचीन काल से ही भारतीय स्वरों की स्थापना श्रुतियों के आधार पर करने का सिद्धान्त संगीत विद्वानों को मान्य चला आ रहा है। जो महत्व ईरानी संगीत में हंगाम और पाश्चात्य संगीत में आन्दोलनों को प्राप्त है वही महत्ता भारतीय संगीत क्षेत्र में श्रुति का स्थान दर्शाती चली आ रही है। श्रुति भारतीय संगीत की आत्मा है। आत्मा के तत्व को जानने वाला मानव परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। सभी प्रकार की चिंताओं और दुःखों से मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रुति की साधना से संगीतज्ञ सांसारिक चिंताओं से विमुक्त होकर सच्चिदानन्द भगवान के दर्शन करता है। जैसे

अतो गीत प्रपच्चस्य श्रुत्यादेस्त स्वदर्शनात्।
अपि स्यात्सच्चिदानन्दरूपिणः परमात्मनः।।
प्राप्ति प्रवृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत।

अर्थात् जैसे अग्निशिखा के उद्देश्य में तत्पर मानव को मणि लाभ होता है उसी प्रकार गीत की श्रुति के तत्व दर्शन से सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति होती है। श्रुतियों का ज्ञाता मानव अपनी

आत्मा को शान्ति प्रदान करता है। इन सूक्ष्म ध्वनियों में खोकर दुःख और चिन्ताओं से विमुक्त हो जाता है। इसी तथ्य को दर्शाते हुए याज्ञवल्क्य स्मृति का कथन है कि —

वीणावादनतत्वज्ञ श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्ग स गच्छति।।

अर्थात् वीणावादन के तत्व को जानने वाला, श्रुतियों की जाति आदि को पहचानने वाला, कुशल और ताल का ज्ञाता मानव बिना प्रयत्न के ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वीणा—वादन का तत्व आत्मा की शान्ति एवं रंजकता प्रदान करता है। रंजकता श्रुतियों की जाति आदि के ज्ञान से प्राप्त होती है। किसी श्रुति का प्रयोग किस स्वर पर भावोत्पत्ति के हेतु करना है और ताल अर्थात् मर्यादा के नियमों का पालन किस प्रकार करना है, मानव को जब यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह इसका यथा समय प्रयोग कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। आप जान गये होंगे कि भारतीय संगीत का भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक धरातल पर चिंतन हुआ। श्रुति तत्व भी उनमें एक है।

<u>श्रुति की परिभाषा</u> — श्रुति किसे कहते हैं? हम यहाँ इस बात की चर्चा करेंगे। संगीतोपयोगी नाद या ध्वनि, जो कान से सुनाई दे, जो रंजक हो तथा कान, मन और आत्मा को सुख प्रदान करे, आनन्द दे, वही श्रुति है। इसके अतिरिक्त अरंजक ध्वनि श्रुति संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकती। संगीत, विद्वानों द्वारा स्वरों के सूक्ष्मांतरों के निर्देशन का साधन है। इसलिए समय—समय पर इस पर विचार हुआ है।

श्रुति की परिभाषा हम इस प्रकार भी कर सकते हैं — *" वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो कानों को साफ—साफ सुनाई पड़े तथा जो एक—दूसरे से स्पष्ट तथा अलग पहचानने में आ सके, उसे श्रुति कहते हैं। "*

श्रुति शब्द वेद के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वेद क्योंकि श्रुत परम्परा के पढ़े जाते थे इसीलिए वेदों को श्रुति कहा जाता है। वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण होता था। स्वरों के उच्चारण प्रकार को श्रुति कहा जाने लगा। लेकिन संगीतोपयोगी श्रुति जो भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होती है, उसका वर्णन हमें नाट्यशास्त्र से मिलना प्रारम्भ होता है। भरत ने श्रुति की स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं की है। उन्होंने नाट्यशास्त्र में केवल इतना ही कहा है कि *'तत्र व द्वाविंशति श्रुतयः'* अर्थात् श्रुतियां बाईस हैं। मतंग ने वृद्वदे्शी में श्रुति का विवेचन इस प्रकार किया है।

श्रू श्रवनो चास्च धातोः क्तिन्प्रत्यय समुद्भवः।
श्रुतिशब्दः प्रसाध्योऽयंशब्दज्ञैर्भाव साधनः।। *वृह0 26*

अर्थात् सुनने के अर्थ वाली श्रू धातु में क्तिन प्रत्यय लगाकर श्रुति शब्द बनता है। शारंगदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ में *श्रुयन्त इति श्रुतयः* ऐसी परिभाषा दी गयी है जिसका अर्थ है जो सुनाई दे वही श्रुति है। आचार्य विश्वावसु के अनुसार 'श्रवणेन्द्रियग्रह्चत्वात् ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत — अर्थात् श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाने के कारण ही ध्वनि को श्रुति कहते हैं।

जिस ध्वनि का गायन में नित्य प्रयोग किया जा सके, जो एक दूसरे से पृथक पहचानी जा सके, वहीं संगीत की श्रुति है ऐसा अभिनवरागमंजरी मे कहा गया है। पंडित अहोबल ने संगीतपारिजात में श्रुति की परिभाषा देते हुए श्रुति का स्वर के साथ सम्बन्ध बताया है।

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्नाः श्रावणत्वेन हेतुना।
अहि कुण्डवत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्यता।। *सं0पा0 38*

अर्थात् जो सुनी जाये वही श्रुति है। श्रुति और स्वर में भेद उतना ही है जितना सांप और उसकी कुण्डली में। यही भेद शास्त्रसम्मत है।

इन सभी परिभाषाओं का मंथन करते हुए वाग्गेयकार संगीत मार्तण्ड पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ने अपनी पुस्तक संगीतान्जलि के चतुर्थ भाग में लिखा है कि जो स्वरों की शुद्ध और अशुद्ध अथवा अविकृत और विकृत अवस्था का कारण हो जो स्वरों के ऊँचे या नीचे अन्तर को नापने का मानदण्ड हो, जो स्पष्ट रूप से प्रयोग में आने पर स्वर कहलाती हो और प्रयोग में न आने की अवस्था में जो श्रुति कहलाती हो, जो स्वर से भिन्न होकर भी अभिन्न हो एवं गमक आदि प्रयोगों में छिपी हुई रहकर जो रस की अभिव्यक्ति का कारण हो, ऐसी अनुरणनात्मक और अनुरज्जक ध्वनि को श्रुति कहते हैं।

विद्वानों के उपरोक्त प्रवचनों से यह तो स्पष्ट है कि सभी विद्वान श्रुति परिभाषा के सम्बन्ध में *'जो सुनाई दे, वह श्रुति है'* से सहमत हैं। वास्तव में सुनी जाने वाली अनेक ध्वनियां ऐसी होती है

जिनमें रन्जकता नहीं होती, आकर्षण नहीं होता और मधुरता का अभाव रहता है। ऐसी ध्वनियां संगीतोपयोगी नहीं होती। इसलिये कलाकार केवल उसी श्रुति की उपासना करता है जिसमें रंजकता हो, जो स्पष्ट रूप से सुनी, पहचानी और प्रयुक्त की जा सके, जो भावाभिव्यक्ति में समर्थ हो, जो स्वरों की शुद्ध और अशुद्ध तथा अविकृत और विकृत अवस्था का कारण हो, जो स्वर की तारता को मापने का मापदण्ड हो अर्थात् श्रुति ध्वनि का वह सूक्ष्मतम भाग है जिसमें ध्वनि का परिमाण लगाया जा सकता है, जो राग में प्रयुक्त होने पर स्वर और अप्रयुक्तावस्था में अपने निकटवर्ती स्वरों की सहायता करें, जो स्वर का एक अभिन्न अंक हो, जो अनुरणानात्मक एवं अनुरच्जक हो और गायन—वादन में विभिन्न गयक प्रकारों द्वारा मधुरता एवं आकर्षण का संचार करे, ऐसी ध्वनि ही सच्ची श्रुति और संगीतोपयोगी ध्वनि कही जा सकती है। यही ध्वनि वीणा वादन द्वारा प्राप्त होती है। इसी ध्वनि का प्रयोग विभिन्न रसों के संचार हेतु किया जाता है। यही ध्वनि आत्मा को शान्ति प्रदान करती है और यही ध्वनि मोक्ष मार्ग की ओर प्रेरित करती है।

<u>श्रुति संख्या</u> — यह तो निश्चित हो गया कि संगीतोपयोगी ध्वनि को श्रुति कहते हैं। जब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि श्रुतियों की संख्या कितनी है। वस्तुतः नाद के एक स्थान में असंख्य नाद विचरते हैं। उनमें से जो सुनी जा सके वह श्रुतियां कही जाती हैं और श्रुतियां जब प्रयोग में लायी जाती हैं तो स्वर का रूप धारण कर लेती हैं। अस्पष्ट एवं सुनाई न देने वाले नाद सहायक नादों का रूप धारण कर निकटवर्ती स्वर की सहायता करते हैं। उसमें रंजकता का उत्पादन करते हैं। स्वर का रूप धारण करने वाली श्रुति को स्वर श्रुति और शेष श्रुतियों को नाद श्रुति कहते हैं। सुनी जाने वाली श्रुति के 22 भेद हैं। हृदय स्थान में 22 नाड़ियां हैं उन सभी के नाद स्पष्ट सुने जाते हैं। इसलिये उन्हीं को श्रुतियां कहते हैं। श्रुतियां संख्या में 22 हैं। भरत, मतंग, नारद, शारंगदेव, लोचन, सोमनाथ तथा आधुनिक सभी विद्वानों ने नाद के एक स्थान से 22 श्रुतियों का होना ही माना है। कोहल ने अपने ग्रन्थ 'कोहलम्' में 66 श्रुतियों की चर्चा की है। कुछ विद्वानों के विचारानुसार यह श्रुतियां मन्द्र, मध्य और तार अर्थात् तीनों स्थानों की कुल मिलाकर $22 \times 3 = 66$ श्रुतियां थी। इसी तथ्य को पंडित ओंकार नाथ ठाकुर ने 'संगीतांज्जली' में स्पष्ट किया है।

<u>श्रुति नामकरण</u> — जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि नाद के एक स्थान में 22 श्रुतियां हैं और ये श्रुतियां एक दूसरे से क्रमिक ऊँची ध्वनि उत्पादन करने का कारण है। चूंकि ये श्रुतियां एक दूसरे से क्रमिक ऊँचे स्थान को प्राप्त कर नाना भावों को व्यक्त करती है, इसीलिये विद्वानों ने इन श्रुतियों के लिये अलग—अलग नाम रखे। जो इस प्रकार हैं :—

श्रुति संख्या	नाम	श्रुति संख्या	श्रुति नाम
1	तीव्रा	14	क्षिति
2	कुमुद्वति	15	रक्ता
3	मन्दा	16	सन्दीपनी
4	छन्दोवती	17	आलापिनी
5	दयावती	18	मदन्ती
6	रंजनी	19	रोहिणी
7	रक्तिका	20	रम्या
8	रौद्री	21	उग्रा
9	क्रोधा	22	क्षोभिणी
10	वज्रिका		
11	प्रसारिणी		
12	प्रीति		
13	मार्जनी		

भरतादि सभी आचार्यो ने इन्हीं नामों का उल्लेख किया है। दत्तिल ने तथा नारद के कुछ अलग नाम बताये हैं फिर भी सर्वमान्य 22 नाम वही है जिनका हमने तालिका में संकेत किया है।

<u>श्रुति जाति</u> – विभिन्न प्रकार की भावनाओं से ओतप्रोत ये 22 श्रुतियां अपनी प्रकृति के अनुसार तीन अथवा चार प्रकारों में बंट जाती है। प्राचीन आचार्यो ने उच्च एवं रूक्ष ध्वनि को वातज, गम्भीर और धनशील ध्वनि को पित्तज, स्निग्ध और सुकुमार ध्वनि को कफज तथा तीनों प्रकारों के मेल को सन्निपातज कहा है। एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार श्रुतियों की 5 जातियां कही गयी हैं। निम्न तालिका में श्रुति की जाति, रस तथा चिन्तावस्था स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

क्र.सं.	नाम जाति	नाम श्रुति	रस	चित्तावस्था
1	दीप्ता	तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा	वीर, अद्भुत	उत्साह, विक्षेप
2	आयता	कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसाारिणी, संदीपनी, रोहिणी	श्रृंगार, हास्य	विस्तृत
3	करूणा	दयावती, आलपिनी, मदन्तिका	करूणा, रौद्र	क्षोभ, दुःख, वेदना
4	मृदु	मन्दा, रति, प्रीति और क्षिति	बीभत्स, भयानक, दास्य, सख्य, वत्सल	विकास
5	मध्या	छन्दोवती, रज्जनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या और क्षोभिणी	शान्त	शान्ति अर्थात् पूर्ति

<u>श्रुति और स्वर</u> – नाद श्रवणावस्था में श्रुति और व्यक्तावस्था में स्वर कहा जाता है। भारतीय संगीत में यह विशेषता प्राचीन काल से ही पायी जा रही है कि यहां नाद के एक ही स्थान में 22 नादों का प्रयोग होता चला आ रहा है। जो नाद प्रयुक्त नहीं हुआ वह श्रुति और जो प्रयुक्त हो गया वह स्वर नाम से पुकारा गया। इस तथ्य से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के सभी विद्वान एवं कलाकार सहमत हैं। मतंग मुनि ने श्रुति और स्वर के पारस्परिक सम्बन्ध में जाति और व्यक्ति, मुख और दर्पण, कारण और कार्य, क्षीर और दधि तथा प्रदीप और घट की झलक देखते हैं। पंडित दामोदर स्वर को आकाश और श्रुति को पक्षी का विशेषण प्रदान करते हैं। उनके कथानुसार जैसे आकाश में पक्षी विचरता है वैसे ही स्वर में श्रुति की झांकी दीख पड़ती है। जैसे तेल में चिकनाहट और लकड़ी में अग्नि विराजमान है वैसे ही स्वर में श्रुति के दर्शन होते हैं। जैसे आकाश में वायु और बिजुरी में चमक रहती है वैसे ही स्वर में श्रुति का विचरण होता है।

<u>श्रुतियों पर स्वर स्थापना</u> – श्रुतियों को मुख्य सात स्वरों में बांटा गया है। इस विभाजन के लिये 'चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमा। द्वै द्वै निषादगांधारौ तिस्त्री ऋषमधैवतौ'। अर्थात् षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों के लिये चार–चार, ऋषभ और धैवत स्वर के लिये तीन–तीन तथा गांधार और निषाद के लिये दो–दो श्रुतियां निश्चित करने का सिद्धान्त प्राचीन काल से ही चला आ रहा है जो सभी युगों के विद्वानों एवं कलाकारों को मान्य है।

<u>1.3.4 सप्तक</u> – भारतीय संगीत में सप्तक का अर्थ सात स्वरों का क्रमिक या सिलसिलेवार समूह है। दूसरे शब्दों में सात स्वरों के समूह को जब एक क्रम में कहा जाता है अथवा लिखा जाता है, तब उसे सप्तक कहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सप्तक में सातों स्वर क्रमानुसार होते हैं। उदाहरण के लिए – सा ,रे, ग, म, प, ध, नी यह एक सप्तक हैं। पाश्चात्य संगीत में सप्तक को 'आक्टेव' के नाम से जाना जाता है, जो वस्तुतः मध्य सा से तार सा तक आठ स्वरों का सूचक है। सप्तक में सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त पाँच विकृत स्वरों का भी समावेश होता है। इस प्रकार एक सप्तक में मोटे तौर पर 12 स्वर होते हैं।

ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार किसी संगीत–प्रणाली का स्वर सप्तक संवादी स्वरों से बनता है, जिसका निर्धारण वैज्ञानिक प्रक्रिया से किया जाता है। प्राचीन संगीत में संवाद का अत्यधिक महत्व था। भरत या शारंगदेव को सा–म तथा सा–प दोनों संवाद मान्य थे। सा–म संवाद नौ श्रुतियों वाला संवाद कहलाता था और सा–प संवाद तेरह श्रुतियों वाला संवाद कहलाता था। संगीत–पारिजात के रचियता पंडित अहोबल ने सा–प संवाद को सप्तक की रचना का आधारभूत तत्व कहा है। आधुनिक ध्वनि विज्ञान में निम्न तीन संवाद प्रमुख रूप से माने जाते हैं – (1) सा–सां (2) सा–प (3) सा–म। इन तीनों में पहला संवाद सबसे श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि ये दोनों स्वर एक साथ गाये–बजाने पर इतने अधिक एक रूप हो जाते हैं कि दोनों में कोई भिन्नता नज़र नहीं आती। उसके बाद सा–प का

संवाद आता है, जिनमें परस्पर सम्बन्ध डेढ़गुना कम्पनों का है। सा–प संवाद को आधुनिक ध्वनि विज्ञान में स्वतंत्र स्थान नहीं दिया जाता। क्योंकि यह प–सां उलटकर पैदा होने वाला सम्बन्ध है।

भारतीय स्वर सप्तक का श्रीगणेश उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों के द्वारा आदिकाल में ही हो चुका था। वेद मन्त्रों का गायन तीन स्वरों में होता था। पाणिनि ने इन्हीं तीन प्रकार के स्वरों का सम्बन्ध सात स्वरों के साथ बताया है। जिसके आधार पर उदात्त का गांधार एवं निषाद, अनुदात्त का ऋषभ एवं धैवत तथा स्वरित का सम्बन्ध षड्ज, पंचम तथा मध्यम स्वर से है। इसके अतिरिक्त सामगान के कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्थ ये सात स्वर विकसित हुए जिनका सम्बन्ध एक तरफ उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन तीन स्वरों के साथ तथा दूसरी तरफ षड्ज, ऋषभ आदि स्वरों के साथ बताया गया। इस प्रकार वैदिक काल में ही भारतीय सप्तक का विकास हो चुका था। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में इन सात स्वरों को 22 श्रुतियों के अन्तर्गत स्थापित किया। षड्ज तथा मध्यम दो ग्रामों के स्वरों के आधार पर दो प्रकार का सप्तक बनाया। निम्न तालिका में भरत के स्वर सप्तक को स्पष्ट करके दिखाया गया है –

श्रुति क्रम	श्रुति नाम	षड्जग्रामिक स्वर	मध्यमग्रामिक स्वर
1	तीव्रा	–	–
2	कुमुद्वती	काकली निषाद	काकली निषाद
3	मन्दा	–	–
4	छन्दोवती	षड्ज	षड्ज
5	दयावती	–	–
6	रंजनी	–	–
7	रक्तिका	ऋषभ	ऋषभ
8	रौद्री	–	–
9	क्रोधा	गान्धार	गान्धार
10	वज्रिका	–	–
11	प्रसारिणी	अन्तर गान्धार	अन्तर गान्धार
12	प्रीति	–	–
13	मार्जनी	मध्यम	मध्यम
14	क्षिति	–	–
15	रक्ता	–	–
16	सन्दीपनी	–	–
17	आलापिनी	पंचम	पंचम
18	मदन्ती	–	–
19	रोहिणी	–	–
20	रम्या	धैवत	धैवत
21	उग्रा	–	–
22	क्षोभिणी	निषाद	निषाद

<u>पाश्चात्य स्वर सप्तक</u> – भरत के स्वर सप्तक में षड्ज–पंचम भाव का महत्व देखते हुए यूनान के गणित शास्त्री एवं पाईथागोरस ने आन्दोलन संख्या पर आधारित षड्ज–पंचम भाव सिद्वान्त के अनुसार एक नवीन सप्तक बनाया। इसे पाईथागोरस स्केल या सप्तक कहते हैं। इसमें सा की आन्दोलन संख्या 240 मानकर अन्य सभी स्वरों के मान स्थापित किये गये।

1.3.5 ताल – भारतीय संगीत में ताल–परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। ताल लय को दर्शाने की क्रिया है। संगीत में विभिन्न स्वरों के बीच जो अंतराल होता है, उसको नापने के लिये ताल की क्रिया आरम्भ होती है। ताल शब्द तल धातु से प्रतिष्ठा अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थात् गीत की प्रतिष्ठा ताल पर आधारित होती है। प्राचीन काल में मात्रा गिनने तथा ताल दर्शाने के लिये कुछ व्यक्ति नियुक्त होते थे।

ताल की परिभाषाएं :–

- कुछ निश्चित मात्राओं के उस समूह को ताल कहते हैं जो धा, ना, धी, धिं, किट, तक, गदि गन, तिरकिट आदि वर्णों से निर्मित होते हैं और जो तबला–पखावज आदि वाद्यों पर बजाये जाते हैं।

- आचार्य शारंगदेव के अनुसार :

  तालस्तल प्रतिष्ठायाम् इति धार्तोधञि स्मृतः।
  गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।

  अर्थात गीत, वाद्य एवं नृत्य की प्रतिष्ठा ताल से हुई है तथा प्रतिष्ठा वाचक धातु रुप *तल* से ताल की उत्पत्ति हुई है।

- भरत मुनि के अनुसार – *"संगीत में गायन व वादन की लंबाई नापने का साधन, ताल है"*।

"ताल का मुख्य उद्देश्य संगीत में लय कायम करना है"।

ताल के दस प्राण – नाट्यशास्त्र में ताल के दस प्राण बताये हैं – काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार।

ताल के प्रकार – ताल के मुख्य रूप से दो प्रकार है – मार्गी तथा देशी ताल ।

भरत ने पॉच मार्ग ताल बताये हैं – *चंच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, संपक्वेष्टक और उद्घट्ट।* इनमें से पहले दो मुख्य हैं क्योंकि ये चतुरस्र और त्रयस्त्र जाति के प्रतिनिधि कहे जाते हैं।

मार्ग तालों के प्रकारों से ही देशी तालों की उत्पत्ति हुई। संगीत रत्नाकर के अनुसार देशी तालों की संख्या 120 मानी गयी है। वर्तमान समय में अनेक तालें प्रचार में हैं। ताल के बिना संगीत की प्रस्तुति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित तालों की विशेषता इस प्रकार है :–

1. तालों में अलग–अलग मात्रायें होती है।
2. उन मात्राओं के विभाग होते हैं।
3. विभागों को खाली तथा भरी से दिखाया जाता है।
4. तीनताल आदि तालें सब तरह यानि द्रुत, मध्य, विलम्बित के लिये प्रयोग की जाती है।
5. दीपचन्दी, धमार, सूलताल आदि तालें विशेष प्रकार की गायकी के लिए प्रयुक्त होती है।
6. कहरवा, दादरा आदि ताले चंचल मानी गयी है तथा सुगम संगीत के लिये उपयोगी हैं।
7. गंभीर तालों को पखावज पर बजाया जाता है।
8. तबले पर बजने वाली तालों के बोल बन्द तथा पखावज पर बजने वाली तालों के बोल खुले होते हैं।
9. तबले तथा पखावज आदि अवनद्ध वाद्यों पर बजाये जाने बोलों को 'पाटाक्षर' कहा जाता है।

1.3.6 लय – भारतीय संगीत के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'श्रुति' इसकी जननी तथा 'लय' जनक हैं। यह सत्य है कि संगीत का आधार स्वर एवं लय ही है।

सामान्यतः लय शब्द के दो अर्थ होते हैं – पहला सामान्य शाब्दिक तथा दूसरा परिभाषिक। लय का स्पष्ट शाब्दिक अर्थ है संयोग, एकरूपता, मिलन। जब किसी की आवाज किसी स्वरकलिका की ध्वनि से मिल जाती है, तो हम कहते हैं कि गायक ने लय के साथ श्रुति पर भी अधिकार प्राप्त

कर लिया है। जब हमारा मस्तिष्क किसी वस्तु अथवा विचार में लीन हो जाता है तो हम कहते हैं कि यह 'लय' की स्थिति है। इस प्रकार लय का प्रयोग विभिन्न सन्दर्भो और अर्थो में किया जाता है।

पारिभाषिक अर्थ में लय को तालों एवं काल माप का आधार माना जाता है। प्रकृति जगत में प्रत्येक पदार्थ किसी गति के अधीन है जो उसकी लय है। उसे उस गति के अनुशासन में ही रहना होता है। इसी प्रकार संगीत में स्वर और गीत की प्रस्तुति लय के आधार पर ही की जाती है। अभिनव गुप्त ने कहा है कि *'कलायां एवं च लयं बिना न स्वरूप लाभः'* अर्थात् लय के बिना क्रिया के स्वरूप का लाभ नहीं हो सकता।

<u>लय की परिभाषाएं :</u>

• संगीत रत्नाकर के अनुसार – **'कियानान्तर विश्रांति लयः'** अर्थात क्रिया के अन्त में विश्रांति को लय कहते है।

• अमरकोश के अनुसार – **'किया विश्रांति लयः'** अर्थात दो क्रियाओं के बीच के अन्तराल को लय कहते हैं।

लय के तीन प्रकार हैं – द्रुत, मध्य तथा विलम्बित।

'अथ त्रयो लयः सिद्धा द्रुत मध्य विलम्बिताः।'

द्रुत शीघ्रतम है। उससे दुगुना समय लेने पर वह मध्य कहलाती है तथा मध्य से दुगुना समय लेने पर वह विलम्बित कहलाती है। वैसे इन लयों के बीच कोई निश्चित रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती, इन्हें सापेक्षिक माना जाना चाहिए।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब लय को नापा जाता है तो कला एवं मात्रा से नापा जाता है और उस कला एवं मात्रा में जितना समय लगता है उसी के अनुसार लय निर्धारित होती है। जैसे कोई रचना आठ मात्रा की है तो जितना समय आठ मात्रा में रचना के गाने में लग रहा है वह मध्य लय मान लें और उसी आठ मात्रा की रचना को यदि 16 मात्रा के समय काल में यानि धीमी लय करके दुगुने समय में गाया जाएगा तो वह विलम्बित लय कहलाएगी, और यदि इसी आठ मात्रा के गीत को आधे यानि 4 मात्रा काल गाया जाएगा तो गति तेज हो जाएगी। यह द्रुत लय कहलाएगी। अब आप समझ गये होंगे कि द्रुत लय से दुगुने समय के कारण मध्यलय तथा मध्यलय के दुगुने समय लेने पर विलम्बित लय बनती है। यही संगीत का सिद्धान्त है।

<u>1.3.7 लयकारी</u> – भारतीय संगीत में कलात्मक रूप को सुदृढ़ बनाने के लिये कई प्रकार की लयकारियों का प्रयोग किया जाता है। मध्यलय से सवाई लय को कुवाड़ी लय कहते हैं अर्थात् जब 4 मात्रा काल में 5 मात्रा की चीज गायी जाये तो वह सवाई अर्थात् कुवाड़ी लय कहलायेगी। इसी प्रकार मध्य लय से डेढ़ गुनी लय को आड़ी लय कहते हैं। इसमें 4 मात्रा में 6 मात्रा की चीज गायी जाती है। मध्यलय से पौने दो दुनी लय को बियाड़ी लय कहते हैं। जैसे 4 मात्रा काल में 6 मात्रा गाना आडी लय है तो 4 मात्रा काल में 7 मात्रा गाना, बियाडी लय है तो 4 मात्रा काल में 8 मात्रा गाना दुगुनी लय है 4 मात्रा काल में 16 मात्रा गाना—बजाना चौगुनी लय है। इसी तरह से कुआडी आदि लय को भी समझना चाहिए। जैसे कुआड़ी की दुगुन महाकुआड़ी, आडी की दुगुन महाआड़ी तथा बियाड़ी की दुगुन महाबियाडी लय मानी जायेगी।

<u>1.3.8 ख्याल</u> – आज राग में जो कुछ भी शास्त्रीय संगीत में गाया जाता है वह ख्याल के अन्तर्गत आता है। कहने का अभिप्राय यह है कि आज ख्याल गायकी सर्वाधिक प्रचलित शास्त्रीय गायन शैली है। इतिहासकारों ने ख्याल गायकी को अमीर खुसरो का आविष्कारक बताया है। परन्तु यह ठीक नहीं है। अमीर खुसरों ने ख्याल का आविष्कार नहीं किया। उन्होंने साधारणी गीति का नाम बदल कर ख्याल कर दिया होगा यह संभव है। ख्याल गायकी की क्रम प्रणाली में ख्याल गीत गायन से पूर्व रागवाचक स्वरों का थोड़ा—सा आलाप किया जाता है और ख्याल की बंदिश का गायन करके एक—एक स्वर की क्रमिक बढ़त की जाती है। बढ़त में कण, मींड और गमक युक्त आलाप, शब्दालाप गमक और बहलावा आदि का प्रयोग किया जाता है। इसके पश्चात तान और बोल तान गायी जाती है। इन तानों को सुन्दर तिहाइयों से सुसज्जित किया जाता है। ख्याल गायन में पहले विलम्बित तथा

उसके पश्चाात द्रुत अर्थात छोटा ख्याल गाया जाता है। बड़ा ख्याल गायन के लिए तिलवाड़ा, एकताल, आड़ाचारताल और झूमरा आदि तालों का प्रयोग किया जाता है और द्रुत ख्याल में तीनताल, द्रुत एकताल, झपताल तथा रूपक ताल आदि का वादन होता है और ये तालें तबले पर बजायी जाती हैं।

ख्याल गायकी के घराने – ख्याल गायकी की आधुनिक परम्परा नियामत खां 'सदारग' से आरंभ होती है, जो मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी संगीतज्ञ थे। सदारंग के दो लड़के हुए जिन्होंने अदारंग और मनरंग नाम से ख्याल गीतों की रचना की। अदारंग (फिरोज खां) बड़े लड़के तथा मनरंग (भूपत खां) छोटे लड़के थे। फिरोज खां के शिष्य लखनऊ के गुलाम रसूल हुए। इस तरह विकास क्रम में ख्याल गायन के कई घराने प्रचलित हुए। यहां उन घरानों की संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

ग्वालियर घराना – गुलाम रसूल ने ग्वालियर घराना की नींव धरी। वहीं ग्वालियर घराना जो कभी ध्रुपद गायकी का गढ़ माना जाता था, गुलाम रसूल के उद्यम से ख्याल गायकी का केन्द्र बन गया। इस घराना में ही बड़े मुहम्मद खां, हद्दू खां, हस्सू खां और नत्थू खां तीन भाई हुए। इन्होंने ख्याल गायकी को चरम सीमा तक पहुंचाया। इसी घराने में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, विष्णु नारायण भातखंडे, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, नारायण राव व्यास, विनायकराव पटवर्धन, कृष्णशंकर पंडित, पंडित एल.के. पंडित आदि महान कलाकार हुए हैं। इस घराने की गायकी अष्टांग गायकी कहलाती है जिसमें शुद्ध स्वर शब्दोच्चारण, खुली आवाज, तीन सप्तकों में तान तथा लय में निपुणता आदि गुण शामिल हैं।

आगरा घराना – इस घराना की परम्परा अकबरी दरबार के हाजी सुजान खां से सम्बन्धित है। मियां खुदाबख्श (घग्गे खां) ने ग्वालियर के हद्दू साहिब से ख्याल गायकी की शिक्षा ली तथा आगरा गायकी को प्रसारित किया। इस घराना में नत्थन खां, गुलाम अब्बास, फय्यास खां, भास्करराव बखले, श्री कृष्ण नारायण रातांजनकर, दिलीप चन्द्र बेदी तथा हरिश्चन्द्र बाली के नाम उल्लेखनीय हैं। इस घराना की गायकी में नोमतोम का आलाप, भावुक शब्द एवं स्वरोच्चार, खुला आवाज तथा लय ताल पर अधिकार आदि गुण शामिल हैं।

जयपुर घराना – इस घराना की परम्परा स्वामी हरिदास से सम्बन्धित है। इसके आधुनिक निर्माता श्री अल्लादिया खां थे। इस शैली का प्रतिनिधित्व सर्व श्री मंजी खां, श्री अजीजुद्दीन, सुश्री केसरबाई और मलिकार्जुन मंसूर ने किया। किशोरी अमोनकर, सुश्री अश्विनी भिडे आदि आज इस शैली के प्रतिष्ठित कलाकार हैं। इस घराने में स्वर विस्तार में विचित्रता, पेंचदार गीत और आलाप तान, लयकारी आदि गुण शामिल हैं।

पटियाला घराना – इस घराना का निर्माण हद्दू खां ग्वालियर के शिष्य श्री कालू खां ने किया। इनके बेटे जनरल फतह अली और कर्नल अलीबख्श धुरन्धर गायक थे। इस घराना के गायको में अख्तर हुसैन, आशिक अली खां तथा बड़े गुलाम अली खां के नाम उल्लेखनीय हैं आजकल इस घराने का प्रतिनिधित्व जवाद अली खां तथा डा. मजहर अली खां कर रहे हैं। इस घराने में स्वरों का लगाव, बढ़त तथा लयकारी युक्त तान आदि गुण हैं।

दिल्ली घराना – दिल्ली की परम्परा में श्री तान रस खां, श्री मुज्जफर खां तथा श्री चांद खा के घराने शामिल हैं। इसके मुख्य कलाकार श्री तानरस खां, श्री मुज्जफर खां, पंचम खा, मस्सू खां, उ0 मस्ते खां, शंकर चक्रवर्ती तथा दिलीप कुमार राय है। दिल्ली चांद खां परम्परा में श्री संगी खां थे। सुश्री कृष्णा बिष्ट आज इस घराने का प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

बनारस घराना – इस घराना के प्रवर्तक श्री मनरंग के शिष्य श्री ठाकुर दयाल थे। इनके बेटे मनोहर तथा वंशज शिवा पशुपति आदि ने ख्याल गायन को आगे बढ़ाया। राजन–साजन मिश्र इसी घराने के प्रतिनिधि कलाकार हैं। इस प्रकार संगीत में ख्याल के अनेक घराने आज प्रचार में हैं।

उस्ताद अल्लादिया खॉ
जयपुर घराना

उस्ताद अमीर खॉ
इन्दौर घराना

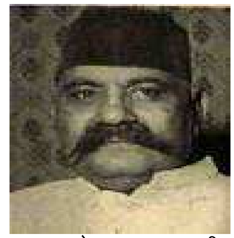

उ0 बड़े गुलाम अली
पटियाला घराना

पं0 भीमसेन जोशी
किराना घराना

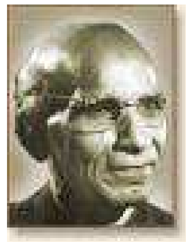

उस्ताद चॉद खॉ
दिल्ली घराना

पं0 डी0वी0 पलुस्कर
ग्वालियर घराना

उस्ताद फैयाज खॉ
आगरा घराना

1.3.9 ध्रुवपद – हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्राचीनतम गायन शैली 'ध्रुवपद' है। बृहद्देशी के ग्रन्थकार मतंग ने इसका नाम 'चोक्षा' तथा दुर्गशक्ति, चाष्टिक और शार्ग्डदेव ने 'शुद्धा गीति' कहा है। यह गायन शैली मध्यकाल से आज तक प्रचलित है। शाब्दिक दृष्टि से ध्रुवपद(ध्रुव+पद) के दो शब्दों का अर्थ – ध्रुव – स्थिर होना, सदा एक स्थान पर रहना अथवा ज्यों का त्यों बना रहने वाला (अचल या अटल); पद – पैर, पंक्ति, चरण (किसी कविता या श्लोक का अर्थ)। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुवपद के प्रचार–प्रसार में बहुत योगदान दिया। इसका प्रचलन मध्य काल में अधिक था। शुरुआत में ध्रुवपद में संस्कृत के श्लोकों को गाकर ऋषि मुनि भगवान की अराधना करते थे। प्राचीन काल में ध्रुवपद गाने वालों को 'कलावन्त' कहा जाता था। अकबर के समय में तानसेन और उनके गुरू स्वामी हरिदास, डागुर, नायक बैजू और गोपाल आदि प्रख्यात गायक ध्रुवपद ही गाते थे। किन्तु आधुनिक काल में इसका स्थान ख्याल ने ले लिया है।

ध्रुवपद गम्भीर प्रकृति का गीत है। इसे गाने पर कंठ और फेफड़ों पर बल पड़ता है। इसलिए इसे मर्दाना गीत भी कहते है।

यह गायकी वीर रस द्वारा शक्ति का संचार करती है। भक्तिरस द्वारा भक्ति का संचार करती है और मोक्ष प्राप्ति का साधन है। इस गायकी में स्वर, शब्द और ताल का स्वरूप शुद्ध रहता है। इसमें विभिन्न प्रकार की लयकारियों का प्रयोग होता है। इसमें गीत गायन से पूर्व आलाप गायन किया जाता है। आलाप गायन में नोम–तोम आदि अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। यह नोम–तोम आदि अक्षर प्राचीन भक्तिमय श्लोक *'ओम नारायण अनन्त हरि'* का ही विकृत रूप है। इस गायकी में स्वरों और शब्दों को अलंकृत करने के लिये किसी भी प्रकार के कण, मींड, मुर्की, खटका एवं जमजमा आदि का प्रयोग नहीं किया जाता। स्वर और शब्द का केवल सीधा, शुद्ध, मधुर एवं भावुक उच्चारण ही प्रत्येक रस का संचार करने में समर्थ है। इसमें द्विपदी, चतुष्पदी तथा अष्टपदी गीतों का प्रयोग किया जाता है। अधिकांश ध्रुवपद के चार भाग होते हैं – स्थाई, अन्तरा, संचारी व आभोग। प्राचीन ध्रुवपदों के चारों भागों के 3–3 या 4–4 चरण होते थे। अब ज्यादातर ध्रुवपदों में दो ही भाग होते हैं – स्थाई व अन्तरा। इसके शब्द अधिकतर ब्रज भाषा के होते हैं। आलाप गायन के पश्चात गीत गायन प्रारम्भ होता है। गीत का स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग भाग समाप्त कर गीत की विभिन्न प्रकार की लयकारियों अर्थात् दुगुन, तिगुन, चौगुन और आड़ आदि द्वारा विस्तार किया जाता है। विभिन्न प्रकार की तिहाईयों से सुसज्जित किया जाता है। कला कौशल दिखाते हुए गायक इन लयकारियों को ताल की विभिन्न मात्राओं एवं खण्डों से आरम्भ करते हैं और सम पर आते हैं। इस

गायकी के लिये चारताल, ब्रहमताल, सूलताल, तीव्रा, रुद्रताल आदि तालों का प्रयोग पखावज एवं तबला वाद्य पर किया जाता है। तबला की संगति के लिए खुले हाथों से बोल बजाये जाते हैं।

<u>ध्रुपद की बानियां</u> – मध्यकाल में ध्रुपद गायन का बहुत प्रचार हुआ। उस समय स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, बख्शू आदि अनेक ध्रुपद गायन में प्रवीण हुए। इनकी गायन शैलियों को खंडारी, डागुरी, नौहारी और गौबरहारी आदि वाणियों के नाम से पुकारा जाता था। वास्तव में ये उस ख्याल के घराने थे जहां उस समय ध्रुपद गायन का प्रशिक्षण होता था। इस प्रकार ध्रुपद की चार वाणियां प्रसिद्ध हैं। संक्षेप में उनका यहां उल्लेख किया गया है।

<u>खण्डार वाणी</u> – खण्डार वाणी का मूल स्रोत खंडार नामक गांव था और अकबर दरबार के प्रसिद्ध गायक और बीनकार राजा समोरवन सिंह (नौबाद खां) इसके प्रवर्तक थे।

<u>डागुर वाणी</u> – डागुर वाणी के प्रवर्तक स्वामी हरिदास समझे जाते हैं। कुछ लोगों के विचार में डागुर वंशज हरिदास कोई अन्य गायक हुए हैं। कुछ विद्वान बृजचन्द को डागुरी गायकी का प्रवर्तक मानते हैं। डागुर वाणी भिन्नागीति से मिलती। चिला गीति में मींड का प्रयोग वक्र रूप से विलक्षण गमकों के साथ होता था।

<u>नौहार वाणी</u> – नौहार वाणी के निर्माता हाजी सुजान खां थे। हाजी साहिब मियां तानसेन के दामाद थे। कुछ विद्वान श्रीचन्द को इस गायकी का प्रवर्तक मानते हैं।

<u>गोबरहार वाणी</u> – आचार्य बृहस्पति के अनुसार गौरारी शब्द ग्वालियर का अपभ्रंश है और ग्वालियर में बोली जाने वाली भाषा का द्योतक है। गोबरहार वाणी के प्रवर्तक स्वयं मियां तानसेन माने जाते हैं। कुछ लोग नायक कुम्भनदास को गोबरहारी वाणी के और मियां तानसेन को 'सेनी वाणी' के प्रवर्तक मानते हैं।

विद्वानों का यह भी मत है कि वाणियां घरानों से नहीं अपितु नव रसों से सम्बन्धित थी और प्रत्येक वाणी अलग–अलग रस को व्यक्त करती थी।

पं0 सियाराम तिवारी

गुन्डेचा ब्रदर्स

उ0 वसीफुद्दीन डागर

<u>राग श्याम कल्याण – ध्रुपद (स्थाई)</u>

रे	म'	प	प	नि	ध	प	म'	प	ग	म	रेसा
प्र	थ	ऽ	म	ऽ	सु	म	र	ऽ	ले	ऽ	तूऽ
x		0		2		0		3		4	
नि	सा	सा	रे	म	रे	नि	नि	सा	नि	ध़	प़
शु	भ	ऽ	ना	ऽ	म	रा	ऽ	म	सी	ऽ	ता
x		0		2		0		3		4	
नि	सां	सां	रे	म'	म'	प	प	प	प	ध	प
जा	ऽ	ऽ	सो	ऽ	सु	ज	स	ऽ	हो	ऽ	वे
x		0		2		0		3		4	
सां	नि	ध	प	म'	प	प	ग	म	रे	ऩि	सा
ज	ग	त	में	ऽ	ऽ	न	व	ऽ	नी	ऽ	ता
x		0		2		0		3		4	

स्थाई की दुगुन

रेम'	पप	निध	पम'	पग	म रेसा	निसा	सारे	मरे	निनि	सानि	धप
प्रथ	ऽम	ऽसु	मर	ऽले	ऽ तूऽ	शुभ	ऽना,	ऽम	राऽ	मसी	ऽमा
x		0		2		0		3		4	
निसा	सारे	म'म'	पप	पप	धप	सांनि	धप	म'प	पग	मरे	निसा
ऽ	ऽसो	ऽसु	जस	ऽहो	ऽवे	जग	तमे	ऽऽ	नव	ऽनी	ऽता
x		0		2		0		3		4	

स्थाई की तिगुन

रे	म'	प	प	नि	ध	प	म'	रेम'प	पनिध	पम'प	गमरेसा
प्र	थ	ऽ	म	ऽ	सु	म	र	प्रथऽ	मऽसु	मरऽ	लेऽतूऽ,
x		0		2		0		3		4	
निसस	रेमरे	नि–स	निधप	निस–	रेम'म'	पपप	पधप	संनिध	पम'प	पगम	रेनिसा
शुभऽ	नाऽम	राऽम	सीऽता	जाऽऽ	सोऽसु	जसऽ	होऽवे	जगत	मेंऽऽ	नवऽ	नीऽता
x		0		2		0		3		4	

स्थाई की चौगुन

रेम'पप	निधपम'	पगमरेस	निसा–रे	मरेनिनि	सनिधप	निससरे	म'म'पप	पपधप	संनिधप	म'पपग	मरेनिसा
प्रथऽम	ऽसुभर	ऽलेऽतऽ	शुभऽना	ऽमराऽ	मसीऽता	जाऽऽसों	ऽसुजस	ऽहोऽवे	जगतमें	ऽऽनव	ऽनीऽता
x		0		2		0		3		4	

अन्तरा

प	प	प	सां	—	—	—	—	—	रें	सां	—
प्री	ऽ	ऽ	त	ऽ	वि	ना	ऽ	ऽ	वि	धा	ऽ
x		0		2		0		3		4	
नि	नि	सां	रें	मं	रें	नि	नि	सां	नि	ध	प
ते	ऽ	रो	जो	ऽ	ग	जा	ऽ	प	पू	ऽ	जा
x		0		2		0		3		4	
प	प	ग	म	रे	सा	रे	म'	म'	प	प	प
प	ढे	ऽ	का	ऽ	ऽ	हो	ऽ	त	भा	ऽ	ग
x		0		2		0		3		4	
रे	सा	नि	ध	म'	प	प	ग	म	रे	नि	सा
ब	त	ऽ	रा	ऽ	म	रं	गं	ऽ	गी	ऽ	ता
x		0		2		0		3		4	

अन्तरे की दुगुन

पप	पसां	——	——	—रे	सांसां	निनि	सारें	मरें	निनि	सानि	धप
प्रीऽ	ऽत	ऽबि	नाऽ	ऽबि	धाऽ	तेऽ	रोजो	ऽग	जाऽ	पपू	ऽजा
x		0		2		0		3		4	
पप	गम	रेसा	रेम'	म'प	पप	रेसा	निध	म'प	पग	मरे	निसा
पढे	ऽका	ऽऽ	होऽ	तभा	ऽग	बत	ऽरा	ऽम	रंग	ऽगी	ऽता
x		0		2		0		3		4	

अन्तरे की तिगुन

प	प	प	सां	—	—	—	—	पपसां	सां——	———	रेसांसां
प्री	ऽ	ऽ	त	ऽ	बि	ना	ऽ	प्रीऽऽ	तऽबि	नाऽऽ	बिधाऽ
x		0		2		0		3		4	
निनिसां	रेमरें	निनिसा	निधप	पपग	मरेसा	रेम'प	पपप	रेसानि	धम'प	पगम	रेनिसा
तेऽरो	जोऽग	जाऽप	पूऽजा	पढ़ेऽ	काऽऽ	होऽत	भाऽग	बतऽ	राऽम	रगऽ	गीऽता
x		0		2		0		3		4	

अन्तरे की चौगुन

पपपसां	————	—रेंसांसां	निनिसारें	मरेंनिनि	सांनिधप	पपगम	रेसारम'	म'पपप	रेसानिध	म'पपग	मरेनिसा
प्रीऽऽत	ऽबिताऽ	ऽबिधाऽ	तेऽराजो	ऽगजाऽ	पपूऽजा	पढेऽका	ऽऽहोऽ	तभाऽग	बतऽरा	ऽमरंगं	ऽगीऽता
x		0		2		0		3		4	

1.3.10 धमार – 'धमार' एक गायन शैली है जो प्राचीन काल से प्रचलित रही है। मतंग, दुर्गशक्ति, चाष्टिक, शार्दूल तथा शारंगदेव आदि विद्वानों ने इसे 'भिन्नागीति' नाम से पुकारा और आज इसे धमार गायकी कहा जाता है। जैसे भिन्ना गीति में स्वर, शब्द और लय का प्रयोग भिन्न–भिन्न प्रकार से किया जाता था वैसे ही आधुनिक धमार गायकी को विभिन्न प्रकार के बोल–बांटों से अलंकृत किया जाता है। धमार विभिन्न शब्दयुक्त स्वर लहरियों द्वारा गायी जाती है। इसमें और ध्रुपद में अन्तर केवल इतना ही है कि ध्रुपद गायकी का प्रदर्शन विभिन्न प्रकार की लयकारियों अर्थात् दिगुन, तिगुन, चौगुन और अठगुना आदि द्वारा किया जाता है और धमार गायकी में बोल–बांट अर्थात् शब्दों को विभिन्न स्वरलहरियों द्वारा व्यक्त करते हैं। ध्रुपद में गीत की धुन नहीं बदलती परन्तु धमार में गीत को विभिन्न प्रकार की रागवाची धुनों द्वारा प्रस्तुत करते हैं। इन धुनों को सुन्दर तिहाइयों से सुसज्जित करते हैं। धमार गायन में ध्रुपद जैसा ही नोम–तोम का आलाप किया जाता है।

धमार के गीतों में ब्रज की होली लीला का वर्णन होता है जिसमें भगवान कृष्ण गोपियों के साथ होली खेलते दिखाये जाते हैं। ये गीत धमार नामक ताल में गाये जाते हैं। 'धमार' ताल में एक चक्र में 14 मात्रायें होती हैं। इसमें चार विभाग होते हैं। प्रथम विभाग में 5 मात्रा, दूसरे में 2 मात्रा, तीसरे में 4 मात्रा तथा चौथे में 3 मात्रा होती है। इस ताल में प्रथम, छटी तथा बारहवी पर ताली तथा आठवी पर खाली होती है। इस तरह आपने देखा कि इसकी मात्रायें विभाग आदि सब भिन्न हैं। इस शैली के गीत में गान व नृत्य तथा होली सब भिन्न हैं। इस शैली के गीत में गान व नृत्य तथा होली उत्साह होने के कारण संभवतः इसकी 'धमाल' संज्ञा रही होगी जो बाद में 'धमार' नाम से प्रसिद्ध हो गयी। धमार गायन में उपज का काम खूब होता है। यह एक श्रृंगार रस प्रधान गायन शैली है। इसमें

राग की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसका गायन मध्य तथा द्रुत लय में पखावज के साथ किया जाता है।

राग श्यामकल्याण – धमार (स्थाई)

म	रे	नि	सा	रे	रे	रे	म′	प	प	प	ध	प	ग
म	न	को	रि	झा	ऽ	ऽ	ये	ऽ	री	ऽ	मो	रे	ऽ
3				x					2		0		
ग	म	रे	सा	रे	सा	सा	रे	रे	म′	प	प	प	प
ब्र	ज	ग	लि	य	न	ऽ	मे	ऽ	ऽ	ऽ	हो	ऽ	री
3				x					2		0		
नि	सां	ध	प	ध	म′	प	ग	म	प	ग	म	रे	सा
रा	ऽ	धे	ऽ	श्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	सु	घ	र	की
3				x					2		0		

स्थाई की दुगुन

म	रे	नि	मरे	निसा	रेऽ	–म′	–प	पध	पग	गम	रेसा	रेसा	सारे
म	न	को	मन	कोरि	झाऽ	ऽय	ऽरी	ऽमो	रेऽ	ब्रज	गलि	यन	ऽमें
3				x					2		0		
रेम′	म′प	पप	निसां	धप	धम′	पग	मप	गम	रेसा	मरे	निसा	रेरे	मरे
ऽऽ	ऽहो	ऽरी	राऽ	धेऽ	श्या	ऽम	ऽऽ	सुध	रकी	मन	कोरि	झाऽ	मन
3				x					2		0		

स्थाई की तिगुन

निसा	रेरे	म′रे	निसा	रे	रे	रे	म′	म′	प	–	ध	12म	रेनिस
कोरि	झाऽ	मन	कोरि	झा	ऽ	ऽ	ये	ऽ	री	ऽ	मो	12म	नकोरि
3				x					2		0		
रे––	म′म′प	पधप	गगम	रेसरे	स–रे	रे–म	पपप	निसंध	पधम′	पगम	पगम	रेसम	रेनिस
झाऽऽ	येऽरी	ऽमोरे	ऽब्रज	गलिय	नऽमे	ऽऽऽ	होऽरी	राऽहो	ऽश्याऽ	ऽमऽ	ऽसुध	रकीम	नकोरि
3				x					2		0		

स्थाई की चौगुन

रेऽम	रेनिस	रे–म	रेनिस	रे	–	12मरे	निसरे–	–म′–प	–धपम	गमरेस	रेस–रे	–म′–प	–पनिसं
श्याऽम	नकोरि	श्याऽ	नकोरि	श्या	ऽ	12मन	कोरिश्याऽ	ऽयेऽरी	ऽमोऽरी	ब्रजगलि	यनऽये	ऽऽऽहो	ऽरीराऽ
3				x					2		0		
धपधम	पगमप	गमरेस	मरेनिसा										
धेऽश्याऽ	ऽमऽऽ	सुधरकी	मनकोरि										
3				x					2		0		

अन्तरा

प	प	ग	म	रे	म'	–	प	प	प	नि	–	सां	सां
ब्र	ज	ऽ	ऽ	ऽ	गो	ऽ	पि	न	ऽ	ऽ	ऽ	मि	ल
x					2		0			3			
सां	नि	–	सां	सां	सां	रें	सां	नि	–	ध	ध	प	प
खे	ऽ	ऽ	ल	ऽ	ऽ	र	हे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	ब
x					2		0			3			
म'	प	प	रें	रें	सां	सां	नि	–	ध	म'	–	प	प
सं	ऽ	ऽ	ग	ऽ	ऽ	लि	ये	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	भ	र
x					2		0			3			
रे	म'	म'	प	ध	प	ग	म	प	ग	म	रे	नि	सां
झो	ऽ	ऽ	री	अ	बी	ऽ	र	की	ऽ	म	न	को	रि
x					2		0			3			

अन्तरे की दुगुन

प	प	ग	म	रे	म'	म'	प	पप	गम	रेम'	म'प	पप	निनि
ब्र	ज	ऽ	ऽ	ऽ	गो	ऽ	पि	ब्रज	ऽऽ	ऽगो	ऽपि	नऽ	ऽऽ
x					2		0			3			
संसं	संनि	संसं	सां–	रेंसं	निनि	धध	पप	म'प	परें	रेंसं	संनि	निध	म'म'
मिली	खेऽ	ऽल	ऽऽ	रहे	ऽऽ	ऽऽ	सब	सऽ	ऽग	ऽऽ	लिये	ऽऽ	ऽऽ
x					2		0			3			
पप	रेम'	म'प	धप	गम	पग	मरे	निस	रेरे	मरे	निस	रेरे	मरे	निस
भर	झोऽ	ऽरी	अबी	ऽर	कीऽ	मन	कोरि	झाऽ	मन	कोरि	झाऽ	मन	कोरि
x					2		0			3			

अन्तरे की तिगुन

प	प	ग	म	रे	1पप	गमरे	म'म'प	पनिनि	ससस	सनिनि	सं––	रेसनि	निधप
ब्र	ज	ऽ	ऽ	ऽ	1ब्रज	ऽऽऽ	गोऽपि	नऽऽ	ऽमिली	खेऽऽ	लऽऽ	रहेऽ	ऽऽऽ
x					2		0			3			
पपम'	पपरे	रेंसंसं	नि–ध	म'म'प	परेम'	म'पध	पगम	पगम	रेनिसं	रे–म	रेनिसं	रें–म	रेनिसं
सबसं	ऽऽग	ऽऽलि	येऽऽ	ऽऽभ	रझोऽ	ऽरीअ	बीऽर	कीऽम	नकोरि	झाऽम	नकोरि	झाऽम	नकोरि
x					2		0			3			

अन्तरे की चौगुन

प	प	ग	म	रे	म'	म'
ब्र	ज	ऽ	ऽ	ऽ	गो	ऽ
x					2	
संसंसंनि	सं–––	रेसनि–	ध–पप	मपपरे	ससससनि	निधम'म'
मिलिखऽ	ऽलऽऽ	रहेऽऽ	ऽऽसब	संऽगऽ	ऽऽलिये	ऽऽऽऽ
x					2	

प	प	प	नि	पपगम	रेम'—प	पपनिनि
पि	न	ऽ	ऽ	ब्रजऽऽऽ	ऽगोऽपि	नऽऽऽ
0			3			
पपरेम'	पपधप	गमपग	मरेनिस	रे—मरे	निसरे—	मरेनिस
भरझोऽ	ऽरीअबी	ऽरकीऽ	मनकोरि	झाऽमन	कोरिझाऽ	मनकोरि
0			3			

धमार ताल

मात्रा — 14, विभाग — 4, ताली — 1, 6 व 11 पर, खाली — 8 पर

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
×					2		0			3			

1.3.11 ठुमरी — ध्रुपद और धमार गायकियों की भांति 'ठुमरी' गायन शैली भी प्राचीन कलाकारों का ही योगदान है। मतंग ने अपनी सप्तगीतियों एवं शारंगदेव ने पंचगीतियों में इसे गौड़ी नाम से प्रस्तुत किया और मुगल दरबारों में इसे ठुमरी नाम प्रदान किया गया। गौड़ी गीति स्वर, शब्द और लय का भावुक रूप व्यक्त करती है।

ठुमरी गायकी का प्रदर्शन 14 मात्रा की दीपचन्दी—चांचर ताल में तबला वादन द्वारा किया जाता है। कहीं—कहीं ठुमरी का गान कहरवा, जत अथवा पंजाबी तीनताल में भी सुनने को मिलता है। ये तालें भी ठुमक—ठुमक गति की प्रतीक हैं। इस गायकी में कण, मींड, मुर्की और खटका आदि से अलंकृत छोटे—छोटे भावुक आलाप, शब्दालाप, तान एवं बोल तानों का प्रयोग होता है। इसमें बहलावा अधिक मात्रा में श्रवणगोचर होता है। शब्द श्रृंगार और करूण रस के होते हैं। इसे कुछ देर दीपचन्दी ताल में गायन के पश्चात द्रुत तीनताल में गाते हैं और इस शैली को 'लग्गी' कहते हैं। यह ठुमरी में भावाभिव्यक्ति का चरमोत्कृष्ट रूप कहलाता है।

यहां आपको यह जिज्ञासा होना आवश्यक है कि ख्याल या अन्य शैलियों की भांति क्या ठुमरी गायन के घराने हैं? वस्तुतः ठुमरी गायकी को नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में अधिक उन्नति मिली। स्वयं नवाब 'अख्तर मियां' के नाम से ठुमरी गीत रचा करते थे। कदरपिया, सनदपिया, ललनपिया, चांदपिया, प्रेमपिया, अमरपिया आदि अनेक ठुमरी के गीतकार हो चुके हैं। ठुमरी गायकी के क्षेत्र में पूर्वी (बनारसी), जयपुरी और पंजाबी शैलियां अधिक प्रसिद्ध हुई। यहां इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। 'पूर्वी शैली' का कलाक्षेत्र बनारस और लखनऊ है। इसके अन्तर्गत धीमी लय, कण, मींड और मुर्की का प्रयोग तथा शब्दालाप प्रधान हैं। इस शैली के प्रतिनिधि कलाकार श्री कमल सिंह, सुश्री अख्तरीबाई, गिरिजादेवी, सिद्धेश्वरीदेवी और रसूलन बाई आदि हैं जिनमें गिरिजादेवी आज प्रतिष्ठित है और गायन प्रस्तुत कर रही है।

ठुमरी की जयपुर शैली में कत्थक अंग प्रधान है जिसके अन्तर्गत स्वर की तीव्रता, तारता, जाति, बहलावे, कण, मींड, मुर्की आदि का प्रयोग शामिल है। आज लगभग सभी कत्थक गायक इस शैली का अनुकरण करते हैं।

ठुमरी की 'पंजाबी शैली' में पंजाबी अथवा ब्रज भाषा, ध्वनि की मधुरता, पेंचदार आलाप, कण, मींड, मुर्की, खटका आदि का प्रयोग किया जाता है। इस शैली में उस्ताद बड़े गुलाम अली खां उनके भाई बरकत अली तथा नजाकत—सलामत अली खां आदि मुख्य कलाकार हैं।

इस प्रकार भारत में अधिकतर सभी कलाकार ठुमरी गाते हैं। राग प्रस्तुति में ख्याल गायन के पश्चात ठुमरी गाने का प्रचलन है।

ठुमरी – राग खमाज – जतताल (विलंबित)

आरोह – *सा, ग म, प, ध नि सां,*
अवरोह – *सां नि ध प, म ग, रे सा।*
पकड़ – *नि ध, म प, ध, म ग।*

स्थाई – *तुम राधे बनो हम श्याम बिहारी,*
मेरो नाम धरो नंद नंदन, तुम वृष भानु दुलारी।
अंतरा – *तुम पहिरो चूनर टीका मणि, मै पीतांबर धारी,*
मैं मुरली कर मधुर बजाऊँ, तुम नाचो गिरिधारी।।

स्थाई

प	नि	ध	प	म	ग	रेग	म	प	–	प	पध	मग	प	म	ग
रा	ऽ	धे	ब	नो	ऽ	ऽह	म	श्या	ऽ	म	बिऽ	हाऽ	ऽ	रो	ऽ
0				3				×				2			
ग	म	ध		ध	–	ध	म	ध	–	ध	नि	धप	ध	प	प
	नि			ना	ऽ	म		रो	ऽ	न	न्द	नऽ	ऽ	न्द	न
मे	ऽ	रो	ऽ		घ			×				2			
0				3											
								ध	सां	नि	ध	म		ग,	ग
ग	म	प	ध	प	ध	नि		ला	ऽ	री	ऽ	म			
तु	म	वृ	ष		सां			×				ऽ		ऽ	तु
0				भा	ऽ	नु	दु					म			
				3								2			

अन्तरा

ग	म	प	ध	नि	–	सां	–	नि	नि	सां	–	संनि	रें	सां	सां
रा	म	प	हि	रो	ऽ	चू	ऽ	न	र	टी	ऽ	काऽ	ऽ	म	णि
0				3				×				2			
प	–	नि	–	नि	–	सां	सां	धनि	सां	निध	पध	प	–	–	–
मै	ऽ	मु	र	तां	ऽ	ब	र	घाऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			
ग	म	ध	ध	नि	धप	ध	प	ग	म	प	ध	मग		प	म
मै	ऽ	मु	र	ली	ऽऽ	ध	न	म	धु	र	ब	प			
0				3				×				जाऽ	ऽ	ऊँ	ऽ
												2			
ग	म	प	ध	प	ध	नि	सां	ध	सां	नि	धप				
तु	म	ना	ऽ	चो	ऽ	गि	रि	धा	रि	ऽ	ऽऽ	म	ग,	ग	म
0				3				×				री	ऽ,	तु	म
					रे	सा						2			
पध	नि	ध	प	म	ग	रेग	म								
राऽ	ऽ	धे	ब	नो	ऽ	ऽह	म								
0				3											

जत ताल

मात्रा — 16, विभाग — 4, ताली — 1, 5 व 13 पर, खाली — 9 पर

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	ऽ	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ऽ	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ
×				2				0				3			

<u>1.3.12 टप्पा</u> — ध्रुपद, धमार और ठुमरी की भांति आधुनिक टप्पा गायकी भी प्राचीन कालिक 'बेसरा' अर्थात 'वेगस्वरा' गीति का आधुनिक रूप है। 'वेगस्वरा' और टप्पा गायकियों में नामान्तर और भाषान्तर तो अवश्य हुआ है परन्तु रूपान्तर बिल्कुल नहीं हुआ। इस गायकी में शब्द, स्वर और लय को कहीं विश्राम नहीं मिलता। इस गायकी में केवल तान एवं बोलतान का प्रयोग होता है। इसके गायन के लिये एक निश्चित ताल है जिसे 'टप्पा' ताल कहते हैं। यह ताल 16 मात्रा की होती है और अपनी गायन शैली अर्थात् टप्पा के नाम से प्रसिद्ध है। 'टप्पा' पंजाबी भाषा का शब्द है। हमेशा कूदते रहना इसका अर्थ है। टप्पा गायकी में आलाप नहीं लिया जाता। इसमें कण, मुर्की, खटका आदि से अलंकृत गमक और तान का प्रयोग किया जाता है। लखनऊ निवासी श्री गुलाम रसूल के लड़के श्री गुलाम नबी (शोरी मियां) बहुत समय तक लाहौर में रहे। इसी समय इस शैली का नाम 'टप्पा' प्रचलित हो गया। मियां शोरी कवि भी थे। बहुत से टप्पा गीत उन्हीं द्वारा रचे हुये प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनमें मियां शोरी का नाम पाया जाता है। मियां शोरी की शिष्य परम्परा में महाराष्ट्र के देव जी बुवा और श्री बालकृष्ण बुवा इचलंकरजीकर, ग्वालियर के शंकर पंडित और एकनाथ पंडित ने टप्पा गायकी की शिक्षा प्राप्त की। पटियाला और ग्वालियर खास की गायकी में आज भी 'टप्पा' की तानें झलकती हैं। टप्पा की भाषा पंजाबी और श्रृंगार तथा करुण रस प्रधान होती है। यह अधिकतर भैरवी, खमाज, झिंझोटी, पीलू आदि रागों में गायी जाती है।

<u>टप्पा ताल</u>

मात्रा— 16, विभाग— 4, ताली — 1, 5 व 13 पर व खाली — 9 पर

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	ऽता	धिं	धा	धिं	ऽता	धिं	ता	कत	ऽक	ऽत	ता	धिं	ऽता	धिं
×				2				0				3			

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

1. नारद ने नाद के .... प्रकार बताये हैं।
2. एक सप्तक में .... श्रुतियां होती हैं।
3. लय के .... प्रकार माने गये हैं।
4. ध्रुपद गायकी में .... ताल वाद्य से संगति की जाती है।
5. बड़े गुलाम अली खां ....घराने से सम्बन्धित थे।
6. धमार ताल में .... मात्रायें होती हैं।
7. टप्पा के गीत .... भाषा में रचित होते हैं।
8. टप्पा .... ताल में गाया जाता है।
9. षड्ज की .... श्रुतियां होती है।
10. 'संगीत रत्नाकर' के रचनाकार .... थे।
11. उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत को .... नाम से जाना जाता है।
12. सूलताल .... वाद्य पर बजायी जाती है।

ख) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. नाद की उत्पत्ति किस धातु से मानी जाती है?
2. संगीतोपयोगी नाद का नामोल्लेख करें।
3. शुद्ध स्वर कितने हैं?
4. एक सप्तक में कितने स्वर होते हैं?
5. पाश्चात्य स्वर सप्तक को क्या कहते हैं?
6. ख्याल शैली का प्रचलन किसने किया?
7. उस्ताद फैयाज़ खां किस घराने के कलाकार थे?
8. धमार ताल का प्रयोग किस गायन शैली के लिये किया जाता है?
9. 'अख्तर पिया' किसका उपनाम है?
10. गिरिजा देवी किस गायन शैली के लिए प्रसिद्ध है?
11. टप्पा का अविष्कार किसने किया?
12. टप्पा गायकी में किस रस की प्रधानता होती है?
13. 66 श्रुतियों का उल्लेख किसने किया है?
14. नाट्यशास्त्र की रचना किसने की?
15. मतंग द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम बतायें?
16. आजकल शास्त्रीय संगीत में कौन सी गायन शैली सर्वाधिक प्रचार में है?
17. धमार ताल में कितने विभाग होते हैं?
18. स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग चारों अंग किस गायकी में विद्यमान होते हैं?
19. संगीत में कितने संवाद मुख्य रूप से मान्य हैं?
20. सवाई लयकारी में 4 मात्रा काल में कितनी मात्रा होगी?

ग) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. भरत ने विकृत स्वर की क्या परिभाषा दी है?
2. तारता से क्या अभिप्राय है?
3. श्रुति एवं स्वर को परिभाषित कीजिए एवं इनमें भेद स्पष्ट कीजिए।
4. सप्तक में भरत द्वारा प्रतिपादित श्रुति सिद्धान्त की चर्चा करें।
5. ताल किसे कहते हैं?समझाइये।
6. लयकारी को परिभाषित कीजिए तथा दुगुन, चौगुन व आड़ी को समझाइये।
7. ग्वालियर घराने तथा जयपुर घराने की गायकी की क्या विशेषताऐं हैं? इन घरानों के प्रतिनिधि कलाकरों का नाम भी बताएं।
8. ध्रुपद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. धमार, टप्पा तथा ठुमरी के लिये किन–किन तालों का प्रयोग किया जाता है? इन गायन शैलियों के मुख्य गायक का नाम भी बताएं।
10. धमार के गीतों में क्या वर्णन किया जाता है?
11. ताल के कितने प्राण हैं?नाम बताइये।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप संगीत(गायन तथा वादन) सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा व अर्थ को जान चुके होंगे। संगीत में इनका क्या महत्व यह भी आप जान चुके होंगे। इन शब्दों का अन्तर समझ कर गायन व वादन में इनका उचित प्रयोग कर सकेंगे। आप गायन शैलियों जैसे ख्याल, ध्रुवपद, धमार, ठुमरी व टप्पा एवं इनकी विशेषताओं को भी भली–भांति समझ चुके होंगे। संगीत के इन महत्वपूर्ण शब्दों को समझ कर आप क्रियात्मक पक्ष में भी इनका प्रयोग कर सकेंगे।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

1. पॉच 2. 22 3. तीन 4. पखावज 5. पटियाला 6. 14
7. पंजाबी 8. टप्पा 9. 4 10. पं0 शारंगदेव 11. हिन्दुस्तानी संगीत 12. पखावज

ख) एक शब्द में उत्तर दीजिए :—

1. नाद 2. आहत नाद 3. दो(सा व प) 4. 12
5. पाईथागोरस स्केल 6. नियामत खां(सदारंग) 7. आगरा 8. धमार
9. नवाब वाजिद अली शाह 10. ठुमरी 11. गुलाम नवी(शौरी मियां)
12. श्रृंगार व करुण 13. कोहल 14. भरत 15. बृहद्देशी
16. ख्याल 17. चार 18. ध्रुवपद 19. तीन 20. पाचॅ

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भरतमुनि, *नाट्यशास्त्र*, अनु0 डा0 रघुवंश (1964), मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
2. परांजपे, श्री शरतचन्द श्रीधर, *संगीत बोध*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1986।
3. मदन, श्री पन्ना लाल, *संगीत शास्त्र विज्ञान*, अभिषेक पब्लिकेशन, चन्डीगढ, 1991।
4. ठाकुर, पंडित ओंकार नाथ, *प्रणव भारती*, वाराणसी, 1997।
5. सिंह, श्री ललित किशोर, ध्वनि और संगीत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1971।
6. बृहस्पति, आचार्य कैलाश चन्द्रदेव, *संगीत चिन्तामणी*, बृहस्पति प्रकाशन, दिल्ली।
7. साभार गूगल।

1.7 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 व 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, *संगीत शास्त्र दर्पण*।
4. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त*, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. बंसल, डॉ0 परमानन्द, *संगीत सागरिका*, प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाद, श्रुति, स्वर, लय व लयकारी का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. ख्याल, ध्रुवपद, धमार, ठुमरी व टप्पा गायन शैलियों पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 2 – पाश्चात्य संगीत का परिचय एवं स्टाफ नोटेशन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाश्चात्य संगीत का परिचय
2.3.1 स्वर 2.3.2 सप्तक(स्केल) 2.3.3 कार्डस
2.3.4 पाश्चात्य संगीत के वाद्ययंत्र 2.3.5 पाश्चात्य संगीत में रचनायें
2.4 स्टाफ नोटेशन
2.4.1 स्वरलिपि पद्धतियां
2.4.2 स्टाफ नोटेशन पद्धति
2.4.2.1 स्वर 2.4.2.2 सप्तक
2.4.2.3 की सिग्नेचर 2.4.2.4 मात्रायें
2.5 सारांश
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0–101) के चतुर्थ खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे। आप ध्वनि के विज्ञान, महत्व एवं ध्वनि भेदों को भी समझ चुके होंगे। आप संगीत की विधाओं से सम्बन्धित परिभाषाओं (स्वर, श्रुति, नाद, सप्तक, लय आदि) के बारे में भी विस्तार से जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में पाश्चात्य संगीत का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत है। भारत में जिस संगीत का विकास एवं प्रचार हुआ वह मेलोडी प्रधान है किन्तु पाश्चात्य संगीत हार्मनी प्रधान है। संगीतकार पहले रचना करते हैं ओर फिर सभी वादक उस स्वरलिपि के अनुसार कम्पोज्ड रचना को बजाते हैं। इस इकाई में स्वरलिपि पद्धति अर्थात स्टाफ नोटेशन का भी वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाश्चात्य संगीत से परिचित होंगे। स्वरलिपि पद्धति अर्थात स्टाफ नोटेशन का पाश्चात्य संगीत में क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई से समझेंगे। इस इकाई को पढने के उपरान्त आप पाश्चात्य संगीत के सिद्धान्त तथा इसके क्रियात्मक पक्ष से भी भली–भांति अवगत होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बता सकेंगे कि पाश्चात्य संगीत किसे कहते हैं? स्वर, सप्तक, सेमीटोन आदि का क्या महत्व है?
- पाश्चात्य संगीत के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
- बता सकेंगे कि पाश्चात्य संगीत की रचनाएँ कैसी होती हैं।
- बता सकेंगे कि पाश्चात्य संगीत में कौन–कौन से वाद्य बजाये जाते हैं।
- स्टाफ नोटेशन पद्धति को समझ सकेंगे।

2.3 पाश्चात्य संगीत का परिचय

प्राचीन काल में भारत में वैदिक संगीत प्रचलित था, तत्पश्चात गान्धर्व संगीत प्रचलित हुआ। वैदिक सामगायन का अभ्यास एकान्त में तथा प्रयोग, यज्ञों में सामूहिक रूप से किया जाता था। धीरे–धारे गान्धर्व संगीत के अन्तर्गत भारतीय संगीत का जो विकास हुआ वह व्यक्तिक होता चला गया और मेलाडी के रूप में विकसित होकर आज भी प्रचार में है। इसके विपरीत पाश्चात्य संगीत हार्मनी के लिये प्रसिद्ध है। सामूहिक गानपद्धति के कारण पाश्चात्य संगीतकारों ने उसे अपनाया। हार्मनी का जन्म इसाई गिरिजों में संघगीत गायन के कारण हुआ। यह मध्यकाल की उपज है। उनके गिरिजाघरों में जो प्राचीन संगीत गाया जाता है उसमें मेलाड़ी की छटा आज भी दृष्टिगोचर होती है। कालान्तर में सैकडों, हजारों स्त्री पुरूष इसे एक धार्मिक कृत्य मान कर एक साथ गिरिजाघरों में प्रार्थनागीत गाने लगे, उनमें से किसी की ध्वनि मन्द्र स्वर की किसी की तीव्र स्वर की और महिलओं का स्वर और भी अलग होता था। इस कोलाहल में व्यवस्था एवं एकसूत्रता स्थापित करनी पडी होगी।

इस प्रकार लोग कोई सा में, कोई गांधार में गाने लगे। यही Polyphony अर्थात् इस प्रकार हार्मनी का उद्‌भव हुआ होगा। हार्मनी संगीत आज पाश्चात्य देशों में सर्वत्र प्रचलित है। यहॉ तक की यूरोप के पड़ोसी मिस्र, तुर्कीस्तान आदि देशों में भी उसे स्वीकार कर लिया गया है। वैश्वीकरण के इस युग में यह आवश्यक है कि पाश्चात्य संगीत के तत्वों को जाना जाये तथा उसे लिखने की स्वरलिपि पद्धति का भी ज्ञान प्राप्त किया जाये।

<u>**2.3.1 स्वर**</u> – पाश्चात्य संगीत में स्वरों को Do, Ri, Mi, Fa, So, La, Si या C D E F G A B कहा जाता है। भारतीय संगीत में **सा रे ग म प ध नि** ये सात स्वर होते हैं लेकिन पाश्चात्य संगीत में C D E F G A B के पाश्चात् C और जोड़ कर आठ स्वर प्रयोग में लाए जाते हैं। आठ स्वर होने के कारण इसे **''आक्टेव''** कहा जाता है।

<u>**2.3.2 सप्तक (स्केल)**</u> – स्वरों को रखने के ठंग को स्केल कहते हैं। स्केल दो प्रकार के होते हैं :–

1–डायटोनिक**(Diatonic)** 2– क्रोमैटिक**(Chromatic)**

ये दोनों स्केल दो प्रकार के सेमीटोन के आधार पर बनाए गये हैं। डायटोनिक स्केल में टोन और सेमीटोन दोनों का प्रयोग होता है। जबकि क्रोमैटिक में केवल सेमीटोन ही प्रयुक्त होते हैं। डायटोनिक स्केल के भी दो भाग होते हैं – एक को मेजर तथा दूसरे को माइनर स्केल कहते हैं। प्रत्येक स्केल में (हमारे मेल या ठाठ की भान्ति) सातों स्वरों का होना आवश्यक है।

<u>**मेजर स्केल**</u> – इसमें टोन और सेमीटोन का क्रम एक विशेष प्रकार से निश्चित होता है। इसमें तीसरे और चौथे एवं सातवें एवं आठवें स्वरों के बीच में सेमीटोन होता है तथा शेष स्वरों के बीच में टोन।

'सा' (या सी) के मेजर के स्वर शुद्ध स्वर कहलाते हैं। इस स्केल के स्वरों में हारमोनियम के नीचे ही, नीचे के समस्त सफेद स्वर प्रयोग में आते हैं। इस प्रकार अलग अलग स्वरों को आधार बनाने पर अन्य मेजर स्केल भी बनाये जा सकते हैं। इसी तरह से फ्लैट स्वरों के आधार पर भी मेजर स्केल बनाए जाते हैं।

<u>**माइनर स्केल**</u> – जब किसी भी मेजर स्वरान्तर को एक सेमीटाने कम कर लेते हैं तो वह माइनर स्केल बन जाता है।

<u>**क्रोमैटिक स्केल**</u> – क्रोमैटिक स्केल में समस्त स्वर एक–एक ही सेमीटोन की दूरी पर रखे जाते हैं। चूॅकि एक सप्तक में कुल 12 ही स्वर होते हैं अतः उन्हें ही क्रम से रचाने की क्रिया को क्रोमेटिक स्केल कहते हैं। इसमें एक ही नाम के दो–दो स्वर भी आ जाते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्रोमैटिक स्केल को प्रायः मेजर स्केल के स्वरों के आधार पर ही बनाते हैं।

<u>2.3.3 कार्डस</u> – जैसा कि आप जानते हैं कि पाश्चात्य संगीत का आधार 'हार्मनी 'है। यह 'हार्मनी' कार्डस द्वारा उत्पन्न की जाती है। इन कार्डस के द्वारा 'ट्रायडस' बनती है। ट्रायडस का अर्थ है तीन भिन्न स्वरों को मिलाना अथवा यूँ कहें कि तीन स्वरों की कार्डस को ट्रायडस कहते हैं। कार्डस के विभिन्न प्रकार हैं :–

1. मेजर कार्ड
2. माइनर कार्ड
3. डामीनैन्ट सैविंथ कार्ड
4. डिमिनिश्ड कार्ड
5. आगमैन्टैड कार्ड
6. नाइंथ कार्ड
7. माइनर नाइंथ कार्ड

ये सब कार्डस स्वरों के आधार पर बनती है। पाश्चात्य संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर की छोटी से छोटी दूरी को सेमीटोन कहते हैं। मेजर ट्रायडस का प्रभाव प्रसन्नता, निर्मलता और सुख का द्योतक माना जाता है। जबकि माइनर ट्रायडस का प्रभाव दुःख व करूण मानते हैं। इस प्रकार अनेक कार्डस के अलग–अलग प्रभाव होते हैं।

<u>2.3.4 पाश्चात्य संगीत के वाद्ययंत्र</u> – पाश्चात्य संगीत में कई प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता है। मन्द्रतम स्थान से लेकर अतितार स्थानीय ध्वनियों तक को उत्पन्न करने के लिए पाश्चात्य वाद्ययंत्रों का विकास किया गया है जिनमें से कुछ प्रमुख वाद्यों का विवरण यहॉ प्रस्तुत है।

<u>वायोलिन परिवार के वाद्य</u> – इस वर्ग में वायोलिन का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इस वर्ग में चार वाद्य माने जाते हैं।

1. Violin (वायोलिन)
2. Violas (वायोलाज)
3. Cello (सैलो)
4. Double Bass (डबिल बास)

1. **वायोलिन** – इस वर्ग का यह प्रमुख वाद्य है।
2. **वायोलाज** – यह वायोलिन से कुछ बड़ा होता है और बिल्कुल वायोलिन की भान्ति ही बजता है। जो वायोलिन बजा लेता है वह वायोलाज भी बजा सकता हैं। इस वाद्य का प्रयोग आजकल कम हो गया है।
3. **सैलो** – वायोलिन से अलग स्थान इसी वाद्य का है। वृन्दवादन में इस वाद्य का बहुत महत्त्व है। इस वाद्य को घुटनों के बीच में रख कर बजाते हैं। इस वाद्य में वायोलाज से भी एक सप्तक नीचे के स्वर निकलते हैं।
4. **डबिल बास** – इस वर्ग का यह सबसे बड़ा वाद्य है। इसका उपयोग केवल वृन्दवादन में ही किया जाता है। इसका आकार लगभग छह फुट का होता है। वादक या तो बडे ऊँचे स्थान पर बैठकर या खड़ा होकर इस वा्द्य को बजाता है।

<u>सुषिर अथवा फूंक से बजने वाले वाद्य (Wind Instruments)</u> – इन वाद्यों के दो भेद होते हैं – एक लकड़ी के और दूसरे पीतल के। लकड़ी के वाद्यों में बांसुरी बहुत प्रसिद्ध वाद्य है और प्रायः इसके विषय में सब जानते हैं। पाश्चात्य संगीत वाद्यों में बहुत ऊँचे स्वर बजाने के लिये एक छोटी बांसुरी और होती है जिसे **पिक्कोलो (Piccalo)** कहते हैं। कोमल तीव्र स्वरों को बजाने के लिए इसमें चाबियां भी लगायी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त फूॅक के वाद्यों में **पत्ते** (Reed) के वाद्य भी आते हैं। (जैसे भारतीय संगीत में शहनाई)। इनमें ओबो (Obeo) और क्लैरीनेट (Clarinet) विशेष रूप से प्रयोग किया जाते हैं। क्लैरीनेट में एक रीड होती है जबकि ओबों में दो रीड होती है। जब इसी वाद्य द्वारा और नीचे बास

के स्वर बजाये जाते हैं तो इसे और लम्बा बना देते हैं और इसका नाम बसून (Basson) या फंगोट्टो (Fagotto) रख देते हैं। इसी प्रकार क्लैरीनट में भी बास क्लैरीनट होता है जिसमें इसे बडा बनाया जाता है और नीचे एक भोंपा या चोंगा सा लगा दिया जाता है।

पीतल के सुषिर वाद्य (Brass Instruments) – इसमें सबसे सरलता से पहचान में आने वाले वाद्य को हार्न (Horn) कहते हैं। यह लगभग बारह फुट लम्बी पीतल की नली का बना होता है जो मुंह की ओर से पतली और अन्त की ओर से चौड़ी हो जाती है। भारतवर्ष में शादी इत्यादि पर निकलने वाले अंग्रेजी बाजों में इसे देखा जा सकता है।

दूसरा पीतल का वाद्य जो आसानी से पहचान जा सकता है वह ट्रम्पेट(Trumpet) है। जब इसे छोटे आकार का बनाते है तो कारनेट कहते है। इस जाति का एक ओर वाद्य ट्रमबोन (Trumbono) है। यह भी भिन्न–भिन्न सप्तकों के लिये भिन्न–भिन्न आकार का बनाया जाता है।

इसके अतिरिक्त सबसे नीचे के स्वर को बजाने के लिये टूयबा (Tuba) नामक वाद्य काम में लाया जाता है। इनमें ट्रमपैट सबसे ऊॅचे तथा ट्यूबा सबसे नीचे नाद के लिये होते हैं।

आघात से बजने वाले वाद्य (Percussion Instruments) – इनमें सबसे प्रसिद्ध वाद्य पीतल का बना और खाल से मढा हुआ होता है। इसके चारों ओर पेंच लगे रहते हैं। जिनके द्वारा खाल को ठीला किया जा सकता है तथा ताना जा सकता है। इसे कैटिलड्रम या टिमपैनी(Kettle Drum or Timpani) कहते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे ड्रम और बास ड्रम भी होते हैं। इसके अतिरिक्त घन वाद्यों झांझ ट्राइएन्गिल्स(Triangles) त्रिकोण, लोहे का बना होता है और लय तथा ताल के लिये बजाया जाता है। भांग लगा हुआ डफ टैम्बोरीन(Tambourine), ग्लोकैन स्पाइल(Glockenspill), नलतरंग तथा घुघरूतरंग आदि है।

प्रायः यही वाद्य वृन्दवादन में काम में लाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त निम्न कुछ वाद्य और हैं जिनका वृन्दवादन में प्रयोग नहीं के बराबर होता है।

मिजराब या कोण से बजाये जाने वाले वाद्य (Plucked Instruments) – इस जाति के वाद्यों में हार्प (Harp) को एक प्रकार से स्वरमण्डल की भान्ति समझना चाहिये। इस जाति के अन्य वाद्य गिटार, मैंडोलिन तथा बैन्जो आदि हैं। गिटार तथा मैन्डोलिन, वायोलिन की भान्ति तमाम लकडी के बने होते हैं, जबकि बैंजो की तबली खाल से मढ़ी होती है।

इनके अतिरिक्त सैलैस्टा(Celesta) धातुओं की पट्टियों को स्वर में ट्यून करके किमडियों से बजाते हैं। इसे लोहतरंग भी कह सकते हैं; डलसीमर(Dulcimer) एक प्रकार का छोटा बाजा, प्यानो(Piano), आरगन(Organ), हारमोनियम(Harmonium), माउथआरगन(Mouthorgan), सैक्सोफोन(Saxophone) आदि वाद्य हैं। इस प्रकार यहॉ हमने पाश्चात्य संगीत के कतिपय वाद्यों का उल्लेख किया है।

2.3.5 पाश्चात्य संगीत में रचनायें – अब तक आप जान गये हैं कि पाश्चात्य संगीत में स्वरों, मात्रा और वाद्यों का अपना एक स्थान है। इस संगीत में बजायी जाने वाली रचनाओं की संक्षिप्त चर्चा करना यहॉ हमारा उद्धेश्य है।

कोरस (Chorus) – स्वरों के माध्यम से जब भावनाओं को व्यक्त किया जाता है तो उसे संगीत कहते हैं। जब किसी एक मनुष्य अथवा एक वाद्य द्वारा संगीत की प्रस्तुति हो तो उसे एकाकी गायन या एकाकी वादन कहते हैं। जब दो, तीन चार या अधिक मनुष्यों के द्वारा सम्मिलित गायन कराया जाये जो उसे वोकल एन्सैम्बिल(Vocal Ensemble) कहते हैं। किन्तु यदि गायकों की संख्या बहुत अधिक बढा दी जाए तो उस गायन को **कोरस** कहते हैं। एक गिरिजाघर में सम्मिलित रूप से गायन करने को कोयर(Choir) कहते हैं। इस प्रकार जब एक कोयर में प्रायः स्त्रियों और

पुरूषों दानों के कण्ठों की ध्वनिया मिली रहती है तो उसे मिश्र कोरस कहते हैं। जब दो सम्पूर्ण कोरस को मिलाकर गान कराया जाये तो उसे डबिल कोरस कहते हैं।

चैम्बर म्यूजिक (Chamber Music) – सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक वाद्य संगीत के जो कार्यक्रम होते थे उनके तीन रूप थे। एक तो गिरिजों में, दूसरा नाट्यशालाओं में और तीसरा धनाठ्य व्यक्तियों अथवा राजकर्मचारियों के यहॉ। इन कार्यक्रमों में तीसरे प्रकार का, जिसे **चैम्बर म्यूजिक** कहा जाता था, प्रयोग होता था और जो संगीतकार उनमें भाग लेते थे उन्हें चैम्बर म्यूजिशियन कहते थे। आज इस शीर्षक के अन्दर केवल वाद्य संगीत के छोटे कार्यक्रम ही आते हैं। इन कार्यक्रमों को चैम्बर एनसैम्बिल भी कहते हैं।

इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न प्रकार की रचनायें आती है।

1. सोलो सोनैटाह(Solo Sonate)
2. चैम्बर आरकैस्ट्रा(Chamber Orchestra)
3. बडे समूह(Large Ensembles)
4. मिश्र एन्सैम्बिल(Mixed Ensembles)

संगीत रचना के प्रकारों में कैनन(Canon), राउण्ड(Round), दर्पण की कैनन(Mirror Canon), अनुविलोम कैनन या रेट्रोग्रेड मोशन(Retrograde Motion), आगमैन्टेशन और डिमीन्यशन(Augmentation and Diminution), डबिल कैनन(Double Canon), फग(Pugue) तथा रोन्डो(Rondo) आदि रचनाएं आती है। इसके अतिरिक्त ओपेरा(Opera), आरेटारियों(Oratorio), कैनटाटा(Cantata), मास(Mass), आवेरटयूर(Overture), बैलेट(Ballet) और इंटरल्यूड(Interlude) मुख्य रूप से प्रचलित हैं।

2.4 स्टाफ नोटेशन

संगीत की अभिव्यक्ति स्वर रचना द्वारा होती है। किसी गीत को जब स्वर और लय के माध्यम से अभिव्यक्ति किया जाता है तो वह सांगीतिक रचना कहलाती है। रचनाओं की पुनः अभिव्यक्ति व अभ्यास किया जाता है। ऐसे उनके स्मरण एवं संरक्षण के लिए लिखने का प्रयास किया गया। भारत में इस प्रकार लिखने की परम्परा हमें वैदिक काल में दिखायी पडती है। जहॉ सामवेद की ऋचाओं को आर्चिक संहिता के रूप में संकलित किया गया तथा उन ऋचाओं पर गाये गये गानों, जिनको सामगान कहा जाता है स्वरलिपि सहित गान संहिता के रूप में संकलित किया गया। इस प्रकार स्वरलिपि का विकास होता गया। संगीत में तकनीकी विकास एवं गुरूशिष्य परम्परा के कारण भारतीय संगीत की सब बारीकियों को लिपिबद्ध करना कठिन है। लेकिन पाश्चात्य संगीत में मौखिक संगीत के स्थान पर लिखित संगीत पर अधिक जोर दिया जाता रहा है। यहॉ हम पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति की चर्चा करेंगे।

यद्यपि प्राचीन चर्च के प्लेन सोंग कहीं भी आज लिखित रूप में प्राप्त नहीं हैं। परन्तु धीरे–धीरे संगीत के विकासक्रम में स्वरलिपि पद्धति आगे बढी, ऐसा हम कह सकते हैं। इतिहासकारों का कहना है कि ग्रीक दार्शनिक पाइथागोरस ही प्रथम यूरोपीय थे जिन्होंने आधुनिक स्वरलिपि पद्धति की नींव रखी। इससे पहले ग्रीक संगीत, अक्षरों में लिखा जाता था। विकास के इस क्रम में पाश्चात्य स्वरलिपि को आज स्टाफ नोटेशन के रूप में पूर्ण रूप प्राप्त हो चुका है।

2.4.1 स्वरलिपि पद्धतियां – पाश्चात्य संगीत में जो भी स्वरलिपियां प्रचार में आयी है उनका हम यहॉ उल्लेख करने का प्रयास कर रहे हैं ताकि आज प्रचलित स्टाफ नोटेशन के स्वरूप को आप समझ सके। विदशों में मुख्य रूप से चार स्वरलिपि पद्धितियां प्रचलित हुई जो इस प्रकार है :–

1. सोल्फा पद्धति(Solfa Notation)
2. न्यूम्ज पद्धति(Neums Notation)
3. चीव्ह पद्धति(Cheve Notation)
4. स्टाफ पद्धति(Staff Notation)

1. सोल्फा पद्धति(Solfa Notation) – पाश्चात्य पद्धति सा, रे, ग, म, प ध, नि, को क्रमशः डो (Do), रे (Re), मी (Me), फा (Fa), सोल (Sol), ला (La), सी (Si) कहते हैं। इस पद्धति में तार सप्तक के स्वर लिखते समय स्वरों के ऊपर खड़ी या पड़ी रेखाओं का चिह्न लगाते हैं। मन्द्र सप्तक के स्वर लिखते समय यही रेखायें स्वरों के नीचे लगा दी जाती थी। विकृत स्वर लिखने के लिये स्वरों के उच्चारण अथवा मात्राओं में अन्तर कर देते थे। जैसे Re (रे) का तात्पर्य शुद्ध रे से था, यदि इसी स्वर को (Ra) रा लिखा जाये तो यह कोमल रे कहलाता था। इसी प्रकार अन्य स्वरों के उच्चारण या मात्राओं में अन्तर करके विकृत स्वर दिखाये जाते थे। विभिन्न प्रकार की रेखाओं तथा बिन्दुओं का प्रयोग भी अन्य चिह्नों को दिखाने के लिये किया जाता था। इस पद्धति से संगीत के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को कुछ लाभ तो अवश्य हुआ, किन्तु स्वरों के चिन्हों की ऊँचाई – नीचाई स्थिर न होने के कारण कभी–कभी स्वरलिपिकर्ता को अपनी ही रचनायें कठिन प्रतीत हुई। अतः यह पद्धति शीघ्र ही लुप्त हो गयी।

2. न्यूम्ज पद्धति (Neums Notation) – इस पद्धति में स्वरों के नाम न लिख कर स्वल्प विराम, विराम डैश तथा आड़ी–तिरछी रेखाओं के द्वारा स्वरों को प्रकट किया जाता था। ये चिन्ह स्वरों की मात्राओं के काल को प्रकट करते थे। भारतीय संगीत में वेद की ऋचाओं पर इसी प्रकार के चिन्ह पाये जाते है। मध्ययुग में यही स्वरलिपि पद्धति प्रचलित थी, किन्तु बाद में अपनी पेंचीदगी के कारण यह पद्धति भी समाप्त हो गयी।

3. चीव्ह स्वरलिपि पद्धति (Cheve Notation) – इस पद्धति में स्वरों को प्रदर्शित करने के लिये सोल्फा स्वरों की अपेक्षा 1, 2, 3, 4 आदि गिनतियों का सहारा लिया गया। इस पद्धति के आविष्कारक गणित के फ्रांसीसी प्रोफेसर पीरी गालिन (Pierre Galin 1786-1821) थे। इसके बाद एमी पेरिस (Aime Paris 1798- 1860) ने प्रबल विरोध एवं विवाद के बावजूद भी इस पद्धति को सर्वविदित कर लोकप्रिय बनाया तथा आगे बढ़ाया। यह पद्धति भी स्टाफ नोटेशन के आने के कारण लुप्त हो गयी।

4. स्टाफ पद्धति (Staff Notation) – इस पद्धति का विस्तृत अध्ययन आगे प्रस्तुत है।

2.4.2 स्टाफ नोटेशन पद्धति (Staff Notation) – न्यूम्स की पद्धति को ही परिष्कृत करके स्वरों को स्थिर स्थान पर रखने के लिये रेखाओं का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार स्वरों की ऊँचाई–नीचाई दिखाने के लिये ग्यारह रेखाओं का प्रयोग किया गया तथा सामूहिक गान तथा वृन्दवादन की दृष्टि से, अनेक प्रकार के ऊँचे–नीचे स्वरों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये विभिन्न क्लैफ्स (Clefs) बनाये गये। अभी तक एक प्रकार से यह पद्धति अधिकांश पद्धतियों में सम्पूर्ण सी है और लगभग समस्त पश्चिमी देशों में प्रचलित है। इसे पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति या **स्टाफ नोटेशन** कहते हैं। इस पद्धति को जानने के पूर्व इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि इस पद्धति में कोई स्वर अचल नही है। 'सा' या 'प' भी कोमल या तीव्र होते रहते हैं। अतः आपको यह ध्यान रखना चाहिये कि अचल स्वर स्थिर रहेंगे यह आवश्यक नहीं है और दूसरी बात यह है कि पाश्चात्य संगीत में जो भी 'सा' निश्चित हो चुका है सदैव वही स्वर 'सा' रहेगा। भारतीय संगीत की भॉन्ति उसमें यह नहीं किया जा सकता कि यदि मेरा कंठ–स्वर प्रथम काले से मिलता है तो में उसे ही षड्ज मानकर गायन प्रारम्भ कर दूँ, जबकि दूसरा गायक प्रथम काले के स्थान पर दूसरे काले को 'सा' मानकर गाता है। भारतीय संगीत में तो जिस स्वर से गायक को सुविधा प्रतीत हो, वह उसी को षड्ज मान लेता है परन्तु पाश्चात्य संगीत में जो भी स्वर 'सा' है वही सदैव षड्ज रहेगा। अन्य स्वरों के नाम उसी षड्ज के आधार पर दिये जाएगें। इस तरह पाश्चात्य संगीत ने अपने षड्ज– आन्दोलन को स्टैंडर्ड कर दिया है।

अब हम यहॉ स्टाफ नोटेशन पर विचार करेंगे।

2.4.2.1 स्वर — नाद के ऊँचे—नीचेपन को लिपिबद्ध कर देने से ही संगीत की स्वरलिपि बन सकती हैं। जो स्वर भारतीय संगीत में सा रे ग म प ध नी कहते हैं, उन्हें अंग्रेजी संगीत में क्रम से सी (C), डी (D), ई (E), एफ (F), जी (G), ऐ (A) और बी (B) कहते हैं। प्यानो या हारमोनियम में जो पहले दो काले परदे होते हैं, उनमें पहला सफेद पर्दा इनका 'सा' होता है। उसको 'सा' मानकर शुद्ध स्वर बजायें तो समस्त परदे नीचे के सफेद ही बजते है। इसलिए पाश्चात्य संगीत में समस्त सफेद परदे शुद्ध और काले विकृत कहलाते हैं। शुद्ध स्वरों के स्थान निम्न चित्र से स्पष्ट हो जायेंगे :—

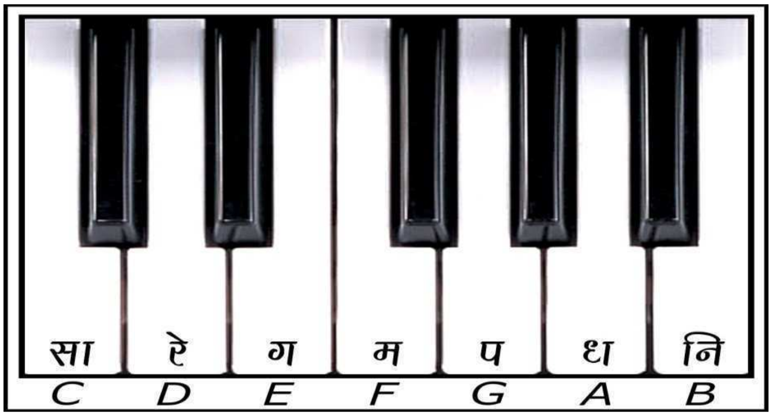

संगीत के ये सात स्वर प्रकृति की देन है। इसलिये जब हम स्टाफ नोटेशन को देखते है तो पाते हैं कि यह चिन्ह किसी भी देश की भाषा के नहीं हैं। इन चिन्हों को समझकर कोई भी भाषा बोलने पढने वाला व्यक्ति संगीत की शिक्षा ले सकता है। इस लिपि की इसी विशेषता ने इसे विश्वव्यापी बना दिया है। इस पद्धति की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि यह लिपि संगीत के सूक्ष्मतम भावों को भी प्रकट कर सकती है। इस स्वरलिपि के कारण बीथोवन ओर मोजार्ट आदि की कम्पोजीशन आज तक सुरक्षित है।

स्टाफ नोटेशन लिखने के लिये पॉच सामानन्तर रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। लाइन की गिनती नीचे से ऊपर की ओर की जाती है। स्वरों को प्रदर्शित करने के लिये अण्डे के आकार जैसे चिन्ह का प्रयोग करते हैं — जैसे 0। यह क्रिया ग्यारह सीधी रेखाओं से की जाती है जिसे ग्रेट स्टेव (Great stave) कहते हैं। स्वरों को प्रकट करने वाला अण्डे के आकार का चिन्ह इन्हीं रेखाओं के ऊपर और मध्य में रखा जाता है। जैसे—

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि यदि एक स्वर रेखा के ऊपर है तो दूसरे दो रेखाओं के बीच में। फिर, प्रत्येक स्वर को प्रदर्शित करने के लिये केवल एक ही चिन्ह का आधार लिया हैं

चूंकि पाश्चात्य संगीत में तीन से अधिक सप्तकों का प्रयोग किया जाता है। अतः इन रेखाओं द्वारा तीन से भी अधिक सप्तकों के स्वर सरलता से लिखे जा सकते हैं।

अब यदि हम ग्यारह रेखाओं में से ऊपर की या नीचे की पॉच रेखाओं को छोड कर बीच की रेखा को स्पष्ट नहीं लिखें या छोड़ दे तो ये रेखाये दो भागों में विभाजित हो जायेगी। जो रेखा छोड़ दी जाएगी उस पर मध्य 'सा' होगा। इस प्रकार हम 'सा' के स्थान को तुरंन्त पहचान सकेंगे। जैसे :—

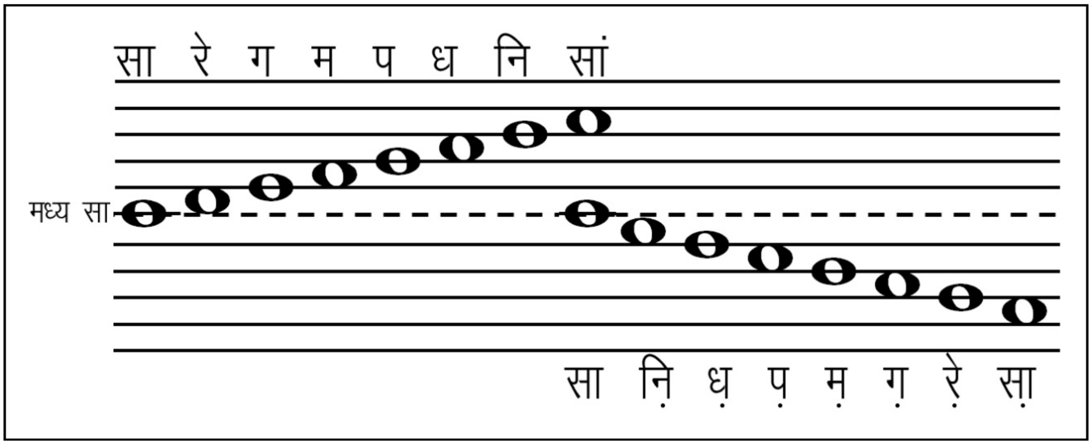

इस ग्यारह रेखाओं का उपयोग तभी किया जाता है जबकि एक साथ मन्द्र, मध्य और तार सप्तक के स्वरों को बजाना होता हें। जो प्रायः वृन्दवादन या प्यानोवादन में होता है। परन्तु जब किसी ऐसे वाद्य के लिये रचना लिखनी होती है जिसमें कि केवल ऊपर या नीचे की किन्ही पॉच रेखाओं से काम चल जाये तो ग्यारह रेखायें न खींच कर पॉच से ही काम चला लेते हैं। उस समय यह स्पष्ट करने के लिये कि मध्य षड्ज की स्थिति पॉच रेखाओं के नीचे हैं या ऊपर, रचना को प्रारम्भ करने से पूर्व एक चिन्ह जिसे क्लैफ (Clef) कहते हैं, लगा देते हैं।

इस प्रकार पॉच रेखाओं पर मध्य 'सा' की स्थिति को बताने वाले चिन्ह को 'क्लैफ' कहते हैं।

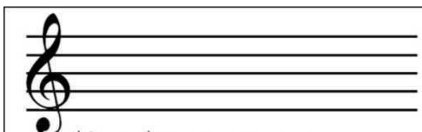

ट्रैबिल क्लैफ (Trable Clef)

जब मध्य सा पॉच रेखाओं से नीचे रहता है तो इस बात को प्रकट करने वाले चिन्ह को 'ट्रैबिल क्लैफ' कहते हैं। इसका चिन्ह बाएं है।

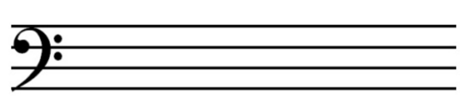

बास क्लैफ (Bass Clef)

जब मध्य सा पॉच रेखाओं के ऊपर रहता हे तो इस बात को प्रकट करने के लिये जिस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। उसे 'बास क्लैफ' (Bass clef) कहते हैं। इसका चिन्ह बाएं है—:

ट्रैबिल क्लैफ सदैव नीचे से दूसरी रेखा से प्रारम्भ होता हे जहॉ जी (या प) स्वर होता है। अतः इसे जी क्लैफ भी कहते हैं इसी प्रकार बास क्लैफ का चिन्ह सदैव ऊपर से नीचे की ओर चलने पर दूसरी रेखा से प्रारम्भ होता है। जहॉ एफ (या म) स्वर होता है। इसलिये इस क्लैफ को 'एक— क्लैफ' भी कहते है।

जब किसी स्वर के ऊपर 8ve (आठवां) लिखा रहता है तो वह स्वर एक सप्तक ऊपर का बजाया जाता हें जैसा बाएं चित्र में है।

इसी प्रकार जब आठवां (8 ve Bass) जिन स्वरों के नीचे लिखा रहता है वे स्वर बास Clef के स्वरों से भी एक सप्तक नीचे बजते हैं। जैसे बाएं चित्र में दिया गया है।

इस प्रकार लिखने से लैजर रेखायें नहीं लिखनी पड़ती। जब किसी भी स्वर के नीचे आठ या कॉन– आठवॉ (8 या Con 8 ve) लिखा हो तो इसके अर्थ होंगे कि वह स्वर और उसके नीचे वाले सप्तक का वही स्वर, दोनों एक साथ बजेंगे।

<u>शुद्ध और विकृत स्वर</u> :–

<u>टोन और सेमीटोन</u> – पाश्चात्य संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर तक की सबसे छोटी दूरी को सेमीटोन कहा जाता है। जैसे सा से कोमल रे अथवा शुद्ध म। इसी को हाफ टोन या आधा टोन भी कहते हैं। जब दो हाफ टोन अथवा सेमीटोन मिल जाते हैं तो पूरा एक स्वर या (Tone) बन जाता है जैसे सा से रे या रे से ग। इस प्रकार हमारे शुद्ध स्वरों में सा – रे , रे – ग, म – प, प – ध और ध – नि के बीच पूरा एक–एक टोन है और ग–म और नि–सां के बीच की दूरी आधी – आधी टोन अर्थात् सैमीटोन है।

आप यह बात हमेशा ध्यान में रखिये कि किसी भी शुद्ध स्वर से सेमीटोन की दूरी पर आगामी स्वर शार्प (Sharp) कहलाता है जैसे सा से कोमल रे। चूंकि भारतीय संगीत में षड्ज अचल स्वर कहलाता है, अतः सा से एक सैमीटोन की दूरी वाले अगले स्वर को हम कोमल रे कहते हैं परन्तु पाश्चात्य संगीत में उसे कोमल रे न कह कर *सी – शार्प* कहेंगे।

इसी प्रकार सा से एक सेमीटोन की दूरी पर पहले स्वर को फ्लैट (Flat) स्वर कहते हैं जैसे सा से नि़ । पाश्चात्य संगीत में इस शुद्ध नि को *सी–फ्लैट* कह सकते हैं। स्वरलिपि पद्धति में इन स्वरों को विशेष चिन्हों द्वारा अंकित किया जाता है जो निम्न प्रकार है।

<u>शार्प</u> – जब किसी स्वर को एक सेमीटोन से ऊँचा लिखना होता है तो उस स्वर से पहले ♯ ऐसा चिन्ह लगा दिया जाता हैं।

<u>फ्लैट</u> – जब किसी स्वर को एक सेमीटोन नीचा लिखना होता है तो उस स्वर से पहले इस ♭ चिन्ह को, जो फ्लैट का चिन्ह है, लगा देते हैं।

<u>डबल शार्प</u> – इसी प्रकार जब किसी भी स्वर को एक टोन से ऊँचा करना होता है तो उस स्वर से पहले **X** चिन्ह, जो कि डबल शार्प का है, लगा देते हैं।

<u>डबल फ्लैट</u> – जब किसी भी स्वर को एक टोन से नीचा करना होता है को इस चिन्ह ♭ ♭ को लगा देते हैं, जो कि डबल फ्लैट का चिन्ह है।

इस प्रकार जब हम 'सा' से पहले यदि डबल शार्प का चिन्ह लगा देंगे तो इसका अर्थ होगा कि शुद्ध रे बजेगा। अथवा जब रे से पूर्व डबल फ्लैट का चिन्ह लगा देगे तो इसका अर्थ होगा कि 'सा' स्वर बजाना है।

कभी–कभी जब ऊँचे स्वर बजाये जाते हैं तो बायां हाथ भी ट्रेबल क्लैफ के स्वर बजाने लगता है और बहुत नीचे स्वर बजाते समय सीधा हाथ भी बास क्लैफ के स्वर बजाता रहता है। क्लैफ का चिन्ह सदैव रेखाओं के प्रारम्भ में ही रखा जाता है। स्टाफ में रेखाओं को सदैव नीचे से ऊपर की ओर गिनते है।

<u>लैजर रेखायें</u> – जब हमें इन ग्यारह रेखाओं के स्टाफ से अधिक ऊँचे अथवा अधिक नीचे स्वर बजाने हो तो आवश्यकतानुसार छोटी–छोटी अन्य रेखायें खींच लेते हैं। इन रेखाओं को लैजर रेखायें (leger lines) कहते हैं। नीचे के चित्र में ट्रेबिल क्लैफ के ऊपर और नीचे बढाये हुए स्वर देख सकते हैं जिनसे स्थिति स्पष्ट होगी।

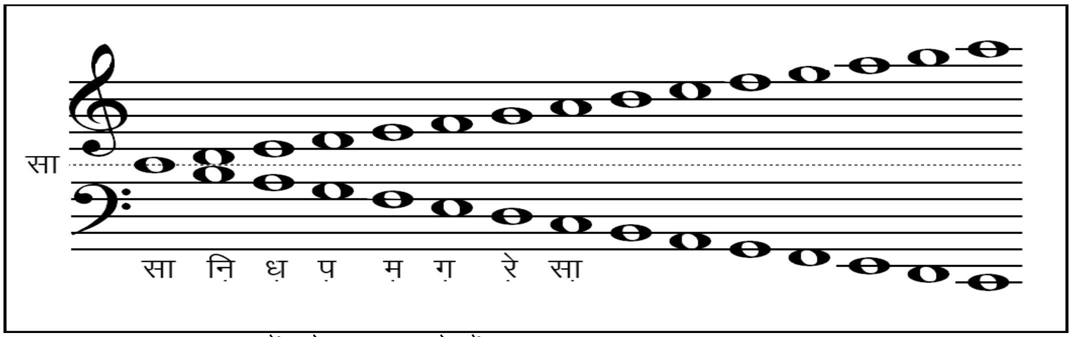

इस प्रकार लाइनों को बढा सकते हैं।

2.4.2.2 <u>**सप्तक**</u> – आप देखेंगे कि संगीत में केवल सा रे ग म प ध नि जो अंग्रेजी संगीत में सी, डी, ई, एफ, जी, ए, बी कहलाते हैं, का ही प्रयोग होता है। जब और ऊपर के स्वर गाये जाते हैं तो इन्हीं को फिर से कहना प्रारम्भ कर देते हैं। जैसे :–

सा रे ग म प ध नि, सा रे ग म प ध नि, सा रे ग म प ध नि

C D E F G A B, C D E F G A B, C D E F G A B

इस प्रकार जब कोई दो स्वर आठ स्वरों के अन्तर पर हो, जैसे सा से सा (C से C) या ग से ग (E से E) तो इसे *सप्तक* या *आक्टेव* कहते हैं।

चूँकि नि – सां और ग – म बीच का अन्तर केवल एक – एक ही सेमीटोन (Semitone) है, अतः शुद्ध म पर डबल फ्लैट के चिन्ह के अर्थ होंगे 'कोमल गांधार' अथवा डी–शार्प (D-sharp)। इसी प्रकार सा डबल फ्लैट के अर्थ होंगे कोमल निषाद अर्थात B Flat (बी– फ्लैट) से।

<u>पुनः शुद्ध रूप देना</u> – जब किसी डबल फ्लैट स्वर को अथवा डबल शार्प स्वर को पुनः शुद्ध स्वर के स्थान पर ही लाना होता है तो इस ♮♮ चिन्ह को लगा देते हैं। कभी–कभी केवल एक ही चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। तब इसका अर्थ यही होगा कि जो भी स्वर अपने स्थान से ऊँचा या नीचा किया गया है, इस चिन्ह के लगने से इसके बाद वह स्वर अपने प्राकृतिक रूप में ही बजेगा। इस प्रकार आप देखेंगे कि रेखा के ऊपर आने वाले अथवा दो रेखाओं के बीच में आने वाले किसी स्वर को, उसी स्थान पर रखते हुए भी केवल चिन्हों द्वारा ही ऊँचा या नीचा किया जा सकता है। फिर चिन्ह द्वारा ही उसे पुनः शुद्ध रूप दिया जा सकता है।

जैसा कि आपने अब तक देखा, पाश्चात्य पद्धति में एक ही बिन्दु प्रत्येक स्वर को प्रकट करता है। भारतीय संगीत की भान्ति इसमें भिन्न स्वरों के लिए अक्षर नहीं बदलते। इसलिये इस पद्धति को समझने के लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थी इस ओर ध्यान दें कि अंडाकार चिन्ह किस रेखा पर और कौन सा और किन–किन रेखाओं के मध्य में आने पर कौन सा स्वर बन जाता है।

अब तक आये हुए चिन्हों के आधार से आप यह समझ गए होंगे कि एक ही स्वर के तीन–तीन नाम पाश्चात्य संगीत में हो सकते हैं। आप 'सा' को 'शार्प नि' या डबल फ्लैट रे' इन दो

नामों से भी सम्बोधित कर सकते हैं। इसी प्रकार 'सा' से अगले स्वर को 'सी शार्प', 'डी फ्लैट' और 'बी डबलशार्प' तीन नाम दे सकते हैं। यहाँ इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि जो भी नाम आप स्वरों के देंगे वे शुद्ध स्वरों के आधार पर ही होंगे। इसी प्रकार अन्य स्वरों के विषय में भी जानना चाहिए। चूँकि यहाँ तीन–तीन स्वर एक ही स्वर के पृथक–पृथक नाम है। अथवा यूं कहें कि इन ध्वनियों में कोई अन्तर न होकर केवल नामों में ही अन्तर है। अतः इन्हें एक दूसरे के एनहारमोनिक्स (Enharmonics) कहते हैं।

2.4.2.3 की सिगनेचर (key Signature) – इसका प्रयोग सोलहवीं शताब्दी के अन्त से होने लगा था। जिस प्रकार भारतीय संगीत में स्वरों के कोमल तथा तीव्र चिन्ह रचना में स्वरों के साथ लगाने की प्रथा है, उसी प्रकार से कोमल, तीव्र स्वरों के चिन्ह पाश्चात्य संगीत में भी उपलब्ध हैं। इन्हें **की सिगनेचर** कहते हैं। परन्तु इन्हें लगाने का चिन्ह भारतीय चिन्हों से भिन्न है। वहाँ किसी भी रचना को लिखते समय कोमल, तीव्र के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद लगाये जाते है। ये निम्नवत पॉच प्रकार के है।

1. Flat ♭ (कोमल स्वर)
2. Sharp ♯ (तीव्र स्वर)
3. Natural ♮ (भारतीय संगीत में ऐसा कोई चिन्ह नही है।)
4. Double Flat ♭♭
5. Double Sharp **X**

जब एक या एक से अधिक शार्प या एक से अधिक फ्लैट के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद में रखे हुए हो तो इसका अर्थ होगा कि जिन–जिन रेखाओं पर अथवा जिन–जिन रेखाओं के बीच में वे रखे हैं, वे उन स्थानों पर बजने वाले प्रत्येक स्वर पर अपना प्रभाव रखेंगे। इन प्रारम्भ में आने वाले चिन्हों को की – सिगनेचर (key Signature) कहा जाता है। जैसे :–

आवश्यक चिन्ह (Essential key Signature) – जब फ्लैट या शार्प के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद लगा दिये जायें तो उसका प्रभाव प्रत्येक खण्ड में आने वाले उस रेखा या बीच के हर स्वर पर रहेगा। इसे आवश्यक या Essential की – सिगनेचर कहा जाता है।

आकस्मिक की सिगनेचर (Accidental Key Signature) – यदि यह चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद न आकर किसी भी बार या खण्ड के बीच में आ जाये तो उसका अर्थ होगा कि स्वर केवल उसी खण्ड में उस चिन्ह से स्वरों को प्रभावित करेगा।

इस प्रकार किसी भी बार या खण्ड के बीच में फ्लैट, शार्प, डबल फ्लैट या डबल शार्प के आनेवाले चिन्हों को ऐक्सीडेंटल की सिगनेचर कहते हैं। यदि एक ही खण्ड (Bar) के अन्दर वही स्वर एक से अधिक बार प्रयोग किया जायेगा तो उस बार के अन्दर केवल एक ही एक्सीडेंटल का चिन्ह काम दे देगा।

अचल क्लैफ – आपने अब तक देखा कि स्वरों को प्रकट करने के लिये गोलाकार अण्डे का चिन्ह, नाद की ऊँचाई प्रकट करने के लिये ग्यारह रेखायें तथा शुद्ध या विकृत स्वर बनाने के लिये फ्लैट ओर शार्प आदि का प्रयोग होता हैं। चूँकि ग्यारह रेखाओं में सबसे ऊपर की पॉच रेखायें ट्रैबल क्लैफ की है और सबसे नीचे की पॉच रेखायें बास क्लैफ की और इनके मध्य में 'सा' आता है अतः इन क्लैफस को अचल क्लैफ्स कहते हैं।

<u>चल क्लैफ</u> – पाश्चात्य संगीत में ऐसे अनेक वाद्य है जिनका षड्ज, मध्य या षड्ज से या तो बहुत ऊँचा होता है या बहुत नीचा। अतः इन वाद्यों के लिये स्वरलिपि लिखते समय कोई भी पॉच रेखायें चुन ली जाती है। इनमें सा की रेखा मध्य से हटकर ऊपर या नीचे की ओर हो जाती है। इस प्रकार इसे 'सा' का चल क्लैफ (Movable clef) कहते हैं। ये Clef पॉच रेखाओं के क्रम से पॉच ही और बन जाते हैं। इनमें से ट्रैबिल और बास क्लैफ के अतिरिक्त केवल दो ही क्लैफ कभी–कभी प्रयोग में आते है। अन्य क्लैफ इस प्रकार है :–

<u>टेनर क्लैफ (Tenor Clef)</u> – इसका प्रयोग मध्यम अर्थात आल्टो और बास के मध्य सप्तक कण्ठ स्वर के लिये होता था। आज भी वायलिन, चेलो और टेनरट्रोम्बीस (Tenor Trombons) जैसे वाद्यों के लिए इसका प्रयोग होता है।

<u>आल्टो क्लैफ (Alte Clef)</u> – ऊँचे पतले कण्ठ स्वर के लिये आल्टो क्लैफ का प्रयोग होता था।

<u>सोपरानो क्लैफ (Soprano Clef)</u> – इसका प्रयोग प्राचीन जर्मन सामूहिक गायन–वादन में किया जाता था।

इसके अतिरिक्त (Mejjo-Soprano)मेजो सोपरानो, Beritone और बैरीटोन क्लैफ तो केवल प्राचीन संगीत की पुस्तकों में कभी–कभी दिखायी देते हैं।

आज प्रचार में सर्वाधिक प्रचलन ट्रैबिल क्लैफ का ही है। प्रयोगात्मक दृष्टि से ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होगा कि जो 'सा' ट्रैबिल क्लैफ में सबसे नीचे की रेखा पर था वही बास क्लैफ में सबसे ऊपर की रेखा पर आ गया।

<u>2.4.2.4 मात्रायें</u> :–

<u>ध्वनियों के समय को पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति में लिखना</u> – अभी तक हमने आपको स्वरों को लिखने की विधि बतायी है। कोई भी रचना लिखते समय स्वरों के काल यानि मात्राओं को संकेतित करना भी आवश्यक होता है। अब यहॉ हम समय यानि मात्रा को लिखने की चर्चा करेंगे।

जहॉ तक मात्राओं का प्रश्न है भारतीय और पाश्चात्य संगीत में बहुत भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संगीत में मात्राओं के लिये अलग–अलग चिन्ह हैं और प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में मात्रा की संख्या भी दी जाती है। यदि भारतीय संगीत में 'सा' की दो मात्रा दिखानी है तो इस प्रकार लिखेंगे 'सा–' और यदि आधी–आधी मात्रा के दो स्वर दिखाने हो तो उन दो स्वरों को अर्थ चन्द्राकार के अन्दर रखेंगे। जैसे **सा रे** । इसी प्रकार अन्य मात्राऐं भी हमारे यहॉ प्रदर्शित होती है। स्टाफ नोटेशन का यह ढंग है कि अण्डाकार चिन्ह के रूप में ही परिवर्तन कर भिन्न–भिन्न मात्राओं दर्शाते हैं। कभी अण्डाकार चिन्ह को भर देते हैं तो कभी खाली रखते हैं, तो कभी उसमे एक हुक लगा देते है। कहने का अभिप्राय यह है कि पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति में स्वर और मात्रा एक साथ दिखाने की प्रथा है। स्वर की काल गणना अथवा लम्बाई दिखाने के लिये विभिन्न संकेतों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जब एक मात्रा, आधी मात्रा, दो मात्रा एवं तीन मात्रा आदि के चिन्ह पाश्चात्य संगीत में अलग–अलग हो, तो इन स्वर चिन्हों को देखने से तुरन्त पता चल जाता है कि स्वर चिन्ह कितने मात्रा का है।

पाश्चात्य संगीत के स्वर चिन्हों का काल मान भारतीय संगीत में निम्न प्रकार से होगा, जिसे इस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

<u>चिन्ह</u>	<u>नाम</u>	<u>पाश्चात्य मात्रायें</u>	<u>भारतीय मात्रायें</u>
𝅜	Breve (ब्रीव)	(2) Two whole note	8
𝅝	Semi Breve(सेमी–ब्रीव)	(1) one whole note	4
𝅗𝅥	Minim(मिनिम)	($\frac{1}{2}$) Two half note	2

♩	Crotchet(क्रोचेट या क्रोशे)	$(\frac{1}{4})$Four Quarater note	1
♪	Quaver(क्वेवर)	$(\frac{1}{8})$ Eight notes	$\frac{1}{2}$
𝅘𝅥𝅯	Semi-Quaver(सेमी क्वेवर)	$(\frac{1}{16})$ Sixteen notes	$\frac{1}{4}$
𝅘𝅥𝅰	Demi-Semi-Quaver(डेमी सेमी क्वेवर)	$\frac{1}{32}$ Thirty two notes	$\frac{1}{8}$
𝅘𝅥𝅱	Hemi-Demi-Semi-Quaver(हेमी डेमी सेमी क्वेवर)	$\frac{1}{64}$ Sixty four notes	$\frac{1}{16}$
𝅘𝅥𝅲	Semi-Hemi-Demi-Semi-Quaver (सेमी हेमी डेमी सेमी क्वेवर)	$\frac{1}{128}$ 128 One hundred Twenty eight	$\frac{1}{32}$

यदि स्वर के आगे एक बिन्दु लगा हो तो उसका काल या वजन उस स्वर आधा काल अधिक हो जाता है अर्थात् उसका मूल्य डयोढ़ा हो जाता है।

जैसे – 𝅗𝅥. = 𝅗𝅥♩

यदि किसी स्वर के आगे दो बिन्दु लगे तो उस दूसरे बिन्दु का काल पहले बिन्दु से आधा और बढ जाता है।

जैसे – 𝅗𝅥.. = 𝅗𝅥♩♪

इसी प्रकार स्वर के आगे तीन बिन्दुओं का लगना। वस्तुतः स्वर के आगे तीन बिन्दुओं का प्रयोग बहुत कम होता है।

भारतीय संगीत की रचना को जब पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति में लिखेंगे तो पाश्चात्य के Crotchet चिन्ह को एक मात्रा मान कर स्वरलिपि लिखेंगे– शेष मात्रायें उसी के अनुसार बदल जायेंगी। जैसे–

क्रोशे	Crotchet	♩	=	1 मात्रा (भारतीय संगीत में)
मिनिम	Minim	𝅗𝅥	=	2 मात्रा
मिनिम तथा बिन्दु	Minim and dot	𝅗𝅥.	=	3 मात्रा
सेमी ब्रीव	Semi Breve	𝅝	=	4 मात्रा
क्वेवर	Quaver	♪	=	$\frac{1}{2}$ मात्रा
सेमी क्वेवर	Semi Quaver	𝅘𝅥𝅯	=	$\frac{1}{4}$ मात्रा

यह क्रम पाश्चात्य स्वरलिपि में मात्राओं को लिखने के लिये होगा।

<u>विविध मात्राओं को लिखना</u> — जब दो या दो से अधिक 1/2 या 1/16 या 1/32 मात्रा वाले स्वरों को जोड दिया जाये तो उनमें सीधे हाथ की ओर लगाई हुई रेखाएं आपस में जोड़ दी जाती है। जैसे —

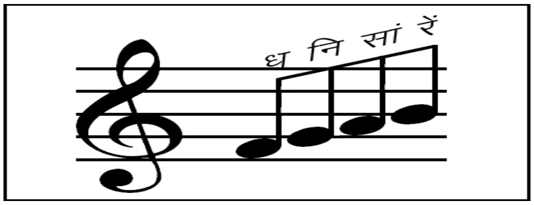

इसके अर्थ होगा कि यह सारे स्वर 1/8 मात्रा के ही हैं। कभी—कभी ऐसा भी होता है कि 1/8 मात्रा के स्वर बजाते समय कोई—कोई स्वर बीच—बीच में 1/16 मात्रा का भी आ जाता है। उस समय उसी स्वर को एक रेखा अधिक जोड़ कर काम में ले लिया जाता है। जैसे —

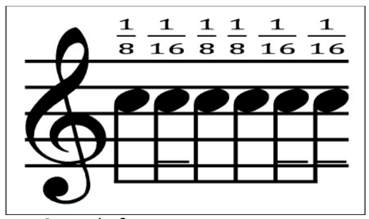

इसी प्रकार बीच—बीच में यदि कोई स्वर 1/32, 1/16 या 1/8 मात्रा का आ जाए तो उसमें तीन या दो रेखायें जोड़ देते हैं।

<u>स्वरों को बढाना</u> — यहॉ तक आपने स्वरों की ऊँचाई—नीचाई तथा स्वरों को बराबर, दुगुन, चौगुन आदि में लिखने के चिन्हों को समझा। परन्तु स्वरों को कभी—कभी बढाना भी पड़ता है, जैसे — ग रे ग म। ग — रे सा

अब यदि प्रत्येक स्वर को चौथाई—चौथाई मात्रा में लिखें तो पॉचवे स्वर को आधी मात्रा में लिखने से यह काम हो जाएगा। जैसे :—

स्वरों के काल को लम्बा करने के लिए हाई (Tie) का भी प्रयोग किया जाता है।

<u>पाश्चात्य स्वरलिपि में ताल चिन्ह</u> — पाश्चात्य संगीतज्ञों का विश्वास है कि संगीत में ताल के भाग बराबर—बराबर ही होने चाहिए। ऐसा न हो कि किसी एक खण्ड में दो मात्रा हों और दूसरे में तीन जैसा कि भारतीय संगीत की झपताल आदि में होते हैं। भारतीय संगीत में तालों का गीत रचना से अलग स्वतन्त्र स्थान है और तालों का स्वतन्त्र वादन भी होता है। परन्तु पाश्चात्य संगीत में ताल और गीत रचना पृथक नहीं की जा सकती। वहॉ ताल का संकेत समय के संकेत अर्थात् Time-signature से ही पता चलता है।

यहॉ यह जान लेना आवश्यक है कि पाश्चात्य संगीत में दो प्रकार ताल होते हैं :–

1. सिम्पल टाईम (Simple Time)
2. कम्पाउण्ड टाईम (Compound Time)

<u>टाईम सिगनेचर (Time Signature)</u> – किसी रचना को स्वरलिपि में लिखते समय स्वरों के मात्राओं के विभाग भी किये जाते है। स्वरों का संकेत ''की – सिगनेचर'' के द्वारा दिया जाता है तो मात्रा का संकेत 'टाईम–सिगनेचर' के द्वारा दिया जाता है।

'टाईम सिगनेचर' को प्रकट करने के लिये दो गिनतियों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें ऊपर की संख्या प्रत्येक बार में दिये गये स्वरों की गिनती को प्रकट करती है और नीचे की संख्या यह प्रकट करती है कि प्रत्येक स्वर कितने मात्राकाल का है।

उदाहरण के लिये आगे चित्र देखिये :–

इसक अर्थ यह हुआ कि दो–दो स्वर आधी–आधी मात्रा के हैं। इसके ही यदि चार–चार स्वरों के खण्ड करने हों तो टाईम सिगनेचर को बदलना पडेगा। उस स्थिति में यह चिन्ह $\frac{2}{2}$ की अपेक्षा $\frac{4}{2}$ हो जाएगा यानि एक बार में चार स्वर लिखे जायेंगे।

<u>बार लाइन (Bar Line)</u> – ये रेखायें स्टाफ की रेखाओं के स्वरों को समानता से विभाजित करने वाली सीधी रेखायें है।

<u>मैजर (Measure)</u> – जो विभाग इन बार लाइनों के द्वारा बनते हैं उन्हें मैजर कहते हैं और एक मैजर में जितने स्वर रखे जाते हैं उन्हें **बीटस** (Beats) कहते हैं।

अब यहॉ हम सिम्पल तथा कम्पाऊड टाईम की चर्चा करेंगे क्योंकि उनका संकेत हमें टाईम सिगनेचर, बार लाइन और मैजर से मिलता है।

<u>सिम्पल टाईम (Simple Time)</u> – जब प्रत्येक बीट या मात्रा में सेमी ब्रीव के साधारण भाग मिनिम, क्रोशे या क्वेवर आदि हों तो उसे **'सिम्पल टाईम'** कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं :–

1. डयूपिल टाईम(Duple Time)
2. ट्रिपिल टाईम (Triple Time)
3. क्वाड्रूपिल टाईम (Quadruple Time)

<u>1 डयूपल टाईम</u> – जब एक बार में दो स्वर हो तो उसे डयूपल टाईम कहते हैं। जैसे :–

-

इसी प्रकार $\frac{2}{4}$ का अर्थ है – | ♩♩ | ♩♩ |

$\frac{2}{8}$ का अर्थ है – | ♪♪ | ♪♪ |

<u>2 ट्रिपिल टाईम</u> – एक बार में तीन स्वर हो तो उसे ट्रिपिल टाईम कहते हैं। जैसे –

$\frac{3}{2}$ का अर्थ है – | 𝅗𝅥𝅗𝅥𝅗𝅥 |

$\frac{3}{4}$ का अर्थ है – | ♩♩♩ |

$\frac{3}{8}$ का अर्थ है – | ♪♪♪ |

<u>3 क्वाड्रूपिल टाईम</u> – जब एक बार में चार स्वर हो तो उसे क्वाड्रूपिल टाईम कहते हैं। जैसे :–

$\frac{4}{2}$ का अर्थ है– | 𝅗𝅥𝅗𝅥𝅗𝅥𝅗𝅥 |

$\frac{4}{4}$ का अर्थ है– | ♩♩♩♩ |

$\frac{4}{8}$ का अर्थ है– | ♪♪♪♪ |

<u>कम्पाउण्ड टाईम **(Compound Time)**</u> – अब तक आपने एक बार में एक–एक स्वर रखना सीखा। जैसे सा सा सा' परन्तु यदि आपको एक बार में सा ऽ ऽ को इस प्रकार लिखना है तो लिखने के क्रम को बदलना पडेगा। ऐसा करने के लिए पाश्चात्य संगीत में बिन्दुओं का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि हमने पूर्व में उल्लेख किया है। जब एक स्वर बिन्दु सहित स्वर के बराबर हो तो उसे **कम्पाउण्ड टाईम** कहते हैं। कम्पाउण्ड टाईम में भी कम्पाउण्ड ड्यूपिल, ट्रिपिल तथा क्वाड्रूपिल प्रकार होते हैं, जो निम्न तालिका में स्पष्ट है।

<u>1. कम्पाउण्ड डयूपल टाईम</u> :–

$\frac{6}{4}$ का अर्थ है– | 𝅗𝅥. 𝅗𝅥. |

$\frac{6}{8}$ का अर्थ है– | ♩. ♩. |

$\frac{6}{16}$ का अर्थ है– | ♪. ♪. |

2. कम्पाउण्ड ट्रिपिल टाईम – एक बार में तीन स्वर हो तो उसे ट्रिपिल टाईम कहते हैं। जैसे–

$\frac{9}{4}$ का अर्थ है–	𝅗𝅥. 𝅗𝅥. 𝅗𝅥.
$\frac{9}{8}$ का अर्थ है–	♩. ♩. ♩.
$\frac{9}{16}$ का अर्थ है–	♪. ♪. ♪.

3. कम्पाउण्ड क्वाड्रूपिल टाईम – जब एक बार में चार स्वर हो तो उसे क्वाड्रूपिल टाईम कहते हैं। जैसे–

$\frac{12}{4}$ का अर्थ है–	𝅗𝅥. 𝅗𝅥. 𝅗𝅥. 𝅗𝅥.
$\frac{12}{8}$ का अर्थ है–	♩. ♩. ♩. ♩.
$\frac{12}{16}$ का अर्थ है–	♪. ♪. ♪. ♪.

अब तक आप पाश्चात्य संगीत एवं पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति अथवा स्टाफ नोटेशन के विषय में से जान गये होंगे।

ध्यान देने योग्य मुख्य बिन्दु निम्न हैं :–

- पाश्चात्य संगीत हार्मनी प्रधान है।
- पाश्चात्य संगीत में सप्तक की बजाय अष्टक (आक्टेव) का प्रयोग होता है।
- स्वरों के मेजर टोन, सेमीटोन तथा माइनर टोन अन्तराल होते हैं।
- पाश्चात्य संगीत में भारतीय संगीत की भॉन्ति ताल नहीं होती अपितु मात्रा होती है।
- काल परिमाप सिम्पल, डबल तथा क्वाडरिपल टाइम के अनुसार जाना जाता है।
- पाश्चात्य संगीत में तत, अवनद्ध, घन और सुषिर चारों प्रकार के वाद्य होते हैं, लेकिन भारतीय संगीत वाद्यों से अलग है।
- Chorus चैम्बर म्यूजिक प्रसिद्ध है।
- रचनाओं को जिस स्वरलिपि पद्धति में लिखा जाता है उसे स्टाफ नोटेशन कहते हैं।
- 11 लाइनों का स्टाफ बनाया जाता है।
- दो क्लैफ ट्रेबल तथा वास क्लैफ का प्रयोग मुख्यतः होता है।
- स्वर तथा ताल के लिए एक ही चिन्ह का प्रयोग होता है।
- स्वरों को की सिगनेचर तथा मात्राओं को टाइम सिगनेचर से संकेतित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. पाश्चात्य संगीत.. प्रधान है।
2. डायटोनिक स्केल के... भाग होते हैं।
3. कार्डस के.................................... प्रकार होते हैं।

4. पाश्चात्य संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर की छोटी से छोटी दूरी को......................... कहते हैं।
5. पाश्चात्य संगीत में मुख्य रूप से...................................... स्वरलिपि पद्धतियां प्रचलित हैं।
6. सा रे ग म प ध नि स्वरों को पाश्चात्य संगीत में क्रमशः................................... कहते हैं।
7. पाँच रेखाओं पर मध्य 'सा' की स्थिति बताने वाले चिन्ह को....................................कहते हैं।
8. पाश्चात्य संगीत मे स्वरों के कोमल व तीव्र चिन्ह को..कहते हैं।
9. एक मैजर मे जितने स्वर रखे जाते हैं उन्हें...कहते हैं।
10. जब एक स्वर, बिन्दु सहित स्वर के बराबर हो तो उसे..कहते हैं।

ख) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. पाश्चात्य संगीत में स्केल के कितने प्रकार होते हैं?
2. सैलो(Cello)वाद्य किस परिवार के वाद्य मे आता है?
3. ऊँचे स्वर बजाने के लिए छोटी बाँसुरी को क्या कहते हैं?
4. प्रो0 पीरी गलिन कौन सी स्वरलिपि पद्धति के आविष्कारक थे?
5. स्टाफ नोटेशन में स्वरों को प्रदर्शित करने के लिए कौन सा चिन्ह प्रयुक्त करते हैं?
6. मध्य 'सा' को पाँच रेखाओं से ऊपर दिखाने के लिए कौन सा चिन्ह प्रयोग करते हैं?
7. 'सा' से एक सेमीटोन की दूरी पर पहले स्वर का क्या कहते हैं?
8. पाश्चात्य संगीत मे कितने प्रकार के ताल होते हैं?
9. जब एक बार में दो स्वर हो तो उसे क्या कहते हैं?
10. पाश्चात्य संगीत में सप्तक के स्थान पर किसका प्रयोग होता है?
11. पाश्चात्य संगीत में एक सप्तक में कितने स्वर होते है?
12. पाश्चात्य संगीत मेलाडी प्रधान है या हार्मनी?
13. पाश्चात्य संगीत में कौन स्वरलिपि पद्धति आज प्रचलित है?
14. क्रोशे तथा मिनिम कितने मात्रा काल को दर्शाते हैं?

ग) सत्य/असत्य बताइये :–

1. ट्रायडस का अर्थ है तीन भिन्न स्वरों को मिलाना।
2. डबिल बास वाद्य का उपयोग वृन्दावन में कम होता हैं।
3. ट्रमपैट का उपयोग सबसे ऊँचे नाद के लिए तथा ट्यूब का सबसे नीचे नाद के लिए होता है।
4. स्टाफ नोटेशन लिखने के लिए 6 सामान्तर रेखाओं का प्रयोग होता है।
5. मध्य 'सा' पाँच रेखाओं से नीचे प्रकट करने के लिए 'ट्रैबिल क्लैक' का प्रयोग करते हैं।
6. 'सा' से एक सेमीटोन की दूरी पर आगामी स्वर फ्लैट कहलाता है।
7. पाश्चात्य संगीत में कोमल तीव्र के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद लगाये जाते हैं।
8. पाश्चात्य संगीत में मात्रा का संकेत 'की सिगनेचर' के द्वारा दिया जाता है।
9. पाश्चात्य संगीत में ताल नहीं मात्राएं होती हैं।

घ) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. ट्रेबिल तथा बास क्लैफ क्या है?
2. मेजर स्केल किसे कहते हैं?
3. माइनर स्केल में स्वर व्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए?
4. बास किसे कहते हैं?
5. कार्डस के विषय में आप क्या जानते हैं?
6. की–सिगनेचर को स्पष्ट कीजिये?
7. कोरस (chorus) किसे कहते हैं?
8. चैम्बर म्यूजिक क्या है? स्पष्ट करें?
9. मात्रा प्रदर्शित करने का क्या ढंग हैं?
10. पाश्चात्य संगीत में तत वाद्यों के बारे में आप क्या जानते हैं? लिखिये।
11. Great या Grand ग्रेट अथवा Grand Staff किसी कहते हैं?

12. आकस्मिक की–सिगनेचर क्या होता है?
13. सिम्पल टाईम क्या होता है?
14. क्वाडरिपल टाईम कैसे लिखा जाता है?
15. स्टाफ नोटेशन में स्वर तथा मात्राओं को कैसे चिन्हित करते हैं?

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप पाश्चात्य संगीत के बारे में जान चुके हैं। पाश्चात्य संगीत में स्वर, मात्राओं व रचनाओं को लिखने का तरीका भारतीय संगीत से भिन्न है। आप पाश्चात्य संगीत के सिद्धान्तों से भी परिचित हो चुके हैं। पाश्चात्य संगीत में कौन–कौन सी स्वरलिपि पद्धतियां हैं तथा वर्तमान में प्रयुक्त स्टाफ नोटेशन पद्धति के महत्व को भी आप समझ चुके है। पाश्चात्य संगीत व स्टाफ नोटेशन को समझ कर आप भारतीय संगीत से इसकी तुलना कर पायेंगे तथा इसका प्रयोग भी कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप पाश्चात्य संगीत के वाद्यों व रचनाओं को भी भली–भांति समझ चुके हैं, जो आपके आगे अध्ययन में सहायक सिद्ध होगी।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. हार्मनी 2. दो(मेजर व माइनर) 3. सात 4. सेमीटोन
5. चार 6. C D E F G A B 7. क्लैफ 8. की सिगनेचर
9. बीट्स 10. कम्पाउण्ड टाइम

ख) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. दो(डायटोनिक व क्रोमैटिक) 2. वायोलिन 3. पिक्कोलो
4. चीव्ह स्वरलिपि पद्धति 5. o 6. बास ब्लैक
7. फ्लैट 8. दो (सिम्पल टाइम व कम्पाउण्ड टाइम)
9. डयूपल टाईम 10. अष्टक(आक्टेव) 11. आठ
12. मैलोडी 13. स्टाफ नोटेशन 13. 1 व 2 मात्रा काल

ग) सत्य/असत्य बताइये :–

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य
6. असत्य 7. सत्य 8. असत्य 9. सत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, भगवत शरण, *पाश्चात्य संगीत शिक्षा,* संगीत कार्यालय हाथरस, 1990।
2. सिंह, प्रो0 ललित किशोर, *ध्वनि और संगीत,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1901।
3. शर्मा, डा0 स्वतन्त्रा, *पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1996।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0)।
2. *संगीत* मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0)।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्टाफ नोटेशन का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 3 – पाश्चात्य संगीत के पारिभाषिक शब्द

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 पाश्चात्य संगीत के पारिभाषिक शब्द
3.4 सारांश
3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0—101) के चतुर्थ खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे। आप ध्वनि के विज्ञान, महत्व एवं ध्वनि भेदों को भी समझ चुके होंगे। आप संगीत की विधाओं से सम्बन्धित परिभाषाओं (स्वर, श्रुति, नाद, सप्तक, लय आदि) व स्टाफ नोटेशन के बारे में भी विस्तार से जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में पाश्चात्य संगीत के पारिभाषिक शब्दों का अध्ययन प्रस्तुत है। पाश्चात्य देशों में संगीत का जो विकास हुआ वह हार्मनी प्रधान था जिसे आज हम पाश्चात्य संगीत के नाम से जानते हैं। यह नामकरण भौगोलिक आधार पर हुआ है। जिस प्रकार भारतीय संगीत में अनेक परिभाषिक शब्द प्रचलित है ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य संगीत में भी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हुआ और आज सर्वत्रप्रचार में है। इस इकाई में पाश्चात्य संगीत में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की जाएगी जिसे पढ कर आप पाश्चात्य संगीत से भली—भॉन्ति परिचित हो सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाश्चात्य संगीत में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों को समझ सकेंगे। इन पारिभाषिक शब्दों का पाश्चात्य संगीत में क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई से समझ सकेंगे। इस इकाई को पढने के उपरान्त यह पारिभाषिक शब्द आपके क्रियात्मक पक्ष में भी सहायक होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :—

- पाश्चात्य संगीत के पारिभाषिक शब्दों को जान सकेंगे।
- इन पारिभाषिक शब्दों के पाश्चात्य संगीत में महत्व को समझ सकेंगे।
- इन पारिभाषिक शब्दों को समझ कर, क्रियात्मक पक्ष में प्रयोग कर सकेंगे।

3.3 पाश्चात्य संगीत के पारिभाषिक शब्द

1. आक्टेव – नाद के ऊँचे–नीचेपन से स्वर बनते हैं जो कि संगीत में प्रयुक्त होते हैं। भारतीय संगीत में **सा, रे, ग, म, प, ध, नि** स्वर से सप्तक बनता है, वही पाश्चात्य संगीत में तार सप्तक का सा जोड देने से आठ स्वर बन जाते हैं, जिसे अष्टक तथा पाश्चात्य संगीत में इसे आक्टेव कहा जाता है।

2. स्केल – पाश्चात्य संगीत में **सा रे ग म प ध नि** को सी (C), डी (D), ई (E), एफ (F), जी (G), ए (A) व बी (B) कहते है। इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रत्येक देश तथा भिन्न–भिन्न जातियों का अपना संगीत होता है। प्राचीन संगीत में स्केल या सप्तक नाम की वस्तु नहीं थी, लेकिन बाद में स्वर सप्तक का विकास हो गया। आजकल विभिन्न प्रकार के सप्तक या Scale प्राप्त होते हैं।

नेचुरल स्केल (Natural Scale) – किसी भी देश की रूचि के आधार पर मधुर स्वरों को चुन कर सप्तक की रचना की जाती है, उसे नेचुरल स्केल कहते हैं। इसमें संवाद का विशेष ध्यान रखा जाता है। पाश्चात्य देशों में भी आरम्भ से इसी का प्रकार था, परन्तु बाद में हारमनी की आवश्यकताओं के लिये Tempered Scale का विकास हुआ।

पायथागोरियन स्केल (Pythagorian Scale) – पायथागोरियन एक ग्रीक दार्शनिक थे (6 th Century B.C)। उन्होंने संगीत के सिद्धान्तों को गणित के आधार पर माना और आक्टेव की रचना की। उनकी मान्यता थी कि संगीत के स्वर सप्तक भी गणित के आधार पर बनने चाहिए। पायथागोरस ने जो स्केल बनाया उसे पायथागोरियन स्केल कहा गया। उन्होंने वाद्य के तार पर स्वरों की स्थापना करके स्केल की रचना की। उनके मुख्यतः दो सिद्धान्त थे –

1. **Law of Octave**
2. **Law of Fifth**

डायटानिक स्केल – डायटोनिक का अर्थ है दो टोन वाला अर्थात् टोन तथा सेमीटोन। इस स्केल को बनाते समय 5 टोन तथा 2 सेमीटोन की प्राप्ति होती है। इसके दो भाग हैं–

1. मेजर स्केल
2. माइनर स्केल

मेजर स्केल का निर्माण मेजर कार्डस से होता है। मेजर स्वरान्तर को एक सेमीटोन कम करने से माइनर टोन बनता है तथा इसे माइनर स्केल कहते हैं।

क्रोमेटिक स्केल(Chromatic Scale) – जिस स्वर सप्तक में सभी प्रकार के रंग एवं सभी ध्वनि या स्वर आ जाये अर्थात् जब 12 स्वरों को क्रमानुसार दर्शाते हैं और प्रत्येक दो स्वर के मध्य का अन्तर एक सेमीटोन होता है तो उसे क्रोमेटिक स्केल कहते हैं। स्वरों के सूक्ष्म अंतरालों या श्रुतियों के प्रयोग की इसमें गुंजाइश होती है। सप्तक के सभी शुद्ध विकृत स्वरों का समावेश इसमें आ जाता है। इसमें एक ही नाम के दो–दो स्वर भी आ जाते हैं। जैसे सी तथा सी शार्प, डी तथा डी शार्प। क्रोमेटिक स्केल की रचना मेजर स्केल के स्वरों के आधार पर ही होती है। मेजर स्केल के स्वरों में जो भी स्थान शेष रहते है उन्हे शार्प तथा फ्लैट स्वरों के चिन्हों द्वारा एक–एक सेमीटोन की दूरी पर कर दिया जाता है। आरोह में शार्प तथा अवरोह में फ्लैट स्वरों के प्रयोग से ऐसा होता है।

हेप्टाटानिक स्केल (Heptatonic Scale) – यह सात स्वरों का सप्तक है जिसे हम सम्पूर्ण जाति का सप्तक कह सकते हैं। जैसे भारतीय संगीत में तोड़ी, भैरव, भैरवी आदि। पाश्चात्य देशों में भी यही स्केल पाया जाता है।

हेक्साटानिक स्केल (Hexatonic Scale) – छः स्वरों के सप्तक को Hexatatonic Scale कहते हैं। यह स्केल अधिकतर रूस और फ्रांस के संगीत में पाया जाता है।

पेण्टाटानिक स्केल (Pentatonic Scale) – **5 स्वरों** के सप्तक को पेण्टाटानिक स्केल कहते हैं। इसे हम औडव जाति का सप्तक कह सकते हैं। देश के प्रायः प्रत्येक भाग में यह सप्तक पाया जाता है। चीनी संगीत और आदिवासी संगीत से इसका प्रचलन अधिक है।

3. स्वरान्तर (**Intervals**) – **एक** साथ या क्रमशः सुनाई देने वाले कोई भी दो स्वरों के मध्य की दूरी को इन्टरवल या स्वरान्तर कहते हैं। सम्पूर्ण सप्तक में यह अन्तर दो प्रकार से होता है। षड्ज–पंचम भाव के आधार पर और षड्ज–मध्यम भाव के आधार पर।

4. इन्टोनेशन (**Intonation**) – जब किसी वादक अथवा गायक का स्वर, उचित स्वर से हटकर अर्थात् थोड़ा आगे या पीछे लगता है और सुनने में बेसुरा प्रतीत होता है, तो उसे इन्टोनेशन कहते हैं। प्यानो आदि में बेसुरापन, वादक के हाथ में न होकर उसे टयून करने वाले के हाथ में होता है। अतः हम प्यानोवादक से यह नहीं कह सकते कि आपका इन्टोनेशन अशुद्ध है। इस शब्द का अर्थ बेसुरापन से है।

5. ओपस (**Opus**) – किसी रचयिता की रचनायें जिस क्रम से प्रकाशित होती है उन्हे I, II ओपस कहते है।

6. ट्रांसक्रिपशन (**Transcription**) – जब कोई रचना किसी विशेष वाद्य के लिए लिखी जाए और आप उसमें कुछ परिवर्तन करके किसी अन्य वाद्य अथवा वाद्यों के लिये बना लें, तो इसे ट्रांसक्रिपशन कहते हैं।

7. ट्रैमोलो (**Tremolo**) – जिस प्रकार सितार, सरोद आदि में दिर–दिर बजाते हैं उसी प्रकार जब किसी वाद्य में स्वर को चाहे जब मिजराब अथवा गज द्वारा जल्दी–जल्दी इधर–उधर चला कर दिरदिर की ध्वनि उत्पन्न की जाती है तो उसे ट्रैमोलो से बजाना कहते हैं।

8. टोनैलिटी (**Tonality**) – की (Key) के प्रभाव को टोनैलिटी कहते हैं। अर्थात् जिस की (Key) में कोई रचना लिखी जाए उसे टोनैलिटी कहा जाएगा।

9. टोन–पोइम (**Tone-Poem**) – इस छोटी रचना में कविता की भान्ति स्वरों को रखा जाता है। जिस प्रकार कविता में अक्षरों द्वारा विभिन्न लयकारियों का निर्माण किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इस रचना में स्वरों के सौन्दर्य को ध्वनि के सिद्धान्तों के आधार पर प्रकट किया जाता है। इसे स्वरों द्वारा बनायी गयी कविता कहना ही ठीक होगा।

10. टोन–कलर (**Tone-Colour**) – **इसे नाद का** गुण या जाति कहते हैं। उदाहरण के लिये बांसुरी का टोन–कलर शहनाई के टोन–कलर से भिन्न है।

11. पिटसीकाटो (**Pizzicato उच्चारण Pit-si-ka'to**) – **जब** कामानी से बजने वाले वाद्यों से स्वर निकालने के लिये कमानी का प्रयोग न करके मिजराब की भान्ति उन्हें बजाया जाये तो इस प्रकार के स्वर बजाने को पिट्सीकाटो कहते हैं।

12. मूवमैंट (**Movement**) – **जब कोई** लम्बी रचना बजायी जाती है तो उसमें ग्रेव(Grave) (अति विलम्बित लय) और प्रैस्टो (Presto) (अति द्रुतलय) के बीच में अनेक प्रकार की लयों का समावेश हो जाता है। इस प्रकार भिन्न–भिन्न लयों को भिन्न–भिन्न मूवमैंट्स कहते हैं।

13. म्यूट (**Mute**) – यह काली लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा होता है, जिसे तार के बाजों की ध्वनि को धीमा करने के लिये ब्रिज पर लगा दिया जाता है। फूंक के बाजों में, वाद्य के अन्तिम भाग में एक रूई की गद्दी सी लगा देते हैं। फलस्वरूप उसकी ध्वनि में धीमापन आ जाता है अथवा उसके नाद की जाति में कुछ परिवर्तन हो जाता है।

14. म्यूजिक ड्रामा (**Music Drama**) – वैगनर (Wagner) नामक संगीतज्ञ ने अपने आपेराओं को म्यूजिक ड्रामा नाम दिया था।

15. मोड्स (**Modes**) – जब टोन और सेमीटोन को किसी क्रम से रख कर रचना की जाये अर्थात् यह बतलाया जाये कि किसी विशेष की (Key) को प्रस्तुत करने का क्या ढंग है, तो इस ढंग को ही (Mode) कहते हैं। आजकल Major और Minor दो प्रमुख Modes हैं।

16. मौडूलेशन (**Modulation**) – जब कोई रचना किसी विशेष की (Key) में रची जाती है तो कुछ देर बाद ही वह किसी अन्य 'की' (Key) में मिल जाती है। अर्थात् जिस भी (Key) में रचना प्रारम्भ की गयी थी, उस की (key) के अतिरिक्त अन्य कोई स्वर कोमल या तीव्र उसमें मिला दिया जाता है। इस क्रिया को एक 'की' (key) से दूसरी (key) में जाना अथवा मौडूलेशन (Modulation) कहते हैं।

17. रिलेटिड–की(Related-key) – जब आप सी (C) के मेजर स्केल के स्वर बजाते हैं तो साथ–साथ यह भी अनुभव करते हैं कि 'ए' का Minor scale भी इन्हीं स्वरों पर बनता है। इस प्रकार आप किसी भी C-Major की रचना को A-Minor की 'की (key) में अथवा A-Minor को C- Major में सरलता से ले जा सकते हैं। अतएव जिन कीज़ (keys) में शार्प या फ्लैट के चिन्ह एक समान हों, उन्हें 'रिलेटिड–की' (Related -key) कहते हैं।

18. हारमॉनी (Harmony) – **जब** किन्ही दो अथवा दो से अधिक स्वरों को एकदम साथ–साथ बजाये तो जो स्वरों की सम्मिलित ध्वनि उत्पन्न होगी, उसे कार्ड कहते हैं। जब इन्हीं कार्डस का मिश्रण लगातार मेलॉडी के साथ ही, और बजाया जाये तो जो ध्वनि उत्पन्न होगी उसे 'हारमॉनी' कहेंगे। इसे अधिक स्पष्ट इस प्रकार कहा जा सकता है कि मेलॉडी की रचना में एक के बाद एक स्वर का प्रयोग किया जाता है, जबकि हारमॉनी में दो स्वर के साथ कार्ड भी बजायी जाती है। पाश्चात्य संगीत हारमॉनी प्रधान है। पश्चिमी संगीतकारों ने एकाकी स्वर के स्थान पर दो अन्य संवादमय स्वरों को जोडा अर्थात् एक ही स्वर–समूह अथवा संवादी स्वरों को जब विभिन्न गायकों या वाद्यों द्वारा एक ही अथवा विभिन्न सप्तकों में एक ही समय पर गाया–बजाया जाता है तब हार्मनी का आविर्भाव होता है। उदाहरणर्थ एक गायक स– ग– प गा रहा है तो अन्य उसी समय प–नि–रे गाता होगा।

हार्मनी के अधिकांश प्रकारों में वाद्य–वादन की प्रधानता रहती है तथा गीत गौण रहता है। गीत के विशिष्ट स्वरों के साथ अन्यान्य संवादी स्वर–समूहों के निर्माण के लिये एक तो गायक–समूह की अपेक्षा होती है अथवा वाद्य समूह की। इसके होने पर गीत के विभिन्न खण्डों का विभिन्न कण्ठ स्वरों के द्वारा गायन तथा विभिन्न वाद्यों द्वारा एक साथ वादन सहज सम्भव हो सकता है, जो हारमॉनी संगीत को अभिप्रेत है। हारमॉनी में स्थायी का स्वर स्थिर नहीं रहता, वरन समय–समय पर परिवर्तित होता रहता है। उसके अनुरूप नई–नई स्वरलिपियों की रचना गायक या वादक द्वारा निर्मित की जाती है। उदाहरणार्थ उनके संगीत का आरम्भ यदि 'सी' या 'सा' को लेकर हुआ है तो यह आवश्यक नहीं कि शेष स्वर हमेशा उसी के साथ सम्बद्ध रहें। यह स्थायी 'सा' से बदल कर रे, ग, प इत्यादि स्वरों में से कोई भी एक हो सकता है और आगे की स्वर रचना नये स्थायी या टोनिक के अनुसार की जा सकती है। हारमॉनी के अर्न्तगत 'कार्डस' का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार भारतीय मेलॉडी में राग को अधिकाधिक रसपूर्ण बनाने के लिये अपनी–अपनी कल्पना के अनुसार उसमें विभिन्न स्वर–समुदायों का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार पाश्चात्य संगीत के कलाकार अपनी धुन के साथ किन्हीं विशिष्ट स्वर समुदायों का संवाद प्रयोग कर उसे आकर्षक बनाने की चेष्टा करते हैं। कलाकार को इस प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं होती कि वह अपनी कला को, अपने गायन–वादन को अधिकतम आकर्षक या लम्बा अथवा छोटा कर सके। उदाहरणार्थ यदि कोई सिम्फनी प्रस्तुत की जा रही हो, चाहे वह माजार्ट की हो या बीथोवेन की, वह कलाकारों के पास लिखित होती है। वही हमें रिकार्ड में भी सुनने को उपलब्ध होती है वही सिम्फनी कलाकार भी प्रस्तुत करते हैं। यही नहीं उसमें यह निर्देश रहता है कि कौन सी पंक्ति, कितनी बार, किस वाद्य से बजेगी या किसके द्वारा गायी जाएगी। यदि कण्डक्टर को उसमें कोई परिवर्तन करना ही हो, तो उसे मात्र इतनी ही स्वतन्त्रता है कि वह किसी वाद्य की ध्वनि की ऊंचाई–निचाई और लय की तीव्रता एवं मन्दता में परिवर्तन कर सकता है। हारमॉनी में आधुनिक सिम्फनी में मूलाधार तन्तु–वाद्य–समूह ही होता है, जिसके चारों ओर लकड़ी और पीतल के सुषिर वाद्य सुनियोजित और स्वतः सम्पूर्ण स्थानों पर रखे जाते हैं। पूर्ण सिम्फनी वाद्यवृन्द में 72 या उससे भी अधिक तो तन्तुवाद्य ही होते हैं। पूरे सिम्फनी वाद्यवृन्द में साधारणतः सौ से भी अधिक वादक भाग लेते हैं। हारमॉनी के लिये यह अनिवार्य है कि विभिन्न स्वरों की मधुर सामूहिक ध्वनि किसी ऐसे विशेष क्रम से उत्पन्न की जाये कि उससे आनन्द की प्राप्ति हो।

हारमॉनी दो प्रकार की होती है सिंपल हारमॉनी तथा कम्पलीकेटिड हारमॉनी। सिंपल हारमॉनी में गायकों के स्वरों का परस्पर अन्तर समान रहता है। सिम्पल हारमॉनी पुनः दो प्रकार की होती है:–

क) मैगाडाइजिंग हारमॉनी (Megadising Harmony)

ख) आर्गनाइजिंग हारमॉनी (Organising Harmony)

<u>क) मैगाडइजिंग हारमॉनी (**Megadising Harmony**)</u> – जब स्वरों की परस्पर दूरी एक, दो पूर्ण सप्तकों की होती है, तो उसे मेगाडाइजिग हारमॉनी कहते हैं।

<u>ख) आर्गनाइजिंग हारमॉनी (**Organising Harmony**)</u> – जब गायकों के परस्पर स्वरों का अन्तर सा–प, सा –ग आदि रहता है तब उसे आर्गनाइज़िग हारमॉनी कहते हैं।

आपको यह बात ध्यान में रखनी है कि हारमॉनी का मूल आधार मेलाडी ही होता है और उसी के ऊपर विभिन्न स्वरों का प्रयोग करके हारमॉनी निर्मित की जाती है।

<u>कम्पलीकेटिड हारमॉनी (**Complicated Harmony**)</u> – जब गायकों के स्वरों का परस्पर अन्तर घटता–बढता रहता तब उससे कम्पलीकेटिड हारमॉनी की उत्पत्ति होती है।

<u>19. कार्ड (**Chord**)</u> – **जैसा कि आप** जान गये है कि पाश्चात्य संगीत का आधार हारमॉनी है और हारमॉनी कार्डस के द्वारा उत्पन्न की जाती है। अतएव अब कार्डस पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। इन कार्डस के द्वारा (Trial) त्रिवर्ग बनते है। ट्राइअड्स का अर्थ तीन भिन्न स्वरों का मिलना है। अथवा यूं कहें कि तीन स्वरों की कार्डस को 'ट्राइअड्स' कहते हैं। इनको बनाने का सबसे सरल नियम यह है कि किसी भी स्वर के ऊपर उससे तीसरा और पॉचवां स्वर जोड़ देते हैं। इस आधार पर सप्तक के शुद्ध स्वरों पर बनाई गयी सात ट्राइअड्स इस प्रकार है। जैसे :–

प	**ध**	**नि**	**सां**	**रें**	**गं**	**मं**	**पं**
ग	**म**	**प**	**ध**	**नि**	**सां**	**रें**	**गं**
सा	**रे**	**ग**	**म**	**प**	**ध**	**नि**	**सां**
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**

क्योंकि एक सप्तक में शुद्ध और विकृत मिलाकर कुल 12 स्वर होते हैं। अतः ट्राइअड्स भी 12 बन सकती हैं। जब आप इन ट्राइअड्स की रचनाओं को ध्यान से देखेंगे तो विदित होगा कि इन सब ट्राइअड्स में स्वरों की दूरी एक जैसी नहीं है। उदाहरण के लिये :–

[प / ग / सा] में सा – ग तक की दूरी में दो टोन या चार सैमीटोन है जबकि ग से प की दूरी डेढ टोन या तीन सेमीटोन है। किन्तु [ध / म / रे] में इसका विपरीत है। प्रथम मेजर टोन को ट्राइअड्स कहते है। जिसमें [ध / म / रे] वाले टोन है उसे डिमिनिश्ड ट्राअड्स कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि पाश्चात्य संगीत की रचनाएं प्रायः मेजर और माइनर स्केल के आधार पर की जाती है। जब मेलाडी की रचना कर ली जाती है तो उसे कार्डस से हारमोनाइज किया जाता है। हारमनाइजेशन के लिए जो कार्डस बहुतायत से प्रयुक्त की जाती है उनमें मेजर और माइनर कार्ड प्रमुख है।

<u>मेजर कार्ड</u> – इस इकाई को बनाते समय, जिस स्वर की कार्ड बनानी होती है, उसके साथ पहला स्वर, उससे दो टोन ऊँचा और उसके बाद डेढ टोन ऊँचा स्वर मिला देते हैं।

<u>माइनर कार्ड</u> – यह कार्ड मेजर कार्ड से उल्टी है अर्थात् इसमें डेढ टोन की दूरी है और बाद में दो टोन की। इसका सूत्र होगा $1\frac{1}{2} + 2$ टोन।

<u>डोमीनैन्ट सैविंथ कार्ड</u> – जब मेजर कार्ड के ऊपर डेढ सैमीटोन की दूरी पर सातवां स्वर जोड दिया जाये तो उसे डोमीनैन्ट सैविंथ कार्ड कहते है। इसका सूत्र $2 + 1\frac{1}{2} + 1\frac{1}{2}$ टोन है।

<u>डिमिनिश्ड कार्ड</u> – **जब** कार्ड के चारों स्वरों का स्वरान्तराल डेढ टोन का हो, तो उसे डिमिनिश्ड कार्ड कहेंगे।

<u>आगमैन्टेड कार्ड</u> – जब कार्ड के चारों ओर स्वरों के मध्य में दो–दो टोन की दूरी हो उसे आगमैन्टेड कार्ड कहते हैं।

नाइंथ कार्ड – अब तक आपने देखा कि कार्डस को बनाने 1–3–5–7 की भान्ति स्वर को काम में लाते है। इस आधार पर यदि इसमें नवीं डिग्री का स्वर जोड़ दिया जाये तो जो कार्ड बनेगी उसे नाइंथ कार्ड कहेंगे। इसका सूत्र $2 + 1\frac{1}{2} + 1\frac{1}{2} + 2$ है।

माइनर नाइंथ कार्ड – ऊपर की कार्ड में यदि अंतिम स्वर को दो टोन के स्थान पर $1\frac{1}{2}$ टोन की दूरी पर रख दे तो इसका सूत्र $2 + 1\frac{1}{2} + 1\frac{1}{2} + 1\frac{1}{2}$ हो जाएगा। यही माइनर नाइंथ कार्ड होगी।

20. स्टाफ नोटेशन – संगीत रचनाओं को स्वरलिपि बद्ध करके लिखा जाता है। पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति को स्टाफ नोटेशन के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति में रचना को लिखने के लिए 11 रेखाओं का प्रयोग किया जाता है तथा इन रेखाओं पर अण्डाकार चिन्ह के द्वारा स्वरों को दर्शाया जाता है। इन सीधी ग्यारह रेखाओं को 'ग्रेट स्टेव' कहते हैं।

क्लैफ (CleF) – अब यदि ग्यारह रेखाओं में से ऊपर या नीचे की पॉच रेखाओं को छोड दें तो ये रेखायें दो भागों में विभक्त हो जाएगी। वस्तुतः ग्यारह रेखाओं का प्रयोग तभी किया जाता है जब एक साथ मन्द्र, मध्य, तथा तार सप्तक के स्वरों को दिखाना होता है। अन्यथा पॉच रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। इन पॉच रेखाओं पर मध्य 'सा' की स्थिति बताने वाले को 'क्लैफ' कहते हैं।

ट्रैबिल क्लैफ – जब मध्य सा पॉच रेखाओं से नीचे रहता है तो इस बात को प्रकट करने वाले चिन्ह को ट्रैबिल क्लैफ कहते हैं। इसका चिन्ह इस प्रकार होता है।

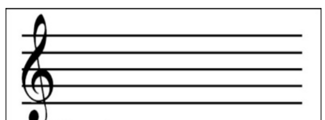
ट्रैबिल क्लैफ (Trable Clef)

बास क्लैफ – जब मध्य सा पॉच रेखाओं के ऊपर रहता है तो इस बात को प्रकट करने वाले चिन्ह को बास क्लैफ कहते हैं। इसका चिन्ह इस प्रकार होता है–

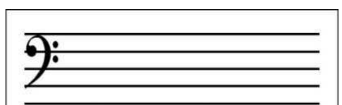
बास क्लैफ (Bass Clef)

लैजर रेखायें – जब क्लैफ में पॉच रेखाओं से अधिक ऊँचे अथवा नीचे स्वर बजाने हों तो आवश्यकतानुसार छोटी–छोटी अन्य रेखायें खींच लेते हैं। इन रेखाओं को लेजर लाइन कहते हैं।

शार्प – जब किसी स्वर को एक सेमीटोन से ऊँचा लिखना होता है तो उस स्वर से पहले इस ♯ चिन्ह को (जो शार्प का चिन्ह है) लगा देते हैं।

फ्लैट – जब किसी स्वर को एक सेमीटोन नीचा लिखना होता है तो उस स्वर में पहले इस '♭' चिन्ह को लगा देते हैं।

की सिगनेचर – जिस प्रकार भारतीय संगीत में स्वरों के कोमल तथा तीव्र चिन्ह, रचना में स्वरों के साथ लगाने की प्रथा है उसी प्रकार से कोमल, तीव्र स्वरों के चिन्ह पाश्चात्य संगीत में भी उपलब्ध है, इन्हें की सिगनेचर कहते हैं। परन्तु इन्हें लगाने की विधि भारतीय चिन्हों से भिन्न है। वहॉ किसी भी रचना को लिखते समय कोमल व तीव्र के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद लगाये जाते हैं। ये निम्नवत् पॉच प्रकार के हैं–

1. Flat (फ्लैट) – ♭ (कोमल स्वर)
2. Sharp (शार्प) – ♯ (तीव्र स्वर)
3. Natural (नैचुरल) – ♮ भारतीय संगीत में ऐसा कोई चिन्ह नहीं है।

4. Double Flat – ♭ ♭
5. Double Sharp – ×

जब एक या एक से अधिक शार्प या एक से अधिक फ्लैट के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद में रखे हुए हों तो इसका अर्थ होगा कि जिन–जिन रेखाओं पर अथवा जिन–जिन रेखाओं के बीच में वे रखे हैं उन स्थानों पर बजने वाले प्रत्येक स्वर पर अपना प्रभाव रखेंगे। इन प्रारम्भ में आने वाले चिन्हों को की – सिगनेचर कहा जाता है।

<u>आवश्यक चिन्ह(**Essential key singature**)</u> – **जब** फ्लैट या शार्प के चिन्ह क्लैफ के तुरन्त बाद न आकर किसी भी बार या खण्ड के बीच में आ जाये तो इसका अर्थ होगा कि वह स्वर केवल उसी खण्ड में उस चिन्ह से स्वरों को प्रभावित करेगा।

<u>टाइम सिगनेचर</u> – पाश्चात्य संगीत में किसी रचना को स्वरलिपि में लिखते समय स्वरों के मात्राओं के विभाग भी किया जाते हैं। स्वरों का संकेत की–सिंगनेचर के द्वारा किया जाता है तो मात्राओं का संकेत टाईम–सिगनेचर के द्वारा किया जाता है। इसकी विस्तार से चर्चा आपने पूर्व यूनिट में पढी होगी।

<u>बार लाईन</u> – पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति में ये रेखायें स्टाफ के स्वरों को समानता से विभाजित करने वाली सीधी रेखाऐं हैं।

<u>मैजर (**Measure**)</u> – जो विभाग बार लाइनों के द्वारा बनते हैं उन्हें मैजर कहते हैं और एक मैजर में जितने स्वर रखे जाते हैं उन्हें बीटस कहते हैं।

<u>सिम्पल टाईम</u> – जब प्रत्येक बीट या मात्रा में सेमी ब्रीव के साधारण भाग, मिनिम क्रोशो या क्वेवर आदि हो, उसे 'सिम्पल टाईम' कहते हैं।

इसके तीन प्रकार हैं – ड्यूपिल टाईम (Duple Time), ट्रिपिल टाईम (Triple Time) व क्वाडरिपल टाईम (Quadriple Time)।

<u>कम्पाउण्ड टाइम (**Compound Time**)</u> – जब एक बार एक–एक स्वर की अपेक्षा उस स्वर को लम्बा करना हो तो उसके लिए स्वरलिपि के चिन्ह लगाये जाते हैं जिसे बिन्दुओं से स्पष्ट किया जाता है। यदि किसी स्वर के आगे एक बिन्दु लगा दिया जाये तो स्वर का काल डयोढा हो जाता है। यदि उस बिन्दु के आगे एक बिन्दु और रख दिया जाये तो उसमें पहले बिन्दु से आधा काल और जुड़ जाता है अथवा यूं कहे कि उस स्वर में $\frac{3}{4}$ स्वर और जुड़ जाता है। अब आप समझ गये होंगे कि जब प्रत्येक स्वर एक बिन्दु सहित स्वर के बराबर हो तो उसे Compound Time कहते है।

<u>कामन टाइम(**Common Time**)</u> – जब एक बार में चार क्रोशे बीट्स हो (जैसे $\frac{4}{4}$) तो उसे कामन टाइम कहते हैं।

<u>21. रिदम (**Rhythm**)</u> – पाश्चात्य संगीत में नाद के काल का प्रयोग रिद्म द्वारा किया जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि रिद्म मेलाडी रहित भी पायी जाती है। स्वरों का काल बीट्स (Beatsे), किसी विशेष स्वर पर बल देकर उच्चारण करना (Accent) एक्सेंट, ताल के विभाग (Bar) बार या (Measure) अनेक स्वरों को मिला कर बार की रचना करना Grouping of Beats in to measure या इन ताल विभाग में संगीत की रचना करना Grouping of Beats into Phrases इत्यादि सब कुछ रिद्म के अन्तर्गत आते है। रिदम प्रायः तीन प्रकार की होती है :–

<u>क) मैट्रीकल रिदम (**Metrical Rhythm**)</u> – जब बलाघात साधारणतया प्रत्येक ताल–खण्ड (Bar) के प्रारम्भ में आता हो और प्रत्येक ताल खण्ड (Bar) में आने वाले स्वर समूह (Beats) समान हों, तो उसे मैट्रीकल रिद्म कहते हैं। इन्हें Bar रेखाओं के द्वारा पृथक किया जाता है। किसी एक ताल खण्ड के अन्तर्गत आने वाले सम्पूर्ण स्वर समूह को (Measure) कहते हैं। जिस आधार पर यह (Measure) बनाया जाता है उसे मीटर कहते हैं।

ख) मैजर्ड रिद्म (**Measured Rhythm**) – **ऊपर** बतायी गयी मैट्रीकल रिद्म को स्वरों के आधार पर बनाया जाता है। जबकि मैजर्ड रिद्म को गायन–वादन की लम्बाई के विभाग करके बनाया जाता है। इस प्रकार इसमें स्वरों के स्थान पर भिन्न–भिन्न मैज़र्स का योग होता है। जैसे एक (measure) दो स्वरों की है तो दूसरी तीन स्वरों की तो इनसे मिलकर 3 + 2 या 2 + 3 यानि एक मिली हुई (measure) बन सकती है। ऐसा करने पर ताली देने का काल एक समान नहीं रहता।

ग) फ्री रिद्म (**Free Rhythm**) – इस प्रकार की रिद्म में तालियां देने का स्थान एक समान नहीं रहता। इसका उत्तम उदाहरण भारतीय संगीत की प्रचलित तालों में धमार ताल हो सकती है जिसमें 5, 2, 3, और 4 मात्राओं के खण्ड हैं। इस प्रकार की रिद्म को पाश्चात्य संगीत में नहीं लिखा जा सकता।

22. कोरस(**Chorus**) – स्वरों के माध्यम से अभिव्यक्त भावना को 'संगीत' कहा जाता है। जब किसी एक वाद्य अथवा मनुष्य द्वारा संगीत प्रदर्शित किया जाता है तो उसे Vocal sole या Solo playing कहते हैं। जब दो, तीन या चार मनुष्यों द्वारा सम्मिलित गायन–वादन कराया जाये तो उसे (Vocal Ensemble) वोकल एन्सैम्बिल कहते हैं। किन्तु यदि गायकों की संख्या बहुत बढा दी जाये तो उस गायन को **'कोरस'** कहते हैं।

23. चैम्बर म्यूजिक(**Chamber Music**) – सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक वाद्य संगीत के जो कार्यक्रम होते थे, उनके तीन रूप थे – एक तो गिरिजों में, दूसरा नाट्यशालाओं में और तीसरे धनाठ्य व्यक्तियों अथवा राजकर्मचारियों के यहाॅं। इन कार्यक्रमों में तीसरे प्रकार को **चैम्बर म्यूजिक** कहा जाता था। शाही घरानों में जो उत्तम संगीतज्ञ होते थे, उन्हें चैम्बर म्यूजिशियन कहा जाता था। परन्तु 19 वीं शताब्दी तक आते–आते चैम्बर म्यूजिक की परिभाषा में परिवर्तन हो गया और तबसे संगीत की छोटी गोष्ठियों, छोटे, बडों तथा कम श्रोताओं के लिये जो संगीत के आयोजन होते थे, वे सब इस परिभाषा के अन्दर आने लगे।

24. कैनन(**Canon**) – कैनन कान्ट्रापुंटल के प्रकारों में से सबसे साधारण रचना है। यह एक पालीथानिक रचना होती है, जिससे एक ही धुन को भिन्न–भिन्न स्थानों से प्रारम्भ करके बजाया जाता है।

25. राउण्ड(**Round**) – यह गायन के लिए कैनन का एक विशेष प्रकार होता है। इसमें ज्योंही एक व्यक्ति का गायन समाप्त होता है तो दूसरा व्यक्ति उसी धुन को तुरन्त गाना प्रारम्भ कर देता है। इसकी लम्बाई इस प्रकार की रखी जाती है कि समस्त गायकी का गायन एक साथ समाप्त हो ताकि उनके गायन करते समय हारमनी भी बनती चले।

26. डबिल कैनन(**Double Canon**) – जब दो धुनें साथ–साथ चल रही हों और प्रत्येक धुन को अन्य धुनों के साथ नकल किया जा रहा हो इस प्रकार की चार भागों की कैनन को डबिल कैनन कहते हैं।

27. रौण्डो(**Rondo**) – इस रचना में मुख्य थीम की कई बार पुनरावृत्ति की जाती है जिसका कि पूर्व रचना से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इस प्रकार इसमें मुख्य रचना तथा नवीन रचनाएं एक के बाद एक आती हैं।

28. सोनैटाह(**Sonato**) – आज सोनैहटाह का अर्थ प्यानो, वायलिन या सैलो इत्यादि के लिए की गयी वाद्य रचना को प्रकट करता है। जैसे प्यानो सोनेट्टाह (प्यानो वाद्य) के लिये, इसी प्रकार से वायलिन सोनैटाह इत्यादि है।

29. सिम्फनी(**Symphony**) – **आधुनिक** सिम्फनी–आरकैस्ट्रा एक बडा एनसैम्बिल होता है, जिसमें लगभग 125 वादक भाग लेते हैं। इसमें लकडी के बने वाद्य (जैसे बांसुरी, ओबो, क्लैरीनैट, बास क्लैरीनेट, बासून, कन्ट्राबासून) कभी–कभी इंगलिश हार्न), पीतल के वाद्य जैसे– ट्रम्पैट्स, ट्रोम्बोन्स, फ्रैन्च हार्न, अैर टयूबा, ठोकर के वाद्य जैसे – टिम्पैनी, बासड्रम, ट्राइएंगिल, हार्प आदि और तारों के वाद्य जैसे – वायलिन, वायोला, सैलो इत्यादि प्रयोग में लाये जाते हैं। सिम्फनी के पूरे आरकेस्ट्रा में प्रायः चार लम्बे विभाग होते हैं।

30. कानशियरटो(Concerto) – **इस** रचना में पूरे आरकैस्ट्रा के साथ में किसी एक वाद्य का या दो वाद्यों का एकाकी वादन भी चलता रहता है। इसमें प्रायः तीन गतियां होती है और इसका आकार सोनैटाह जैसा होता है। इस रचना की विशेषता यही होती है कि इसके प्रथम गति के अन्त में सदैव एक ऐसा भाग और होता है, जिसमें कि एकाकी वादन मे वादकों की वादन निपुणता को इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका वादन सम्पूर्ण आरकैस्ट्रा से श्रेष्ठ तो नही, परन्तु समान स्तर का अवश्य प्रतीत होता है।

31. ऑपेरा(Opera)– **जब संगीत** को नाटक के साथ मिला दिया जाता है तो उस संगीत को साधारणतया ऑपेरा की संज्ञा दी जाती है। ऐसी स्थिति में संगीत को (चाहे वह वाद्य संगीत हो या कंठ संगीत) नाटक, कविता, अभिनय, नृत्य, रंगमंच और नाटकीय वेशभूषा के साथ मिला दिया जाता है।

32. आरैटोरियो(Oratorio) – जब कोई रचना, जिसमें न तो पटाक्षेप द्वारा दृश्य उत्पन्न किया जाए और न वेष'–भूषा व अभिनय ही हो, आरैटोरियो कहलाती है। इसमें प्रायः एक व्यक्ति बाइबिल पर आधारित किसी घटना को गायन के रुप में प्रस्तुत करता रहता है, साथ ही एकाकी गायन या कोरस अथवा आरकैस्ट्रा भी चलता रहता है। इस प्रकार धार्मिक घटनाओं की बिना वेश–भूषा के नाट्कीय ढंग से प्रस्तुत करने को 'आरैटोरियो' कहा जाता है।

33. कैनटाटा(Cantata) – जब कोई धार्मिक अथवा पवित्र भावों वाली रचना, एकाकी गायन, कोरस अथवा आरकैस्ट्रा के साथ प्रस्तुति की जाये तो उसे कैनटाटा कहते हैं। यह ओरेटोरियो की भान्ति का होते हुए उससे छोटा है, जबकि आरैटारियो अधिक लम्बा तथा नाटकीय होता है। इसे प्रायः चर्च कैनटाटा कहा जाता है।

34. मास(Mass) और मोहटेट(Motet) – इसाई धर्म में दो प्रकार के लोग होते हैं। इनमें एक को प्रोटैस्टेन्ट और दूसरों को कैथलिक कहते हैं। कैनटाटा प्रोटैस्टेन्ट धर्मावलम्बियों से सम्बंधी संगीत है जबकि 'मास' तथा मोहटैट भी उसी प्रकार का संगीत है लेकिन यह कैथलिक मत वालों से सम्बन्धित होता है।

35. ओवरटयूर(Overture) – **उस** वाद्य संगीत को, जो किसी आपेरा अथवा इसी प्रकार की अन्य लम्बी रचनाओं के प्रारम्भ में उनका परिचय देने के काम में आती है, ओवरटयूर कहते हैं।

36. टोकैहटा(Toccato) – यह रचना प्रायः चाबी के वाद्यों (ऑरगन, हार्पसीकार्ड, प्यानो) के लिये लिखी जाती है। इसकी रचना में मीटर (छन्द), रिद्म और टैम्पो सब में स्वतन्त्रता दिखाई देती है।

37. स्वीट(Suite) – वाद्य–संगीत में इस रचना का विशेष महत्व है। इसका आधार अनके प्रकार की नृत्य–रचनाएं होती है। प्रारम्भ में इसे पूर्ण संगीत माना जाता था। परन्तु गत शताब्दी में संगीतकारों ने इसे प्रोग्राम म्यूजिक की भांति ही बना दिया है। प्रोग्राम म्यूजिक में संगीत के द्वारा कोई कथानक प्रस्तुत किया जाता है। जैसे देश भक्ति के गीत, नृत्य सम्बन्धी गीत तथा धर्म सम्बन्धी गीत आदि। इस प्रकार के म्यूजिक को आज प्रोग्राम म्यूजिक कहा जाता है।

38. प्रील्यूड (Prelude) – कोई ऐसी रचना, जो किसी धार्मिक उत्सव, नाटक अथवा कोई अन्य संगीत रचना, जैसे स्वीट से पूर्व, उसका परिचय देने के लिये बजायी जाए, प्रील्यूड कहलाती है। लेकिन कुछ विद्वानों ने इसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से भी किया है।

39. फैन्टाजिया और कैपरीस (Fantasia and Caprice) – इन दोनों रचनाओं में बंधन रहित कल्पना की ऊंची उड़ान होती है इसलिये इनकी रचना में कोई नियम नहीं पाया जाता।

40. एटयूड (Etude) – इस रचना में प्रायः किसी वाद्य विशेष की तकनीक होती है जिसमें उंगुलियों का प्रयोग आदि होता है। परन्तु इतना होते हुए भी यह रचना केवल उंगलियों के अभ्यास के लिये न होकर, वादन करने योग्य होती है और कनसर्ट में प्रयोग की जाती है।

41. नौक्टर्न (Nocturne) – यह रात्रि से सम्बन्धित प्रेम भावों की एक रचना होती है। यद्यपि यह बांसुरी, ओबो तथा हार्न या तन्त्र–वाद्यों के लिये भी रची जाती है, परन्तु अधिकांश में अब इसे प्यानो वाद्य की ऐसी रचनाओं के लिये प्रयोग किया जता है जिनकी गति में खिन्नता और दुर्बलता प्रतीत हो। इन रचनाओं में प्रायः सीधे हाथ से एक धुन बजती है और बायें हाथ से कार्डस् बजाते हैं।

42. आर्रयाह (Aria) – यह गायन की लम्बी रचना होती है जो आपेरा में पायी जाती है। इसके प्रायः तीन भाग होते हैं।

43. बैलड(Ballad) – प्रारम्भ में यह नृत्य के साथ गायी जाने वाली रचना का नाम था, परन्तु धीरे–धीरे इसमें किसी कथानक को गायन रूप में प्रस्तुत करना रह गया।

44. बैलेट (Ballet) – वेष–भूषा और संगीत के साथ एक मूक नाटकीय नृत्य, जिसमें न तो कोई गीत हो और न ही कुछ शब्द ही उच्चारण किये जायें उसे बैलेट कहते हैं। प्रारम्भ में राजाओं–महाराजाओं के यहाँ विवाहादि के अवसरों पर बाहर से आए हुए मेहमानों के मनोरंजन के लिये इसका प्रयोग किया जाता था। आज बैलेट–संगीत में एक पूर्ण नाटिका को बिना शब्दों के माध्यम से केवल नृत्य द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार बैलेट–संगीत में नर्तकियों के समूह के साथ, रंगमंच, दृश्य, वेश–भूषा, नृत्य और संगीत सब अंग मिल गये।

45. इंटरल्यूड (Interlude) – जब कोई रचना किसी नाटक के अंको के मध्य में अथवा गायन के मध्य में बजाई जाने के ध्येय से लिखी जाये तो उसे इंटरल्यूड कहते हैं।

इस प्रकार पाश्चात्य संगीत में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों की हमने व्याख्या की हो आप अब तक इन पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से पाश्चात्य संगीत से परिचित हो गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति को.. कहते हैं।
2. पाश्चात्य संगीत के स्वर...है।
3. डायटानिक स्केल को बनाते समय...की प्राप्ति होती है।
4. पाश्चात्य संगीत में ....का सम्बन्ध बेसुरेपन से होता है।
5. पाश्चात्य संगीत................................. प्रधान है।
6. हारमॉनी का मूल आधार...................................... होता है।
7. स्टाफ नोटेशन हेतु प्रयुक्त सीधी 11 रेखाओं को................................. कहते हैं।
8. पाश्चात्य संगीत में मात्राओं का संकेत.......................................द्वारा दिया जाता है।
9. जब संगीत को नाटक के साथ मिला दिया जाए तो उसे...................................कहते हैं।
10. ऑपेरा में पायी जाने वाली गायन की लम्बी रचना..कहलाती है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. पाश्चात्य संगीत से आप क्या समझते हैं?
2. हार्मनी किसे कहते हैं?
3. पाश्चात्य रचनाओं के मुख्य प्रकारों का वर्णन करें?
4. पाश्चात्य संगीत में लय किसे कहते हैं?
5. स्वरों के विकृत एवं शुद्ध रूप के परिभाषिक नाम क्या है?
6. आरकैस्ट्रा क्या है?
7. बार लाइन क्या है?
8. बांस क्लैफ की व्याख्या करें?
9. कार्डस पर प्रकाश डालें?

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप पाश्चात्य संगीत में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों के बारे में जान चुके हैं। पाश्चात्य संगीत में स्वर, मात्राओं व रचनाओं को लिखने का तरीका भारतीय संगीत से भिन्न है। इन पारिभाषिक शब्दों का पाश्चात्य संगीत में क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई से समझ चुके होंगे। पाश्चात्य संगीत में वर्तमान में प्रयुक्त स्टाफ नोटेशन पद्धति को भी आप समझ चुके है। पाश्चात्य संगीत व स्टाफ नोटेशन को समझ कर आप भारतीय संगीत से इसकी तुलना कर पायेंगे तथा इसका प्रयोग भी कर सकेंगे। इस इकाई को पढने के उपरान्त यह पारिभाषिक शब्द आपके क्रियात्मक पक्ष में भी सहायक होंगे।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. स्टाफ नोटेशन	2. CDEFGAB	3. 5 टोन व 3 सेमीटोन	
4. इन्टोनेशन	5. हारमॉनी	6. मेलोडी	
7. ग्रेट स्टेव	8. टाइम सिग्नेचर	9. ऑपेरा	10. आर्रयाह

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *पाश्चात्य संगीत शिक्षा,* संगीत कार्यालय, हाथरस, 1990।
2. सिंह, प्रो0 ललित किशोर, *ध्वनि और संगीत,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1901।
3. शर्मा, डा0 स्वतन्त्रा, *पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1996।

3.7 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0)।
2. *संगीत* मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0)।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हॉरमानी व मेलोडी का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. टाइम सिग्नेचर व की सिग्नेचर पर प्रकाश डालिए।